प्राचीन पुस्तकोद्धारक फंड ग्रंथांक २६

॥ अर्हम् ॥

दादासाहिब जंगमयुगप्रधान भट्टारक
श्रीजिनदत्तसूरिचरितम् ।

पूर्वार्द्धम् ।

जैनाचार्य श्रीमज्जिन कृपाचन्द्रसूरिजी
महाराजके सदुपदेशसे
दक्षिणहैदराबादनिवासी जैतारणवाला
सेठ छगनमलजी आदिकने
प्रकाशित किया ।

मुम्बापुर्यां
निर्णयसागरमुद्रालये मुद्रयित्वा प्रकाशितम् ।

वि० सं० १९८२, सन १९२५

प्रथमावृत्ति] मूल्य १॥ रूप्यकसार्धम् । [प्रति ५००

Published by Shet Chhaganmalji Jaitaranwala,
Hyderabad Deccan

Printed by Ramchandra Yesu Shedge, at the Nirnaya sagar Pr
26-28, Kolbhat Lane, Bombay

॥ ॐ अर्हंनमः ॥

श्रीजिनदत्तसूरिचरितप्रस्तावना ॥

॥ जयति विनिर्जितरागः सर्वज्ञः त्रिदशनाथकृतपूजः । सद्भूतवस्तु वादी, शिवगतिनाथोमहावीरः ॥ १ ॥ सिद्धये वर्द्धमानस्तात्ताम्रायन्नखमंडली, । प्रत्यूहशलभप्रोपे दीप्रदीपांकुरायते ॥ २ ॥ सर्वारिष्टप्रणाशाय, सर्वाभीष्टार्थदायिने । सर्वलब्धिनिधानाय, श्रीगौतमस्वामिने नमः ॥ ३ ॥ श्रीमद्वीरजिनास्यपद्महृदतो निर्गम्यते गौतम, गंगाव ेन्यया प्रविभवे मिथ्यात्ववैताढ्यकं, । उत्पत्तिस्थितिसंहृतित्रिपथगा ज्ञान. गद्वृद्धिगा, । सा मे कर्ममलं हरत्वविकलं—श्रीद्वादशांगी नदीः ॥ ४ ॥ कृपाचंद्रसूरिं नौमि, गच्छखरतरान्वितं, । स्याद्वादविधिविद्वासं श्रद्धालुजनसेवितम् ॥ ५ ॥ जयतिश्रीमदानंदमुनिः मौनव्रतसमायुक्तः । मुनिगणवृपभसमं स बुधरत्नः गुणगणरत्निः ॥६॥ तत्प्रसादमाधाय, किंचित्संयोजितं मयका, तेन लभन्तु लोकाः, सद्बोधिरत्नाः चिराच्छिवम् ॥ ७ ॥ चित्रचरित्रं गुरूणा ॥ शृण्वन्तु भो भव्या सादरा संतः प्रदत्तैकावधानाः ॥ अचिरान्मौख्य प्रपद्यंतु॥८॥

अहो सज्जनो सावधान होकर सुणो, एकावतारी जैनसंघ याने जैन कोमके उत्पादक स्तंभभूत श्री वीरशासनमें श्री उद्योतनसूरिजीके हाथसें जो गच्छस्थापन किये गये उनोंके परम पूजनीक चोरासीगच्छोंको अलंकृत करनेवाले, प्रायें करके समस्त जैन प्रजाओंकी वृद्धि करनेवाले,

अतः चोरासीगच्छोंमे चक्षुतिलक स्थूणा जिहाज सार्थवाह निर्यामक-समान चारित्रपात्रचूडामणि अनेक चारित्रहीन सिथलाचारी आचार्योंको और साध्वादि सघको सुविहित चारित्र और सुविहित विधिमार्गमे प्रवर्त्तनेवाले, प्राये लुप्तप्राय सद्विधिकों प्रगट करनेवाले, तीर्थंकर प्रतिरूप श्रीगौतम श्रीसुधर्मादि अवताररूप श्रीसीमधरस्वामीके मुखार-विंदसें निर्णय हुवा है एकावतारीपणा जिणोंका अर्थात् एक भवकरके मुक्तिनगरीमे जानेवाले, युगप्रधान पदसे विभूपित ऐसे अनेक क्षत्रिय वैश्य ब्राह्मणादिक महर्द्धिकलोकोकों प्रति बोधके जैनकोम बनानेवाले दस दसहजार कुटुंब सहित बोहित्थ कुमारपालादि ४ राजाओंको १२ व्रत सम्यक्तसहित धरानेवाले औरभी भाटी पडिहार चहुआण पवाँर देवडा राठोड आदिराजाओंको जैनधर्मतर्फझुकानेवाले, जैनधर्म जैन प्रजाकेऊपरआये हुवे अनेक तरहके उपद्रवोको दूर हटानेवाले, विक्रम-पुरमें १२०० साधु साधवीया को दीक्षादेनेवाले, १ लाख तीस हजार घरकुटुंबको प्रतिबोध देनेवाले, अनेक मिथ्यात्वी देवीदेवताओंसे जैन-धर्मकी सेवाकरानेवाले, भवनपति व्यंतर जोतिषि वैमानिक इन ४ निकायके अनेक सम्यग्दष्टि देवी देवताओंसे सुसेवित होनेवाले, श्रीसू-रिमत्रके बलसें धरणेंद्रादि ६५ सूरिमंत्राधिष्ठायकोंको आकर्षणकरनेवाले, परकायप्रवेशादि विद्यानिपुण, और चितोडनगरीमें श्री चिंतामणिपार्श्व-नाथ स्वामिके मदिरमें गुप्तरहिहुइपूर्वाचार्यसंबधि अनेक विद्याम्नायसें भरीहूइ आम्नाय पुस्तक विद्याबलसें ग्रहणकरनेवाले, उज्जेणी महा-काल मदिरके स्तभमें पूर्वाचार्योंने गुप्तसुरक्षितपणे विद्याम्नाय पुस्तकें

रखीथी, तिसके अन्दरसें १ विद्याम्नाय पुस्तक श्रीसिद्धसेनदिवाकरने ग्रहणकरी थी, तिस महाकालमदिरस्तंभगत विद्याम्नाय पुस्तककों विद्यावलसें आकर्षणकर ग्रहण करनेवाले, और अनेक देव एकसो आठ जातिके भैरव, ५२ प्रकारके क्षेत्रपाल विमलेश्वर पूर्णभद्र माणिभद्र कपिल पिंगल कुमुद अजन वामन पुष्पदत जय विजय जयन्त अपराजित तुबरु खट्वाग अर्चिमालि कुसुम अग्निकुमार मेघकुमार गोमुखादि २४ यक्ष सेलयपर्वतवासी क्षेत्रपाल, सिंधुगतपचनदी अधिष्ठायक पचपीरादिदेवगणसें सेवितहोने वाले, चक्रेश्वरी आदि २४ यक्षणी, धृतिलक्ष्मी आदि २४ महादेवी, १६ रोहिणीआदि विद्यादेवी, सरस्वती, श्री लक्ष्मी धृति कीर्ति बुद्धि ह्री ६ देवी पद्मा जया विजया अपराजिता वैरोट्या जया विजया जयन्ती अपराजिता जभा स्तभा मोहा अधा गगा रभा चोसठ्योगिणी आदि देव देवीगणसें सेवित होनेवाले, अनेक विद्या ह्रीं विद्या परमेष्टीविद्या आचार्यमत्रविद्या वर्धमानविद्या परकायप्रवेशविद्या सकुनिविद्या दृशविद्या अदृशविद्या रूपपरावर्त्तिनीविद्या आकर्षणी, मोचनी, स्तभिनी, तालोद्धाटिनी, सजीविनी, खेचरी, सरसवस्वर्णसिद्धि आकाशगामिनी, वैक्रियादि विद्याओंसें अणिमादि अष्टसिद्धिओंसे सेवित होनेवाले, अतिवृष्टि अनावृष्टि आदि ७ ईतियाँ स्वचक्र परचक्रादि ७ भयसे प्राणिगणको मुक्तकरनेवाले, स्वसिद्धान्त परसिद्धान्त पारगामी कठविराजित सरसती दादा जगमे श्री जिनदत्तसूरींद विघ्नहरण मगलकरण, सपतकरण, करो पुण्य आणद एसे महाप्रभाविक पुन्यपवित्र चारुगात्र अतिशुद्ध मोक्षमार्गके आराधन करनेसे और पूर्वभवोपार्जित अतिशुद्ध युगप्रधान-

पदके परिपाकसें स्वर्ग मृत्यु पातालवासी सर्व जीवजिणोंकी आणा स्वशिरपर धारनेवाले भये, और सर्वोत्कृष्टपणें श्री वीरशासनकी प्रभावना करनेवाले ऐसे परम पूज्यपाद प्रातःस्मरणीय जंगमयुगप्रधान श्रीमज्जिनदत्तसूरिजी महाराज वडेदादासाहेबका आमूलचूलापर्यन्त, इतिहासरूप, यह्चरित्र सिद्ध हुवाहै, सो सहर्ष सादर आपलोकोंके करकमलोंमे पूर्वार्ध प्रथम भाग रूप श्री पूज्यपादका चरित्र समर्पण करता हुं सो इसकों दत्तावधान होकर एक चित्तसे पढें, और श्रीगुरुमहाराजकी भक्तिमें लयलीन होवे, भवसागरका पार पावें इत्याशास्महे उ। जयसागर गणिः ॥ यह पूज्यपाद आचार्य महाराज कबसे कबतक विद्यमानथे, इस शंका पर पूज्यपादश्रीका सत्ता समय देखातें है, श्री वीरात् १६०२ विक्रमार्के ११३२ जन्म, वीरात् १६११ वि० ११४१ दीक्षा, वी० १६३९ वि० ११६९ आचार्यपद वी० १६८१ वि० १२११ स्वर्ग सर्वायु ७९, जन्मस्थान, दीक्षास्थान, धवलकपुर, प्रतिवोधक चारित्रोदयमें सहायक गीतार्था धर्मदेवोपाध्यायसत्का श्रीमती आर्या, दीक्षागुरु धर्मदेवोपाध्यायाः, बृहद्गच्छीय खरतरविरुदधारक श्रीमज्जिनेश्वराचार्य सुशिष्याः, श्रीपूज्यपादके मातुश्री का नाम श्रीमती बाहडदेवी, पितृनाम श्रीमद् वाछिगमंत्रीश्वरः, हुंवड गोत्रीयः श्रीमता विद्याभ्यास पजिकादिरूप लक्षणादि शास्त्र जैन भावडाचार्यसे, और श्रीआवश्यकादि सूत्र सिद्धान्त योगविधि पूर्वक स्वगुरु समीपे पढे, सूरिपद प्राप्तिस्थान, चित्रकूट दुर्गे, आचार्यपद चितोडगढमे, स्वर्गारोहणस्थान हर्षपुर याने अजमेर, १२११ मे श्रीवीरात् चुमालीसमेपाटे

श्रीसुधर्मात् तेंतालीसमेपाटे मुख्यशाखामे नवांगवृत्तिकर्त्ता श्रीजिनाभयदेव सूरिसुशिष्य· श्रीमज्जिनवल्लभसूरिजीके पट्टकों अलकृतकरतेथे, इसतरे सर्वायु गुणयासी (७९) वर्षकापालके १२११ आषाढ सुद ११ गुरु सौधर्ममेगये इत्यादि विशेष अधिकार तो गणधरसार्ध शतकादिकसें जाणना, तथाचोक्त युगप्रधानपदभृत्, श्रीजिनवल्लभसूरयः सूरिः श्रीजिनदत्ताह्वः। तेषां पट्टे दिदीपिरे ॥ १ ॥ युगप्रधानपदभृत्, सूरिः श्रीमज्जिनदत्ताह्वः। श्रीवीराचतुश्चत्वारिंशत्तमे पट्टे च समभवत् ॥२॥ इति सूरिसत्तासमयः।

श्रीवीरात्सुधर्म्माच्च, वेदाग्नि ४३ वेदधर्म ४४ तमपट्टे, युक्ते समभवन्पूज्याः श्रीजिनदत्तसूरय· ॥ १ ॥ श्रीसद्गुरुके शोभननामाक्षरोंको धारन करनेवाले श्रीवीरशासनप्रभावक श्रीगुरुमहाराजके नामाक्षरोंको सत्यार्थ शोभित करनेवाले श्रीवीरशासनमें यथार्थसिद्धान्तरहस्यार्थ जाणनेवाले, शुद्धप्ररूपक, शुद्धश्रद्धानयुक्त भिन्न भिन्नगच्छोंमे अनेकाचार्य हूवेहै, आगे इस पचम आरेमे श्रीसुगुरुके नामाक्षरोंको यथार्थ सत्यशोभितकरनेवाले, आचार्य महाराज निसदेह होनेवाले हैं और श्री सद्गुरुका नाम हि ऐसा प्रभावशाली है, इस लिये श्री गुरुके नामकाहि निरन्तर स्मरण ध्यान भव्योंको कल्याणकारि है इसमें अहो सज्जनो सादर भक्तिभावपूर्वक निरतर तुम एक श्रीगुरुमहाराजके नामका स्मरण करो इस भवमें योगक्षेम परभवमें स्वर्ग अपवर्गादि सर्व संपदाको प्राप्त होवोगे इत्यलं विस्तरेण श्रीमान् चरित्रनायक पूज्यपादका पट्टक्रम न्यास इसतरे है, तथाहि—

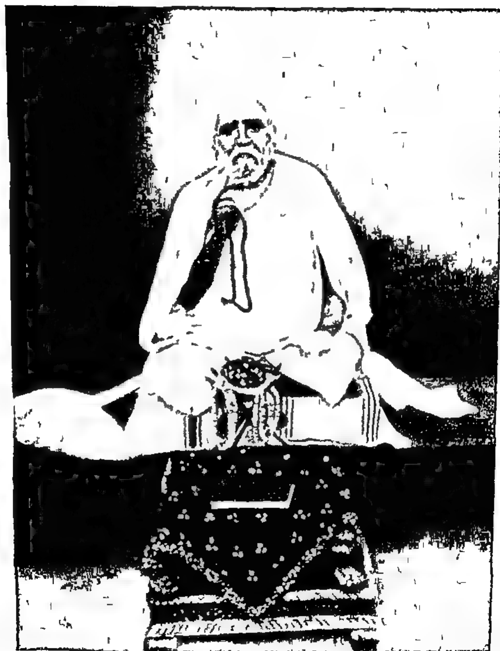
नाम	
१ श्रीवीरवर्धमान	
२ श्रीइन्द्रभूतिसुधर्मा	१
३ श्रीजंबूस्वामी	२
४ श्रीप्रभवस्वामी	३
५ श्रीशय्यंभवसूरि	४
६ श्रीयशोभद्रसूरि	५
७श्रीविजयसंभूतिसूरि	६
८ श्रीभद्रबाहुसूरि	७
९ श्रीस्थूलभद्रसूरि	८
१० श्रीआर्यमहागिरिसूरि	९
११ श्रीआर्यसुहस्तिसूरि	१०
१२श्रीसुस्थितसुप्रतिबद्धसूरि	११
१३ श्रीइन्द्रदिन्नसूरि	१२
१४ श्रीदिन्नसूरि	१४
१५ श्रीसिंहगिरिसूरि	१४
१६ श्रीवज्रसूरि	१५
१७ श्रीवज्रसेनसूरि	१६
१८ श्रीचंद्रसूरि	१७
१९ श्रीसमंतभद्रसूरि	१८
२० श्रीदेवसूरि	१९
२१ श्रीप्रद्योतनसूरि	२०
२२ श्रीमानदेवसूरि	२१
२३ श्रीमानतुंगसूरि	२२
२४ श्रीवीरसूरि	२३
२५ श्रीजयदेवसूरि	२४
२६ श्रीदेवानंदसूरि	२५
२७ श्रीविक्रमसूरि	२६
२८ श्रीनरसिंहसूरि	२७
२९ श्रीसमुद्रसूरि	२८
३० श्रीमानदेवसूरि	२९
३१ श्रीविबुधप्रभसूरि	३०
३२ श्रीजयानंदसूरि	३१
३३ श्रीरविप्रभसूरि	३२
३४ श्रीयशोभद्रसूरि	३३
३५ श्रीविमलचंद्रसूरि	३४
३६ श्रीदेवसूरि.	३५
३७ श्रीनेमिचंद्रसूरि	३६
३८ श्रीउद्योतनसूरि	३७
३९ श्रीवर्धमानसूरि	३८
४० श्रीजिनेश्वरसूरि	३९
श्रीबुद्धिसागरसूरि	
४१ श्रीजिनचंद्रसूरि	४०
४२ श्रीजिनाभयदेवसूरि	४१
४३ श्रीजिनवल्लभसूरि	४२
४४ श्रीजिनदत्तसूरि	४३
४५ श्रीजिनचंद्रसूरि	
४६ श्रीजिनपतिसूरि	
४७ श्रीजिनेश्वरसूरि	
शाखांतरमें श्रीजिनसिंहसूरि	
तत्पट्टे श्रीजिनप्रभसूरि	

विशेष खुलासापूर्वक निर्णय चरित्रसें अथवा गणधर सार्धशतकसें जाणना और यहां चरित्रके आदिमे शोभायमान चरित्रनायकके गुरुवर्यका तथा श्रीमान् पूज्यपादश्रीमज्जिनदत्तसूरिजीमहाराजका यथार्थावबोधकसचित्रजरूर देना अत्यावश्यक है और निष्कारण परमोपकारी श्रीमान् दादासाहिब जब कि इसमनुष्य लोकमे विद्यमान थे, तब जैनधर्मानुरागी भव्योंकी वृद्धिकरनेवालेथे, और अनेकतरहकी संपत्तिकों प्राप्तकरानेवाले, अनेकतरहकी विपत्तिका नाश करनेवालेथे, और जैनधर्मद्वेषी प्राणिगणके तरफसें

करी हूइ धर्मकी हानिरूप दूषणरूप आश्चर्यरूप वा चमत्कारप्रवृत्तिरूप अनेकतरहके दोषोंको दूर हटाकर असदापत्तियोंका नाशकरनेवालेथे, श्रीवीरशासनका स्तंभभूत महान् समर्थपुरुषभये, तिसकारणसें सर्वत्र हिन्दुस्थानमे याने आर्यावर्त्तखडमे दरेक राजधानी दरेकशहर दरेकग्राममें सर्वत्र चरण स्थापनाभईहै, और मूर्तिभि कहाकहाहै यह आचार्यश्रीके स्वर्गारोहण अनतरहि मणिधारि श्रीजिनचद्रसूरिजीभि अत्यतउपगारी भये इसीसेहि चरित्रनायक बडेदादासाहिबके नामसें श्रीजैनसधमें प्रसिद्ध भया है, इसलिये सर्वगच्छका श्वेताम्बर जैनसघ वगेरह अभेदबुद्धिमें मानते पूजते स्मरणकरते कराते आये हैं, और इससमय कितनेक जैनभाइ दृष्टिरागीगुर्वोंके उपदेशसे भेदभाव रखते है, भेदभाव करतेंहैं, करातेंहैं, सो लाजिम नहींहै, किंतु उनोकी भूलहै, सो सुधारलेनी चाहिये, यह उनोंके आत्माका परात्माओंकाभी कल्याणहै, और यह कुतर्क कुशकार्य नहिंकरनी चाहिये, श्रीगुरुका अवर्णवादरूपनिंदाहै, और भोले भद्रीक जीवसदेहरूप भरमजालमेगिरतें हैं, तथाहि—दादाजीका काउस्सग्गक्योंकरतेहो, करते हो तो दूसरे आचार्योंकाहि करो, श्रीगौतमस्वामिका और श्रीसुधर्मस्वामिकाभी करो, वेभी परमोपकारी है, श्रीस्तभनपार्श्वनाथजी काहि निरतर परमोपकारी पणेसें चैत्यवदन करते हो तो श्री महावीर स्वामिकाभी आसन्नोपकारीपणेसें करो, बोलवा बोलते हैं शीरणी करते हैं उसमेसे थोडाक भाग चढायदेतेहो बाकीसब वैचदेते हो या खायजाते हो, यह तो सर्वाह गुरुद्रव्यहै, तो श्रावक कैसा खायसके, इत्यादि अनेकतरहकी कुयुक्तियां दृष्टान्त देकर देव गुरु धर्मकी भक्तिभावसें प्राणियोंका परिणाम हीयमान करतें हैं, करवाते है, उन प्राणियोंके जन्मान्तरमे कडवाफल होने-

वाला है, अहो सज्जनो ऊपरोक्त कुतर्क कुशका कुसगत कुदृष्टिराग कु
कदाग्रह पक्षपात स्थित्यादिकका त्यागकरके शुद्ध प्ररूपक गुणयुक्त इ
रुके उपदेशसे यथा सम्प्रदाय सिद्धान्तानुसार सुविहितविधिमार्गमें प्र
करो शुद्ध सूत्रार्थ पाठ उच्चारणसहित प्रधानभावपूर्वक श्रीदेव
धर्मकी त्रिकरण योगसे आराधाना निरन्तर करो जिसमे इसभ
परभवमें सर्वोत्कृष्ट सुख प्राप्त हो और ऊपर देखाई हूइ कितनीक कुश
ओंका परिहार यथाअवसर यथासंप्रदाय समाधान युक्ति हेतु दृष्टा
पूर्वक करदीया जावेगा, इहापर प्रस्तावना जादा वढजावै इस्से
लिखा है, इत्यल पल्लवितेन, और इहापर चरित्र लेखकके गुरुव
यथार्थ सचित्र और चरित्र लेखकमुनिगण वृषभः प० श्रीमान् आ
मुनिजीमहाराजका सचित्र देना अत्यावश्यक है, नम्रशिरोहि इति वि
पयति जयमुनिः ॥ अथ प्रथलेखकः स्वगुरुचरित्र परिचय संक्षिप
प्तम् दर्षयति ॥ तथाहि देश मरु राजधानी जोधपुर राजा श्रीमान् व
तसिहजी विजयराज्ये जोधपुर जिल्हे पश्चिम भागमे वरमामहै, उ
नाम चतुर्मुख याने चामु है, पिताकानाम श्रीमेघरथ गोत्र बाँफणा
शाखा ज्ञाति ओसवाल, मूल वश ऊकेश, माताकानाम श्री अमरादेवी ज
१९१३ जन्म नाम श्रीकीर्त्तिचद्रकुमारः किसीसमय शहर आनाहु
तत्र श्रीमती आर्या धर्मश्रीजीके समागमसे मातासहितपुत्रको प्रतिबो
हूवा, वहसाल याने वर्ष १९२६का था, उससमय आपश्रीकी अवस्था क
१३ वर्षकीथी, तिससमय आपश्रीकी भवविरक्ति परिणति भइ, प
पढमंनाणं तओदया, एवं चिट्ठइ सव्वसंजए, अन्नाणी किं काही, किं
नाहीइ, छेअपावगं,१०सोचाजाणइ कल्लाणं, सोचा जाणइपावगं, उ

श्रीमद् जैनाचार्य श्री श्री १००८ श्री जिन कृपाचन्द्र सूरीश्वरजी महाराज



जन्म सं० १९१३ दीक्षा सं० १९३६ आचार्यपद सं० १९७२

यंपि जाणइ सोचा, जंसेयं तं समायरे ११ ज्ञानक्रियाभ्याम् मोक्षः, सच सर्वकर्मक्षयरूपोमोक्षः सर्वकर्मक्षयश्च सम्यग्ज्ञानपूर्विकयाक्रियया-विना न भवति, तत्सम्यग्ज्ञानं क्रमायातसुगुरुसमीपे अभ्यसनात् भवति इति अध्यवस्यता तेन कथितं, आर्या प्रति, हे भगवति मां सुगुरुसमीपे शीघ्रं प्रेषयतु इत्यादि अर्थ. पहिलाज्ञानपीछेक्रिया संवररूप-होवे, इसतरे सर्वमुनिरहे, षड्द्रव्यके ज्ञानविना मुनि नहोवे, द्रव्यसें मस्तक मुंडाकर घरवासका त्यागकर जंगलमेरहेणेसे मुनि न होवे नाणेण मुणि होइ, न हु रण्णवासेणं इसवचनसे सम्यग्ज्ञानसेहिमुनिहोतेंहै' केव-लवेषमात्रसें मुनि नहिं होवेहै, किन्तुयथार्थसत्यासत्यबोधजनकसम्यग्ज्ञान-सेहि सर्वेष्टसिद्धि होवेहै' इसवास्तेकहाहै कि सम्यग्ज्ञानसहितसम्यक् क्रिया-सेंहिमोक्षहोवेहै अर्थात् सर्वकर्मोसे रहित जीवहोवेहै और वह मोक्ष सर्व-कर्मक्षयरूपहै, सर्वकर्मका क्षय तो सम्यग्ज्ञानसहितक्रियाविना प्राये नहिं सभवेहै' वहसम्यग्ज्ञानअविछिन्नपरपरासेंआयेहूवे, सुगुरुकेपास अभ्यास करणेसे होवे, एसाविचार करतेहूवे कुमरने साध्वीजीसे कहाकि हे भगवति मुजकों शुद्धप्ररूपकसुगुरुकेपास विद्याभ्यासकरनेके लिये जलदि भेजो, साध्वीनें समजाकि यह कोइ विनयसहित पूर्वभवारा-धितज्ञानचरणशीलजीवहै, इसलिये इसकेयोग्यसुगुरुगछमें कोण है, यह उपयोग देके इसके योग्य श्रीसमुद्रसोमजीके सुशिष्य इसकुमा-रकेयोग्यसुगुरुहै, उनोंकेपासहि विद्याअभ्यासकेलिये भेजना ठीक है, यहविचारके और माताकों पूछके, अछे मूहुर्त्तमे श्रीवीकानेररवाने करा, क्रमसें चलतेहूवे, चैत्रसुद ३ के रोज सुगुरुके पास हाजिर हूवा, और श्रेष्ठमुहूर्त्तमें विद्याभ्यास करना शुरुकरा, धार्मिक

व्यावहारिक सस्कृतव्याकरणादिकग्रन्थपढलिसके हूसियारभया; तब गुरुमहाराजनें जैनसिद्धातपढाणेयोग्य जाणके, संवत् १९३६ की सालमें आषाढ शुदि १० को यतिसंप्रदायिक दीक्षादी, कारण के पात्र आनेपरअनवसरमेभि सिद्धान्तवाचना देना एसाभि सिद्धान्तमें अपवादमार्गसें माना है, कुशिष्यादिकों वाचना देना उनोंकेपाससें वाचना लेना सर्वथा निषेध किया है, अविनीत निरतरविगईभक्षी उत्कटक्रोधी दुष्ट मूर्ख व्युद्ग्राहित अन्यतीर्थीग्रस्त परिव्राजकादिक, स्वतीर्थीग्रस्त पासत्थादिक उनोंको वाचनादेना उनोंकेपाससें वाचनालेना करेतो साधु प्रायच्छित्त पावे ऐसा छेद श्रुतमे लिखा है, इत्यादिक विचारके, बहुश्रुत गीतार्थ श्रीगुरुमहाराजने साम्प्रदायिक-दीक्षा देके सिद्धांतोंकी वाचनादी, उससमय आपकी अवस्था करीब २३ सालकीथी जब व्रतग्रहणकिया, सर्वसिद्धान्तोंकी क्रमसें वाचना ग्रहण करके स्वसिद्धान्तमें अत्यत निपुण भये, तब श्री गुरुमहा-राजसहित शुद्ध सिद्धान्त विध्यनुसार क्रियोद्धार करणेका परिणाम भया, तब पर सिद्धान्तोंका अवगाहन करते हूवे, दर्शनशुद्ध्यर्थ अनेक देश अने शहर ग्रामादिकमे जिनेश्वरका दर्शन करते हुवे, पूर्व देश तीर्थोंकी जात्रा करते हूवे अतरिक्षपार्श्वनाथतीर्थ कुलपाकतीर्थ केसरियाजीतीर्थ श्री गुर्जरदेशीयतीर्थ माडवगढ मकसी सामलीया अवती चिवडोद ना-कोडा लोद्रवा कापेडा फलोधीपार्श्वनाथ मेदनीपुर जत्रालीपुर करेडा अद्भुतशातिनाथ देवलवाडा चित्रकूट राजनगर लघुमरुभूमिसबंधि अनेकतीर्थ आबु प्रभास वलेच मागरोल जामनगर गिरनार तीर्थ ओसीयां इत्यादि अनेक जिनगणधर मुनि आदि जन्मदीक्षा ज्ञान समवसरण चतु-

विंध सघस्थापन निर्वाण आदि अनेक कल्याणक भूमियोंमे प्राचीन साति-
शायितीर्थभूमियोंमे परिभ्रमणकरते हूवे और भी अनेक तीर्थपूर्व
देशीय गुर्जर वृहत्मरु लघुमरु कच्छ काठियावाड कोंकण लाट वढियार
मालव छत्तीसगढ वराड मेवाड सिंधुसौवीर पचालादि अनेकतीर्थोंकी
जात्रा करते हूवे, और अनेक शहर ग्रामादिकमे अनेक प्राचीन अर्वाचीन
श्री जैनमदिरोंके दर्शन शुद्ध भावसे करते हूवे,श्री शत्रुजयादि तीर्थ भूमि और
कल्याणकादितीर्थभूमियोंको स्पर्शन करके आपश्रीने अपनें शरीर और
आत्माको पवित्रकिया, यथार्थ शुद्धसिद्धान्तका अवगाहनकरके निर्वद्यभाषा-
के स्वीकारपूर्वकशुद्धप्ररूपणाकरणेकरके अपने वचनकों पवित्रकिया पचमहा-
व्रत की २५ शुभभावना तथा अनित्यादि १२ भावना मननकरके अपने-
मनकों पवित्र कीया और दानशीलतपजपसयमादिकरके त्रिकरणयोगकों
पवित्रकिया और यथार्थपणें परसिद्धान्तोंका अवगाहनकिया,षड्दर्शनका प-
दार्थ यथार्थ जाणा और परमार्थ ग्रहणकिया और स्वसमय परसमयका अध्य-
यनकरके, और प्राचीन अर्वाचीनसातिशयितीर्थभूमियोंको और कल्याण-
कादि तीर्थभूमियोंको स्पर्शकरके अपने समकितकों निर्मलकिया, विनया-
दियुक्तज्ञानग्रहण और शुद्ध प्ररूपणाकरके ज्ञानकों निर्मलकिया, आलोयण
प्रायश्चितशुद्धभावसें, शुद्धव्रतग्रहणकरके अखडपालनेसें चारित्रकों निर्मल-
किया, वाछारहित वाह्यअभ्यतर इच्छानिरोधरूपयथाशक्तितपकरके, अ-
पनेतपरूप आत्मगुणकों निर्मलकिया, और सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रतपरू-
पमोक्षमार्गकों देशकालादिकके अनुसारे यथाशक्ति आराधनकरना यहि म-
नुष्यभवका सारहै, इसीलिये आप श्रीनें सम्यग्ज्ञानसहिततपसयम आराध-
नकरनेका दृढ निश्चय किया, और आप श्रीनें अहोरात्रिकसाध्वाचार विचार

नित्यक्रियाकांडरूपचारित्रकी तुलना करनाभी चालु करदीया, आप श्रीका आसरे ३५ वर्षका विद्याभ्यासमे परिश्रम है, स्वसिद्धान्तपरसिद्धान्तका हृदपर्यंत कालसे ६१ की सालपर्यंत परिपूर्णज्ञान हासिलकर विराम कियाहै, और तीर्थ विद्या शास्त्र गुण कला देश सहर ग्रामदिक देशकालानुसार यथाशक्ति परिश्रमके आधारपरतो आप श्रीके परिचयमे आया नही एसातो विरलाहि प्राये होगा, और आपश्रीका अष्टप्रवचनमाताविषयि उपयोग स्मरणशक्ति व्याख्यानशैली प्रश्नोत्तरपद्धति प्रत्युत्तरशक्ति हेतुदृष्टान्तयुक्ति विरोधखंडन विसवादसमन इन्साफ युक्तायुक्त विवेचन पक्तिउच्चारणविनाअर्थशक्ति वचनलाववादि और धीरकान्तादि अनेक गुण यथार्थपणें वर्त्तमानसमय विद्यमान है, और इससमय तो ऐसा गुणी पुरुष हिंदुस्थान याने आर्यावर्त्तखडमें दूसरा कमहि होगा और इससमय श्रीजैनधर्म उपदेशक आचार्य एकसें एक गुणाधिक है, परतु देशकालानुसार सर्व गुणगणालकृत ऐसे विरले पुरुष होते हैं, और श्रीजीकी यतिसाम्प्रदायिकपर्यायमे वर्ष ९ रहना हूवा सो केवल स्वसिद्धान्तपरसिद्धान्त अवगाहन निमित्तहि रहना हूवा, ४५ के सालनागपुरमे क्रियाउद्धार कीया और जिसमेभी ७ वर्षतो भावचारित्रपर्यायतुलनामेहि रहै, फक्त एक रेलका संघट्टाखुलाथा, उससमय आप श्रीरायपुरसहरमे (२)दोमदिरोकी प्रतिष्ठाकरी और नागपुरसहरमे विराजमानथे, इसलियेहि इतना वाकीरखाथा, कारण कि वह देश विहारका न होनसे, उससमय आपश्रीके श्रीगुरुमहाराजका सहवासयोगथा, वादमे ४१ सालमे चेत सुदी १५ को आपश्रीके गुरुमहाराजका वियोग हुवा तवहिसैं जादातर संवेग परिणति वढतिहि रहि, वाद श्रीमान् कपूरचद-

जी महाराजका आशीरवाद मिला तदनंतर उनोंके पत्रसें श्री इन्दोरके श्रीसंघने आगमश्रवणनिमित्तआपश्रीकों नागपुर विनतीपत्र भेजा तब नागपुरमे आपश्री पन्नवणासूत्रवृत्ति प्रवचनसारोद्धार प्रकरणवृत्ति व[illegible]-तेथे, सो पूर्णकरके, बाद आप श्री इन्दोर पधारे यहा श्रीसंघके [illegible] परउपगारार्थ ४५ आगमोंकीवाचना मे कितेनकभगवतीपन्नवणा [illegible]-कल्पवृत्ति १० पयन्नानंदीवगेरह बाचे,थाडकुछकालतक विचरतेहुवे,[illegible]-दाबाद पालीताणा गिरनार संखेसर भोयणी वागगाजी सिद्धक्षेत्र [illegible]-जीपॅसतीजी मक्सीजीवगेरा जात्रा करतेहुवे तारंगाजी पधारे, और [illegible] आपने बहुत उपगारकिया, बाद आपनें श्री[illegible] उपदेश किया, यहउपदेश कायमेवालोनें [illegible], [illegible] ४०–५० आत्मीयोंकि साथ आप श्री [illegible] ५२ की सालका चोमासा उदेपुरकिया, [illegible] वाडेके मंदिरकी प्रतिष्टा करी [illegible] विचरतेभये, बाद यथार्थ [illegible], [illegible] विहारकरतेहुवे, आप श्रीदेसुरी पधारे, और [illegible], माल-लाइ वगेरेके मदिरोंका जीर्णोद्धारका [illegible] सालका चोमासा देसुरी किया, बाद ५४–५५–५६ [illegible] भगवतीवाचीजेसलमेर[illegible] णावृत्ति जेसलमेर[illegible] मोटी छोटी पचतीर्थीकी [illegible], [illegible] जात्रा करतेहुवे, आनंदमुनि [illegible] सिघगजनगरों और [illegible]

उसकेसाथ श्रीसिद्धाचलजी छह(६)साधुसैं पधारे स० १९५९ मे चैत्री पूनमकी जात्राकरी, वाद महूवा दाटा तलाजावगेरे जात्राकरी, वादवह ५९ सालका चोमासा पालीताणे किया, वादविहारकरतेहूवे श्रीगिरनार वनस्थली मागरोल वैरावल प्रभासपाटण वलेच पोरवदर भाणवड जामनगर जात्राकरके पीछे पोरवदर आये और ६०की सालका चोमासा पोरबदर किया जीवाभिगमवाचा सदापर्युषण जैसा वरतताथा, चोमासे वादविहारकरते हूवे गिरनार सेत्रुजय जात्राकर नवागाव सणोसरापालि- यादसुदामडासायला थान वाकानेर मोरवी होते हूवे, मालियाका रण उत्तरके,कछअजारगये,भद्रेसरतीर्थकी मेलेपर जात्राकरी, कछमुद्रा उत्तराध्य यन कछ भुज भगवती कछ मांडवी पन्नवणा कछमिद्‌डा–भगवती वाची भाडिया, कछअजार, ६१–६२–६३–६४–६५ क्रमसे यह ५ चोमासा किया, सुथरी घृतकल्लोलतीर्थ जखाऊ नलीया तेरा कोठारा वगेरे जात्राकरी, हरसाल ५ वर्पतक उपधानतप हूवा, एकदर कछ देशमें साधु सावधीयाकी १० आसरेदीक्षाहूइ, और ६५ की सालमे कछमाडवीका नाथाभाइ वजपालकासघछहरी पालता निकला उसके साथ श्रीसिद्धगिरिजीकी जात्रा१७ठाणेसाथकरी, और६६कीसालका चोमासा पालीताणे किया नदीसरद्वीपकी रचना भइ साधु२साधवीओं३की दीक्षा- ५भइ वाद गिरनारकी जात्राकरी, ६७की सालका चोमासा जामनगर किया, भगवतीवाची समवसरणकी रचना उछव पूजा प्रभावना उपधान तपदीक्षा ४ वगेरे हूवे, वाद ६८ का चोमासा मोरवी किया,.भगवती व्याख्या- नमें वाची वाद गीरनारसत्रुंजय सखेस्वर भोयणीयात्राकर६९का चोमासा अहमदावाद कोठारीपोल नवाउपासरामे किया,चोमासेवाद पानसर भोयणी

तारंगाजी होते हूवे वीसनगर वडनगर लादोल विजापर माणमा पीथापुर देगाव कपडवज महूधा खेडा श्रीसधादेवमातरमे, खभातमे श्रीस्तभणापार्श्वनाथ स्वामिकीजात्राकरी, वाद ७० का चोमासा रतलामवालासे ठाणीजी सेठ श्रीचादमलजीकी घणियाणी के आमहसे पालीताणे किया, भगवती शत्रुजय महात्मयाचा उपधानतप पूजा प्रभावना सामीवत्सलवगेराहूवे, वाद सीहोर वरतेज भावनगर घोघा तणहो दापस तलाजा जामवाडी श्रीशत्रुजयकीजात्राकरके क्रमसें विहारकरते हूवे वलेमें १ साध्वीकी दीक्षाभइ, खभायत आये, तबसुरतसे जव्हेरी पाना भाइ भगुभाइ वीनती करणेकों आये, तब उनोंकी वीनती मानकर सुरततरफ विहार किया, क्रमसें वडोदा पालेज जिनोरहोते जगडीयाकी जात्राकरते हूवे मार्गमे १ साधुहुवा सुरतपधारे प्रवेश उत्सव साथ गोपीपुराके नवा उपासरामे पधारे देशनादी, ७१ सालका चोमासा सुरतमें किया, नदीश्वरयारमें वाचा१साधुकी दीक्षाहुइ वाद विहार करके कतारगाम कठोर वगेरा फरसते हूवे, तीर्थे जगडीयापधारे, जात्राकरी, झाडवे होके भरुअच्छकी जात्राकरी, वाद क्रमसें पालेज पधारे, वाद वहासें आमोदजबूसर होते गधार तथा कावीतीर्थोंकी जात्राकरके क्रमसें पादरा दरापरा पधारे परन्तु वहा असाताके उदयसें, बुखार मुदती हूवा, परन्तु पन्यास आणदसागरजीकी शास्त्रार्थके लिये आणेकी प्रतिज्ञाथी, तिसकारणपौषी १५ की म्याद पूरण करनेके लिया, आपश्री शहर वडोदाकेपास ५ कोसपर ठहरे हुवेथे, आगे विहार नहिं किया, प्रतिज्ञाहानिके भयसें, आपश्रीके जादा तकलीफ होनेपरभी आपश्री स्वप्रतिज्ञा पर्यंत वहाहि रहै, परतु पंडिताभिमानी वह पन्यास आणदसागरजी स्वप्रतिज्ञापर हाजरनहिं हूवा,

बाद वैद्यके आग्रहसें इलाजकरानेंकों शहरवडोदापधारे, वैद्यने तनमनसें इलाज किया, तीन महिनेसें तबियत कुछ विहारलायक हुइ, तब मुबईकी फरसनाके प्रबलतासें वैशाखमासमे वडोदासेंविहार किया, क्रमसें डभोइ सीनोर जगडीवा सुरत नवसारी बिल्लीमोरा वरसाड वापीश्रीगाव देणु अगासी भयदर अदेरि महिम वगेरा गामोंकों फरसते हूवे, श्रीजिनमंदिरकों जात्राकरते हूवे, श्री मुबई शहर भायखलामें प्रथम पधारे बाद प्रवेशमहोत्सव के साथ लालबागमे पधारे, वहा हि आपका चोमासा सकारण दोय ७२–७३सालका हुवाथा, उससमय आप भगवती सूत्रवृत्ति भावनामे अभय कुमारचरित्र पाडवचरित्र फरमातेथे, उसवाणीकों आपके मुखारविंदसें श्रवण करतेहिं पूर्वसूरियोंका स्मरणहूवा तिसकारण श्रीमुबई संघने साम्प्रदायिक क्रमागत महोत्सवस्हित यथाविधि सुरिमत्रपूर्वक आचार्यद्वारा आचार्यपदमे स्थापितकिये, पौषी १५ पुष्यनक्षत्रे आठसे ११ पर्यंत समय मे हुवे, मुख्यनाम श्रीमज्जिन कीर्तिसूरीश्वर, अपरनाम श्रीमज्जिनकृपाचद्रसूरीश्वर नामसें प्रसिद्ध भये, उससमय भगवतीसमाप्त्यर्थे आचार्यपदनिमित्त पचतीर्थोत्सव पचपहाडरूप १६ दिनमहोत्सवसामिवत्सलप्रभावनावगेरा बहुतसें धर्मकृत्य हूतेथे, ७३ के चोमासेबाद माघ मासमे विहार किया, क्रमसे धीरे धीरेविहार करते हूवे, अगासी देणु वापी दमण वलसाड गणदेवी होते हूवे, सुरत जिल्लेमे पधारे मार्गमें ३ साधुकी दीक्षाभइ तिस अवसरमे सुरत निवासनी कमलागुलाबनामकबाईने बुहारी पधारणेंके लिये विनती करी, बाद आप अष्टगांव सातम होते हूवे कडसलिये पधारे, वहाबुहारीसें मुख्यलोक आकर विनती करी, तबसबकी विनती मानकर, बुहारी पधारे उहा श्री

वासुपूज्यस्वामीका तीनमजलका देरासरमे ३ बिंब श्रीशीतलनाथस्वामी वगैरे ऊपरले मजलमे प्रतिष्ठितकरवाकर विराजमान बाई कमलाने किये, बादशातीक्षात्रकराइ, बाद सघने मिलकर चोमासेकेलिये आग्रहकियाथा १ दीक्षासाधुकी बाजीपुरेमेहुइ इसलिये ७४ कीसालका चोमासा बुहारीमें किया, २ दीक्षासाधुकी चोमासेबाद हुइ बाद फरसनासाथ कडमलीया सातम अष्टगाव नवसारी जलालपुर फरसते हूवे, सुरत पधारे, और सुरतमें बहुतसे धार्मिककारणोंसे ७५=७६ साल के दोय (२) चोमासे किये, ५ साधु २ साधवीकीदीक्षाभई जिसमे जवेरि पानाभाइ भगुभाइ घोथरागोत्रीयसुश्रावकने आसरे ३६००० रुपिया खरचके प्राचीन शीतलवाडीउपासरेकाजीर्णोद्धारकराया श्रीजिनदत्तसूरि ज्ञानमदिर बधाया और प्रेमचदभाइ केसरिभाइ धमाभाइ मछुभाइ वगेरे ने ऊजमणा किया, भूरियाभाइने यात्रियोके उतरणेकी १ धर्मशाला कराइ बाद विहार करते हूवे, कतारगाम कठोर क्रमसें जगडीया तीर्थमें श्रीरिषभदेवस्वामीके जन्मोत्सवकेदिनयात्राकरी सुकलतीर्थ जीनोर पाछापुरा पालेज मियागाव वगेरा स्थलोकों फरसते हूवे, क्रमसें विहार करते हूवे, आषाढ वदि १० भृगुरेवतीके रोज शहर वडोदामे पधारे, और ७७ सालका चोमासा शहरवडोदामें किया, भगवतीवाची चोमासे बाद विहार करते हूवे छाणी वासद आणद नलीयाद मातरमे सचादेव खेडावगेरामे जिनदर्शनकरतेहूवे श्रीराजनगरपधारे, बाद नरोडा वगेरा होतेहूवे, कपडवजपधारे, बाद गोधरा देवद क्रमसे रभापुर झाबुआ राणापुर पिटलाद कर्मदीहोतेहूवे मालवादेशमें शहररतलाम जेठमास के व० ४ कु पधारे, वहा ७८ सालका चोमास किया जिसमें भवगतीसूत्र वखाणमें वाचा उपधानतप साधु ३ साधवी-

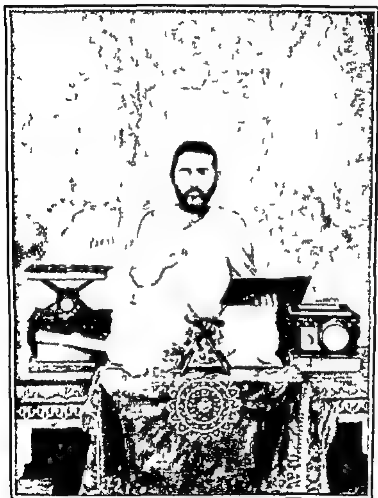
२ की दीक्षावगेरा बहुतसे धर्मकृत्यहूवे, चोमासेवाद वागडोद् सेमलीया, सरसी जावरा रोजाणा रिंगणोद गुणदी ताल आलोट पधारे वाद पीछे रिंगणोद पधारे वै० व० ७ की यात्राकरी, वादशीतामहु सें मानपुर ताल वगेरा होते हुवे महिंदपुर पधारे वहां १ साधवीकीदीक्षा हुइ, वादक्रमसें विहारकरते हूवे, उज्जयनपधारे, श्रीऐवतिपार्श्वनाथजीकीयात्राकरी उज्जेनसें कायथा होतेहूवे श्रीमकसीपधारे, यात्राकरी क्रमसें देवासवगेरा होते हूवे, आषाढ वदि १० को इन्दोरसे आपश्री पधारे, वहा आपका ७९ सालका चोमासा हूवा, जिसमे भगवती सूत्रवृत्तिकी वाचनाकरी, तप-उपधान हूवा, चोमासेमे १ ज्ञानभंडार हूवा, जिसमे वहुत पुस्तक कपाट वगेराका समहकीयागया है, महोपाध्याय १ वाचक २ प० ३ पदवी दीया १ साधुकीदीक्षाभइ चोमासेवाद संघसाथ तीर्थमाडवगढजात्राकरके धारा नगरी पधारे, वाद अमीजरा भोपावरमे श्रीसातिनाथस्वामी राजगढमें श्रीमहावीरस्वामीकी यात्राकरी वाद देशाइ कडोद वगेरा होते हुवेचखतगढ वदनावर वडनगर वगेरा फरसते हुवे, क्रमसें खाचरोद पधारे १९८० मे चैत्रकी ओलीकरी वाद खाचरोद से विहारकर क्रमसें सेंमलीया नामली पंचेड सह्लाणा आये दरवारको उपदेशकरा वाद पीपलोदा सुखेडा अरुणोद्-वगेरा होते हुवे, आपश्री प्रतापगढ पधारे, वाद प्रतापगढसे क्रमसें तीर्थ वईपार्श्वनाथस्वामिकी यात्राकरी, वईसें क्रमसे आपश्री दशपुर नगर याने मदसोर पधारे, वहा आपश्रीका ८० सालका चतुर्मासक हूवा, नदीं-सूत्रवृत्तिः शत्रुंजयमहात्मकी वाचना भइ, मंदसोरसे विहार करते हूवे क्रमसें वई कणगेटी जीरण नीमचछावणी जावद केसरपुरा नीबाडा शतखडा वगेरा देखते हूवे, चित्रकूटगढ पधारे, चितोडसें सिंगापुर कपासण तीर्थ-

करेडामे श्रीपार्श्वनाथस्वामिकी १४ साधुसाथ यात्राकरी सणवाड मावली पल्हाणो देवलवाडा नागदा एकलिंगशैवतीर्थकेपास जैनअद्भुतश्रीशान्तिनाथस्वामीका स्याममूर्तिरूपतीर्थ है इत्यादिजात्रा करते हूवे, क्रमसें उदेपुर पधारना हूवा था, बादकुछ ठेरकर आपश्री कलकत्ते निवासी बाबू चपालाल प्यारेलाल वगेरेके सघसाथ श्रीकेसरियाजी पधारेथे, वहा कारणवसात् मास २ ठेरनाहूवाथा औरवहा आपश्रीके परिश्रमसे श्रीजैनश्वेताम्बरोंकाहक्कसमर्थक १ शिलालेख प्राप्तकियाथा, फिरवापीस उदेपुर पधारे, श्रीसघके आग्रहमे ८१ सालका चतुर्मासक २५ ठाणासें उदेपुरकिया, चोमासेबाद महेता गोविंदसिंघजीकी सरायमे ४ दिन ठहरे बादचेदला मदार गोगुदा नदेसमा ठोल कमोल सायरा भाणपुरा होते राणकपुर पधारे औरजात्राकरी, बादसादडी घाणेराव महावीर स्वामिकीजात्राकरी, बाद देसुरीसोमेसर णादलाइ नाडोल वरकाणापार्श्वनाथस्वामिकी जात्राकरी, बादराणी इसटेसन् राणीगाम खीमेल साडेराव दुजाणा लिमाणदी भारुन्दो कोरटपुर वाकली तखतगढ पादरली चादराइ चूडा सरवाली आहोर गोदण गढजवालिपुर याने जालोरदेवावास भमराणी रायथल मोकलसर सीवाणोगढ कुशीव आओत्तरा वालोत्तरा नगरवीरमपुर याने महेवामे, श्रीनाकोडापार्श्वनाथस्वामिकीयात्रा ४ वक्तकरी जसोलवालोत्तरा पचभद्रा वालोत्तरा बादक्रमसें वालोतरे ८२ सालका चोमासा वर्त्तमान है, अब आपश्रीके साधुसाध्वीयोंकाएकदर समुदाय करीवन् ४५–५० का है, जिसमें १० या १२ आपश्रीके साथविचरतें हैं, बाकी साधु अलगदेशोमे विचरतें है, एकसाधुनवावासकलमे ६३ के साल काल धर्म प्राप्त हूवा था, श्रीमतीसौभागश्रीजी नामक मुख्यसा-

ध्वीजी अमदावाद चोमासे के पहला ६९ में काल धर्म प्राप्त हूइथी, मुनि-कुंजर श्रीमान् प० आणदमुनिजी महाराज ७० का चैत्र वद २ शुक्रवारकों उमरालेमे स्वर्गवास प्राप्त हुवे थे आसरे ३१ साध्वीया आपश्रीकी विद्यमान हैं और आसरे २५ साधु आपश्री के विद्यमान हैं और कितनेक शिष्य यति वेषमेभि विद्यमान हैं, और आपश्रीके तीनठिकाणे पुस्तकोंका संग्रहरूप ज्ञानभंडार विद्यमान हैं प्रथम बीकानेर २ सुरतवंदरमे ३ मालवा शहर इन्दोरमे है, और आप श्रीके चारित्र पर्यायमे एकंदर चोमासा ४६ व्यतीतहुवा है, और सैतालीसमाचालु हैं, और आप श्री नित्य एकल आहारी हैं और आप श्री सदा अप्रमादी हैं, आपश्रीकी ६९ आसरे वर्षकी अवस्था हैं, तथापि आप श्री जराभि प्रमाद नहिं करतें हैं, और आपश्री परिपूर्ण ज्ञानहासिलकरके पीछे सर्वअशुभक्रियाका त्यागरूप सवर चारित्रकी आराधनाकरनेवाले भये हैं, सम्यक्चारित्र या भावचारित्र इसीकों कहतेंहैं, इसीकों सम्यक्ज्ञानी चारित्री शास्त्र कारफरमातें हैं, इसीलिये दरेक धार्मिकक्रिया ज्ञानपूर्वकहि करना चाहिये, तथाहि शास्त्रसमति, प्रथमज्ञपरिज्ञा पश्चात् प्रत्याख्यान परिज्ञा पूर्वकहि व्रतादिक करना ऐसा श्रीआचारांग है, और प्रथमज्ञान अने पीछे दया यानेजीवरक्षादि क्रिया है, एसा श्रीदशवैकालिक है, ज्ञानपूर्वक त्याग सुपचख्काण रूपसें श्रीभगवती है इत्यादिअनेक सिद्धान्त है, इसीलिये सिद्धान्तानुसार आपश्रीकी सम्यक्प्रवृत्ति है, अतः सम्यक् ज्ञानी शुद्धप्ररूपक कंचन कामिनी के परिहारक श्रेष्ठ मोक्षमार्गाराधक स्वपरात्मोपकारक सुगुरु हैं, अत. अहो सज्जनो एसे सुगुरुवोंकी आणापालणी शुद्धचित्तसें सेवाकरणी विनयवैयावच्चकरणी तपसयमादिक

श्रीमद् जैनाचार्य श्री श्री १००८ श्री जिन कृपाचन्द्र
सूरीश्वरजी महाराज के शिष्य

स्वर्गीय पंडित श्री आनंदमुनिजी महाराज.



जन्म संवत १९४२ दीक्षा संवत १९५६ स्वर्ग १९७२.

ग्रहण करणा भक्ति भावना करणें कराणें अनुमोदनेंसें इहलोक परलोक आत्मा शरीरादिक निर्मल होवे हैं, स्वर्ग अपवर्ग की प्राप्ति होवे यह नि.- सदेह है, और आपश्री वयस्थविर पर्यायस्थविर श्रुतस्थविरभीहैं, अतः महान् पुरुषहै, नमोस्तु भगवते श्रीवर्द्धमानाय सर्वकर्मक्षयायच नमोनमः श्रीइन्द्रभूत्यादि एकादशगणधरेभ्यः नमोस्तु अनुयोगवृद्धेभ्यः सर्वसूरिभ्यः नमोनमः कोटिकगणवज्रशाखखरतरविरुदचान्द्रादिकुलधारकेभ्यः नमोस्तुयुगप्रधानपदभृत्, श्रीमज्जिनभद्रसूरये श्रीमज्जिनकीर्तिरत्नसूरये च नमोनमः नमोस्तु श्रीसघभट्टारकाय, इति श्रीकीर्तिरत्नसूरिशाखाया तत्परम्परायाच युगप्रवरागमश्रीमज्जिनकृपाचंद्रसूरिवराणा नाममात्रेण चरित्रलेशोय दर्शितः

सारसारं स्फुरद्ज्ञानधामजैनं जगन्मतं, कारंकार क्रमाभोजे, गौरवे प्रणतिं पुनः ॥ १ ॥ यथा स्मृत्यनुसारेण, श्रीमदानंदमुनेः चरितमिदमुपदर्श्यतेत्र मयाका, भव्यहितं स्वपरोपकाराय ॥ २ ॥

श्रीमदानदमुनेः चरित्र लेशो यथा—अहो सज्जनो युगप्रवरागमसत्सं-प्रदायिसत्क्रियोद्धारकारकः श्रीमज्जिनकृपाचन्द्रसूरिवराणा विद्वत्‌शिरोमणि जेष्ठातेवासी श्रीमद् आनदमुनिजी महाराजका लेशमात्र मेरी बुद्धि अनुसार याने स्मृतिधारणानुसार चरित सुणाता हू सो आपलोक सावधान होकर सुणिये, इसीजबुद्वीपका यह दक्षिणार्धभरतक्षेत्रके मध्यखडमे बृहत्मरु नामकदेशहै, उसमे शहर जोधपुरसे पश्चिम भागमे वाराणाऊ नामक वरग्रामहै, तत्र भोगवशे सर्वसपत्तिसमन्वितो वलश्रीः नाम्नः अभवत्कुलपुत्रकः, इत्यादि उसग्राममे भोगवशमे उत्पत्ति जिसकी एसा सर्व सपदायुक्त वलश्री नामका एक कुलपुत्रीया रहाता था,

उसके उग्रकुलसभूता शीलसुदरी नामकी प्रधान स्त्रीथी, उणोके सुखसें काल जाता थका कालक्रमकरके शुभस्वप्नसूचित एक पुत्र हूवा, कुलक्रमागत मर्यादारूप पुत्रका जन्मोत्सवकिया, बाद सूतक निकालके, स्वजातिवगेराकों भोजनकराके पीछे सर्वलोकोंके सामने माता पिताने यह विचार कियाकि यह पुत्र अपने कुलकों अतिशय आनदकरनेवाला है, इसलिये कुमरका नाम आनदकुमार होवो, बाद समय जन्मका जोतिषीकों देखाया, तब जोतिषीने ग्रह मिलाकर विचारके कहा इसकी माताने वृषभका स्वप्नदेखा है, यह बालक तुमारे कुलमे दीपक समान होगा राजाओंकाराजा होगा अथवा विद्वान शिरोमणि भावितात्मा आणगार होगा, और इसका १५ में वर्षमे विवाहहोगा बाद कर्म दोषसें सपदा क्षीयमाण होगा, और तुमारे काल धर्म प्राप्त हूवे बादभी यह कुमार विदेश गमनसें महान् लाभ प्राप्त होगा, और स्त्री सुहवदेवी होगा, उसके पतिका संयोग करीबन् डेढ वर्ष पर्यंत रहेगा, बाद विदेशगमन करेगा, और यह कन्याऊमर पर्यंत सौभाग्यवती हि पिताके घरमे रहिथकी आपना आयु पूर्ण करेगी, और यह कुमर आयु ३३ वर्षके भीतर हि भोगवेगा, और इसकी माताने वृषभका स्वप्नदेखा यह अत्युत्तम है, और शुभ स्वप्नके देखणेसें अल्पायुरादि दोष नहिंहोनाचाहिये, परतु इसके ग्रहोंसे यह दोष स्पष्टहि मालूम होवे है इसलिये यह हीयमानकालका हि प्रभाव है, इत्यादि निमित्तभावि कहके शुभाशीर्वाददेके जोतिषी रवाना हूवा, बाददूसरेदिन बहुत हि तपासकरी परतु वह नैमित्तीयातो नहिं मिला तब बडे हि आश्चर्यकों प्राप्त हूवे, और विचार किया कि इस बालकके तकदीरसें आयाथा सोचलागया, नहितो विद्वान विदेशी कहासें

इहा आवे, इसतरे विचारकरके अपने सासारिक कार्यमे लगगये, बाद कितनाक काल वीतने पर नैमित्तीयेके वचनानुसार भाव होने शरु हूवे तथापि मोहके वश होकर सुहवदेवी नामुकी कन्याके साथ सगाइ करी, बाद क्रमसें विवाहभी हूवा, बाद माता पिता समाधिसें कालधर्म प्राप्त हूवे, बाद अपने माता पिताका स्वकुलोचित लोकिक व्यवहार निपट करके, तिसकेबाद दायभागादिकभी देलेकर निश्चित हूवाथका अपनी स्त्री सुहवदेवीकों उसके पीहर पोहोचाके, अपना हार्दिक अभिप्राय किसीके आगेनहिं कहके विदेशगमनकेलिये किया है मनमे निश्चय जिसनें ऐसा यह आनदकुमार अपने घर आयके रहा, और चोथ शनि रोहिणी का सयोग आनेपर रात्रिके पश्चिम भागमे अर्थात् ऊषाकालमे विदेशजानेका मन ऐसा यह आनंदकुमार चद्रनाडी वहता थका डावा पाव आगे करके अपने घरसें उत्साह सहित निकला तब माघ मास था, अनुक्रमसें ग्रामनगर आकरादिक फिरता हूवा यह आनदकुमार श्रीफल-वर्धिक पुरमे प्राप्तहूवा और तिसनगरमे स्वेछासे फिरता हूवा धर्म स्थानोंकोदेखरहा है, तिसअवसरमे उसके प्रवल पुन्यसेंहिमानु खेंचा हूवा होवे एसा एक मुनि अकस्मात् उपाश्रयसें बाहिर निकला, तब उस मुनिकों देखकर यह आनदकुमार अनहद हर्षकों प्राप्त हूवा, और कहा आपलोक कोनहो, और क्या करोहो, तबमुनि बोला हे भद्र हमलोक जैनीसाधू हैं, और ज्ञान ध्यानतप सयम करतें हैं, और तेंरेकोभि यह करना होतो हमारेपास आव, तब यह धर्म श्रद्धालु आनदकुमार शीघ्रहि सर्व मुनियोंसहित श्रीगुरुमहाराजके समीपमे आकर नमस्कार करके इसतरे बोला कि हे भगवन् आपकावेश वचन धर्मकृत्य मुझे भिरुचा

है, वहुतहि अछा है, मेभी आपकी सेवामेरहू, अर्थात् मेभी आपका शिष्य होवु, तब गुरु महाराज वोले, हे भद्र जेसा सुखहोवे वेसाकरो परतु शुभकार्यमे देरीनहिकरणी ऐसा महाराजश्रीका वचन सुणके जैनधर्म ऊपर परिपूर्ण श्रद्धाभइ, और क्रमसे गुरुवचनानुसार चारित्रग्रहणकरके और धार्मिकशास्त्र न्याय व्याकरण वगेरे शास्त्रोंकी शिक्षा ग्रहण करके विचक्षण भये और सर्वमुनिमडलमे शिरोमणि हूवे और जैनमुनियोमे पंडितशिरोमणि थे, और कितनेक जैन सिद्धान्तोका गुरुमुखसे अवगाहनकियाथा और कितनेक कर रहेथे, इस अवसरमे हमारे अभाग्यके दोपसें और जैन प्रजाके गुणीव्यक्तिका अभाव ज्ञानि देखा था इस कारणसे आपका देहान्त हुवा, और आपने चारित्रग्रहण करके १४ चोमासे श्रीगुरुमहाराजके साथहि कियेथे, ५७–५८ वीकानेर शहर और जेतारणमे हुवाथा, देश मारवाड, ५९–६० यह चोमासे देश काठियावाड पालिताणा और पोरवंदरमे हुवेथे, वाद ६१–६२–६३–६४–६५ कछ मुद्रा कछभुजराजधानी कछमाडवीवंदर, कछभिदडा कछअजारशहर, यह ५ चोमासे कछदेशमे अनुक्रमसें हुवेथे, वाद ६६ का चोमासा फिर पालित्ताणेमे हुवा था, देश काठियावाड, वाद ६७–६८ जामनगर और मोरवी राजधानी मे हुवे थे, चोमासे, वाद ६९ का चोमासा देश गुजरात राजनगर याने असदावाद मे हुवा था, वादरतलामवाले सेठाणी साहवके जादातर आग्रहसें फिर पालिताणे मे हुथा, यह ७० की सालका चोमासा देश काठियावाड मे (सोरठ) अपश्चिम हुवाथा, और आपकी ऊवर तो छोटीथी, परन्तु बुद्धि और प्रतिभा बहुतहि अतिशायिनीथी, और

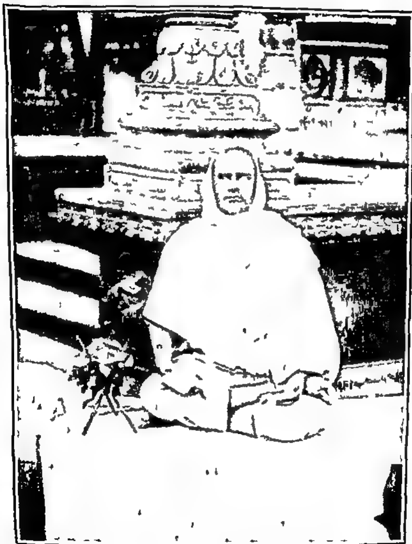
आप आचार्य नेमविजयजी पं० मणिविजयजी मु० वल्लभविजयजी मु० चारित्रविजयजी मु० बुद्धिसागरजी अजितसागरादि वहुतसें ज्ञानवृद्ध मुनियोंसें मुलाकात रुवरुलेकर अपनेज्ञान गोष्ठिका परिचयदिया करते थे, और आप मुक्तकठसें प्रशसाभि वहुतसीहिहासिल करतेथे, और आपकी अतिशयिनी ज्ञानवगेराकी शक्तियोंको देखकर मुनिमडल आश्चर्यकों प्राप्तहोते थे, अहो इति आश्चर्ये यह मुनि क्या देवसूरिहै, या निर्जितशुक्रमति है अथवा साक्षात् देवसूरिहि या दैत्यसूरिही इस मर्त्यलोकमे यह मुनिरूप धारण करके आया है क्या, अन्यथा मनुष्य तो इससमय ऐसा होना दुर्लभ है, कारणके स्वरउच्चारण रूप आकार इंगित चेष्टित प्रायें मनुष्यका एसा होना इस समये असभव है, इत्यादि सदेहकों प्रेक्षकवर्ग या मुनिमडल प्राप्त हुवा करते थे, आप थोडेहि अरसेमे श्रीशासनप्रभावक वडे भारी विद्वान समर्थपुरुषहोनेवाले थे, परतु इसतरेके पडित महामुनिको कालचक्रने थोडे हि समयमे सहरणकरलिया यह जैनसमाजके लिये वडे अपशोचकी वात भई ॥ आपका गुरु सह सगमस्थान फलोधि है आपका जन्मस्थान वारणाऊ है, आपका दीक्षास्थान खीचंद है आपका स्वर्गवास स्थान ऊवराळा नामक ग्राम है, देश काठियावाड मे पालिताणासे १२ कोश है साल ७० चैत्रवदि २ शुक्रवार दिनमे ३ वजे आसरे है नमोस्तु भगवते श्रीपार्श्ववीराय जन्मजरामरणातीताय नमोस्तु सर्वसूरये नमोनमः श्रीमज्जिनभद्रसूरये श्रीमज्जिनकीर्तिरत्नसूरये च ॐनम॰ श्रीसघ भट्टारकायेति श्रीमज्जिनकीर्तिरत्नसूरिशाखाया तत्परम्पराया च श्रीमज्जिन कृपाचद्रसूरीश्वराणा प्रधानशिष्य–श्रीमदानदमुनेः चरित्रलेश. यथा स्मृतिकथित॰ भद्रं भूयात् अनयोः गुरुशिष्ययो चरितस्य विशेषविस्तारं

तु यथावसरं चिंतयिष्यामः अतः प्रकृतमनुश्रियते इति कहांपर क्या प्रकृत है, इहापर यह प्रकृत है कि ग्रन्थकारकों अपने ग्रथ लिखणेमें छाद्मस्तिक भावसें या वुद्धिमाद्यतादिकसें अथवा छापेका दोष या दृष्टि दोष वगेरा दोषोंकी सभावनाका मिछामि दुकड देना चाहिये एसा शिष्ट-जन समाचरण है, यह यहा प्रकृत है और सहायकका सहायकपणाभी उपगारित्व भावसें स्मरण जरूर करणाचाहिये, इसलिये चरित्रकार इसीका अनुसरण करते हैं नमोस्तु श्रीश्रमणसघभट्टारकाय, नमोस्तु श्री चतुर्विधसंघायेति अहो सज्जनो मैंने जो यह समर्थमहान्पुरुषोंका लेशमात्र यथामति गुणवर्णनरूपचरित्रआपलोकोंके समक्ष उपस्थित किया है, सो आपलोक सावधानहोकर उपयोग देकर पढें, और श्री-गुरुभक्तिरूप लाभ हासिल करें और इस पुस्तकमे या इसकी प्रस्ताव-नामे जो मेने जादा कम जिनाज्ञाविरुद्ध शास्त्रविरुद्ध संप्रदाय विरुद्ध अर्थ लिखा होवे, उसका श्रीसंघसमक्ष मिछामिदुकड होवो, और जो मेने इस पुस्तकमे श्रीगुरुगुणवर्णन रूप सदर्थ लिखा है, सो अवश्यहि ग्रहणकरणा, और छापादोष दृष्टिदोप वगेरा भयाहोवे-सो सुधारकर पढें, और छाद्मस्तिक भावसें भूल वगेरा रहनेका संभव है, सो सज्जन विद्वान पुरुषोंको मेरेपर कृपाकर सुधारलेना, और कोइतरहकी गलती अर्थवगेराकीत्रुटीरहगइ होवे सो पूरण कर समाधानकरणा और मिथ्याअर्थका त्रिकरणयोगसें मिछामिदुकड है, यह सज्जन विद्वानोसें नम्र प्रार्थना है, और यह पुस्तक लिखणेकी छपाणेकी प्रेरणा तथा सहायता वगेरा शहर दक्षिण हैदरावाद निवासी रा० रा० माननीय रायवाहादुर दीवानवाहादुर राजावाहादुर श्री

लूणीया गोत्रावतंसक श्रीमान् सद्गृहस्थ सेठ श्रीस्थानमल्लजी तथा सहर जेतारण निवासी, श्रीगुरुदेवमहाराजके परम भक्त, सुश्रावक सेठ श्री छगनमल्लजी हीराचंदजीने वर्तमान भट्टारक आचार्य महाराजकों आग्रह कियाथा, वह उनोंका मनोर्थ आजरोज सफल होनेपर आया हैं, इसलिये अत्यानदका समय हैं, और जगत ईश्वरादि कर्त्तृत्वविपयिसप्रश्नोत्तर विशेपप्रस्तावना समग्रग्रथपूर्णहोनेपरदीजावेगी, और ऊपरोक्त श्रीमानोंकी पूर्णआर्थिकसहायतासें यह महद् श्रीदादासाहेबका चरित्र सिद्ध हुवा हैं, और दक्षिण हेदराबादमे रहनेवाले अनेक देश शहर निवासी श्रीसघकी द्रव्यसहायतासें वडे दादासाहेब युगप्रधान श्रीमज्जिनदत्तसूरीश्वरजीका चरित्र सिद्धहुवाहैं श्रीरस्तु शुभ भवतु योगक्षेमं भवतु भद्र भूयात् कल्याणमस्तु नमः श्रीवर्धमानाय श्रीमते च सुधर्मणे । सर्वानुयोगवृद्धेभ्यो वाण्यै सर्वविदस्तथा ॥१॥ अज्ञानतिमिरांधानां ज्ञानाञ्जनशलाकया, नेत्रमुन्मीलितं येन, तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ २ ॥ श्री वर्धमानस्य जिनेश्वरस्य, जयन्तु सद्वाक्य सुधाप्रवाहाः । येपां श्रुतिस्पर्शनजः प्रसत्तेः, भव्या भवेयुर्विमलात्मभाजः ॥ ३ ॥ श्रीगौतमो गणधरः प्रकटप्रभावः सल्लब्धिसिद्धिनिधिरञ्चितवाक्प्रबंधः, विघ्नांधकारहरणे तरणिप्रकाशः, सहाय्यकृत् भवतु मे जिनवीरशिष्यः ॥ ४ ॥ दासानुदासा इव सर्वदेवा यदीयपादाब्जतले लुठन्ति, मरुस्थली कल्पतरुः स जीयात्, युगप्रधानो जिनदत्तसूरिः ॥ ५ ॥ सिद्धान्तसिन्धुः जगदेकबन्धुर्युगप्रधानप्रभुता दधानः कल्याणकोटीः प्रकटीकरोतु, सूरीश्वरः श्रीजिनभद्रसूरिः ॥ ६ ॥ पट्त्रिंशद्गुणरत्ननीरनिलयः श्रीशंखवालान्वयः, प्रस्फु-

श्रीमद् जैनाचार्य श्री श्री १००८ श्री जिन कृपाचन्द्र
सूरीश्वरजी महाराज के पट्ट शिष्य

उपाध्याय जयसागरजी गणि



जन्म संवत १९४३ दीक्षा संवत [illegible] उपाध्यायपद [illegible]

अथ चरित्रस्थविविधविषयानामनुक्रमो यथा—

अर्हम् ।

श्रीयुगप्रधानपदोपबृंहितसमस्तजगदोद्धरणसमर्थ श्रीमज्जिन-
दत्तसूरिचरित्रम्

विद्वच्छिरोमणिश्रीमदानंदमुनिभिः संकलितं

पं० मुनिश्रीजयमुनिना संस्कृतं

लोकभाषोपनिबद्धं च ।

श्रीमज्जिनदत्तसूरिचरित्रम् ॥

स्वस्तिश्रीजयकारकं जिनवर कैवल्यलीलाश्रितं
शुद्धज्ञानसुदानयानप्रकरैर्निस्तीर्णभव्यव्रजम् ।
प्रोल्लासाद्भुतप्रातिहार्यसहितं रागादिविच्छेदकं
तीर्थेशं प्रथमं नमामि सुतरा श्रीआदिनाथाभिधम् ॥१॥

॥ शार्दूलविक्रीडितं वृत्तं ॥

श्रीशांतिः कुशलं ददातु भविनां शांतिं श्रिताः सर्वके
ध्मातः शांतिजिनेन कर्मनिचयो नित्यं नमः शांतये ।
शांतेः शांतिसुखं गता च मरिका शांतेस्तथा शांतता
शांतौ सर्वगुणाः सदा सुरतरुः श्रीशांतिनाथो जिनः ॥२॥

॥ द्रुतविलंबितं वृत्तं ॥

विहितसंवरभानजगज्जनं नरसुरेश्वरसेवितपत्कजं ।
प्रवरराजिमती हितकारकं नमत नेमिजिनं भवतारकम् ॥ ३ ॥

॥ द्रुतविलंबितं वृत्तं ॥

अवरनिर्मलधर्मविबोधकं भुवनदुःकृततापविशोधकम् ।
ज्वलदहेः परमेष्टसुखप्रदं श्रयत पार्श्वजिनं शिवकारकम् ॥ ४ ॥

॥ शिखरिणी वृत्तं ॥

सदेवेंद्रैः पूज्योह्यतिशयविभूत्या पुनरपि
तपस्तीव्रं तप्तं क्षपितभवदाहः शमतया ।
बहूनां भव्यानां जनितजिनधर्मो भवहरः
महावीरो देवो जयतु जितरागो जिनपतिः ॥ ५ ॥

॥ पुनः शार्दूलविक्रीडितं वृत्तं ॥

सर्वाभीष्टवरप्रदानप्रथमः सर्वस्य सिद्धिस्ततः
आख्येयस्य च संतिकामसुदुघा कल्पद्रुचिंतामणिः ।
ध्यायेत् गौतमनाममंत्रमनिशं स स्यान्महासिद्धिभाक्
सर्वारिष्टनिवारको ददतु सः श्रीगौतमः केवलं ॥ ६ ॥
वंदिता सर्वदेवैः सा वाग्देवी वरदायिनी ।
यस्याः प्राप्तौ जनाः सर्वे ज्ञातता पूज्यता ययुः ॥ ७ ॥

॥ पुनः शार्दूलविक्रीडितं वृत्तं ॥

अंभोद्भासियुगप्रधानपदवीविभ्राजमानः पुनः
ज्योतिर्व्यंतरदेवनागसुसुरैः संसेवितः सन् सदा ।
आप्तोक्तिं स्मरता च जैनसुकुला लक्ष्मीकृताः श्रावकाः
भूयाच्छ्रीजिनदत्तसूरिगणभृत् सर्वार्थकल्पद्रुमः ॥ ८ ॥

॥ आर्या ॥

सूरिश्रीजिनकुशलः क्षितितललब्धोदग्रयशःप्रसरः ।
सेव्यः सैव गुरुभक्त्या भवंतु श्रीजित् किमन्यदेवेन ॥ ९ ॥

एते सर्वेपि देवेशा मंगलक्षेमकारकाः ।
भवंतु श्रीजिता नित्यं विघ्नव्यूहप्रणाशकाः ॥ १० ॥

शौर्यादिसद्गुणगणावलिभूषितात्मा
तेजोभरेण सवितेव विराजमानः ।
इन्द्रो यथा परमविक्रमभूतिशाली
जीयाच्चिरं द्युतिपतिः कृपाचन्द्रसूरिः ॥ ११ ॥

पितामहस्य चाद्भुत क्रियते लोकभाषया ।
श्रीजिनदत्तसूरेः सत् चरित तस्य सुंदरम् ॥ १२ ॥

इह हि सकलप्रामाणिकमौलिलौकिकप्रकृष्टाचारविशिष्टाः क्वचिदभीष्टकार्य्ये प्रवर्त्तमानाः समस्तसमीहितवितरणविहितसुरकारस्कराहंकारतिरस्कारस्वाभीष्टदेवतानमस्कारपुरस्कारमेव प्रवर्त्तते अतः प्रस्तुतचरित्रकारः समस्तयोगिनीचक्रदेवदेवताव्रातविहितशासनाः नानाप्रभावनाप्रभावितश्रीजिनशासनाः महर्द्धिकनागदेवश्रावकसमाराधितश्रीअंबिकालिखितश्रीजिनदत्तसूरियुगप्रधानेत्यक्षरवाचनमार्जनसमुपार्जितयुगप्रधानपदमत्यताप्रधानाः सकलातिशायिप्रगुणगुणगणमणिरत्नयः सकलशिष्टचूडामणयः प्रबोधितान्यगच्छीयातुच्छभूरिसूरयः श्रीजिनदत्तसूरयः श्रीजिनशासनेऽतुच्छोपकारकाः समस्तभव्याना महान्प्रभावकाः सजाताः अतो

तेषां चरित्रं गुणगणमनोहरं सम्यक् दर्शनादिहेतुभूतं वक्ष्ये
समासेन सुगुरुक्रमायातं यथाश्रुतं यथामति पूर्वसूरिविनिर्मित
चरितानुसारेण च शिष्टाचारसमाचरणार्थं "मंगलादियुक्तं शास्त्रं
श्रोता श्रोतुं प्रवर्त्तते" इति न्यायात् फलादिकमभिधाय पुण्य
पवित्रं चरित्रं पितामहानां प्रस्तूयते–

॥ तत्रादौ भूमिका ॥

तिहां प्रथमचरित्रके आदिमें स्वाभाविक लोकभाषामें भूमिका
लिखते है ॥

इह तिर्य्यक् लोक इत्यादि ॥

अहो भव्यो यह रत्नप्रभा पृथ्वी एक लाख अने ८० हजारयोजन
जाडी और एक राजप्रमाणे लांबी और पोहोली है ॥

---

१ टिप्पणी–राजकाप्रमाण सौधर्म देवलोकसे नांखाहूवा लोहका
गोला ६ महिनोंमे जितने क्षेत्रकूं उल्लंघे उतने क्षेत्रकूं १ राजकहते
हैं ॥ और इस रत्नप्रभा पृथ्वीके ऊपर १८सो योजन उंचाइ मे १
राज लांबा और चोडा गोल आकारवाला कांइक विशेषाधिकत्रिगुणी
परिधि जिस्की ऐसा यह तिरछा लोक है इस्के विषे गोलाकृतिवाला
पृथ्वीमंडल है उस पृथवीमंडलमे सर्व धर्म कर्मोंका निदानभूत
और महापुरुषोंके चरणकमलोंकरके पवित्र और सर्व १ राजप्रमाणे
पृथवीमें सारभूत और वलयाकृति ४५ लाख योजन लांबा पोहोला

अने एक क्रोड ४२ लाख ३० हजार २०० उगणपचास योजनकी परिधि है और १७ सो २१ योजन ऊंचो और २२०० दस योजन मूलमें और चारसो २४ योजन शिखरके ऊपर विस्तार-वाला और जाबूनद लाल सुवर्णमय और ४ सिद्धायतन कूटों करके सहित और साक्षात् अढाइद्वीपकी पृथवीकी रक्षाके लिये जगति समान अर्थात् कोटके सदृश ऐसा मानुषोत्तर नाम वृत्ताकार पर्वत करके वेष्टित है और ५ प्रकारके चरजोतिषी देवोंकी मर्यादा करनेवाला और सर्व १३ सो ५७ पर्वतों करके सहित और २१ सो ४३ कूटों करके सहित और १६० विजय ५ मेरु २० गजदंतगिरि ८० वखारा पर्वत ६० अंतर नदीयो करके भरतादि ४५ क्षेत्रों करके जंबू आदि १० वृक्ष ३० महाद्रह सर्व ८० द्रह महानदी ४५० सर्व ७२ लाख ८० हजार नदियों करके सहित और धातकी खंड और आधेपुष्करावर्त्तद्वीपके मध्यभागमे दक्षण और उत्तर दिशामे दक्षणोत्तर लाबा सर्व ४ इक्षुकार पर्वत लालसोने मय है इस कारणसें धातकीखंड और पुष्करावर्त्तद्वीपके २-२ खंड पूर्व-पश्चिम विभागसे है और २० वन और २० वनमुख करके सहित मागधादि ५ सो १० तीर्थ और ६ सो ८० श्रेणियों और २० वृत्ताकार वैताढ्य और १७० दीर्घ वैताढ्य करके सहित दशसो कंचनगिरि और चित्रविचित्रयमक शमक २० पर्वतों करके सुशोभित और दोयसमुद्र और अढाइद्वीप ४ महापाताल-कलशा और ७८८४ लघुपातालकलशा-हेमवंत और शिखरी पर्वत संबधि ८ दाढाके ऊपर ७-७ द्वीप है सर्व ५६ अंतर द्वीप, ३०

अकर्म भूमि, १५ कर्म भूमि करके युक्त और भी अनेक सास्वता पदार्थ कुंड जगति वनसंड दरवाजा परिधि अंतर वगैरे सहित और रात्रिदिनका जो विभाग उस करके सहित और तीर्थंकर चक्रवर्त्ती प्रतिवासुदेव वासुदेव वलदेव नारद रुद्र गणधर केवली चरमशरीरी १४ पूर्वधारी स्वस्वगुणों करके भावितात्मा युगप्रधान आचार्य उपाध्याय साधु आदिक अनेक पुरुषोंके होनेकी मर्यादा करनेवाला और सर्व मनुष्योका जन्ममरणादि कालकी मर्यादा करनेवाला और १ राजप्रमाणे सर्व पृथ्वी रूपी स्त्रीके ललाटमे तिलक समान सर्वोत्तम समय नामका क्षेत्र है ॥ इस समय क्षेत्रका ३ नाम है तथा हि मनुष्यक्षेत्र अढाइदीप समयक्षेत्र इस समय क्षेत्रमे ३० अकर्म भूमि ५६ अंतरदीप १५ कर्म भूमि यह १०१ क्षेत्र है इन क्षेत्रोंमे अवस्थित अनवस्थित २ प्रकारका काल है उसमे ३० अकर्म भूमि ५६ अंतरदीप ५ महाविदेह इन ९१ क्षेत्रोंमे अवस्थित काल है हेमवत ऐरण्यवत हरिवर्ष रम्यक् देवकुरु उत्तरकुरु और अतर दीप और महाविदेह नामक क्षेत्रोमे अनुक्रमसें अवसर्पणी संज्ञक-कालके प्रथम ४ आरोंके सदृश सदा अवस्थित नित्यकाल है ५६ अंतरदीपोमे उत्तरते ३ आरेसदृशसदा अवस्थित नित्यकाल है ८०० धनुप देहमान एकांतर आहार ६४ पांशलि गुणयासी ७९ दिन अपत्य पालना करतें है और ५ भरत ५ ऐरावत यह १० क्षेत्रोंमें सदा अनवस्थित १०–१० कोडाकोड सागरका उत्सर्पणी अवसर्पणी भेदसें १ प्रकारका काल है और उत्सर्पणी कालका ६ आरा अवसर्पणी कालका ६ आरा एवं १२ आरामयि

२० कोडा कोड सागर प्रमाणे काल है उसकुं १ कालचक्र करके कहेते है ऐसा कालचक्र अतीत कालमें अनंता हूवा और अनागत कालमें अनता होगा यह प्रसंगसै कहा अव प्रकृत अधिकारका आश्रय करतें हैं और भरतादिक १० क्षत्रोंमें दरेक उत्सर्पणी तथा अवसर्पणी कालमें व्यवहारनीति राजनीति धर्मनीति क्षत्रिय ब्राह्मण वैश्य शूद्र ४ वर्णोंकी तथा चतुर्विध संघकी उत्पत्ति और २४ तीर्थकर १२ चक्रवर्त्ती ९ वासुदेव ९ बलदेव ९ प्रतिहरि ११ रुद्र याने महादेव ९ नारद गणधर १४ पूर्वधारी मनपर्यवज्ञानी अवधिज्ञानी केवली चरमशरीरी सत्ता सत्तीयों आचार्य उपाध्याय साधु युगप्रधानाचार्य संवेगपक्षी श्रावक वगेरे अनेक महापुरुप हूवा करते हैं और उत्सर्पणी कालके ६ आरोमे पुण्य प्रकृति दानादि धर्म शरीर संस्थान संघयण बल आयु आदिक सर्व शुभ भाव वर्द्धमान होवे है अवसर्पणी कालके ६ आरोमे पुण्य प्रकृत्यादिक हीयमान सर्व शुभ भाव हूवा करते हैं और उत्सर्पणी अवसर्पणी के दुपमदुपमादि और सुपमसुपमादि छ छ आरोका स्वरूप और पूर्वोक्त पदार्थोंका विशेप वर्णन शास्त्रातरसें जाणना इहा ग्रंथ गौरवके भयसें नहि लिखाहै अब वर्त्तमान इस अवसर्पणी कालमें सर्वोत्तम सनातन जैनधर्म की उत्पत्ति जगदीश्वर श्रीऋपभादिक २४ तीर्थकरोंसें है इसलिये श्रीऋपभादि महापुरुषोंका संक्षिप्तपणें स्वरूप इहां लिखते है ।

१ टिप्पणी–भावार्थ–यह भाव है कि पाच महाविदेह क्षेत्रोंमें

॥ अब ५२ बोल गर्भितश्री–ऋषभदेवजीका अधिकार लिख्यते ॥

इक्ष्वाकु भूमीके विषै, श्रीनाभिनामें, सातमा कुलकर हुवा जिसके मरुदेवी नामें पट्टराणी हुई, तिसकी कूखमे, सर्वार्थसिद्ध विमानथकी चवके, मिति आषाढ वदि ४ के दिन, भगवान उत्पन्न भए तब मरुदेवी मातायें, वृषभकों आदलेके, अग्निशिखा पर्यंत, १४ स्वप्न प्रगटपणें मुखमें प्रवेश करता देखा सो इस प्रमाणे १४ स्वप्नोंका नाम लिखते हैं, तंजाहा–गय–वसह–सिंह–अभिसेअ–दाम–ससि–दिणयरं–झयं पउमसर–सागर–विमाण भवण–रयणु–च्चय सिहिंच ॥ वृषभ गज सिंह श्रीदेवता पुष्पमाला युग्म चंद्रमा सूरज इंद्रध्वज पूर्णकलश पद्मसरोवर क्षीरसमुद्र देवविमान भवन

सुदर्शनविजय मंदर अचल विद्युन्मालि इन ५ मेरु आश्रित १६० विजय हैं इन क्षेत्रोंमे जैनधर्मादि भाव प्रायेंकरके अनादि अनंत है और भरतादिक १० क्षेत्रोंमे जैन धर्म पुण्यप्रभाव धर्मप्रणेता श्रीतीर्थंकरादिक सर्व अनियत भाव सादि सांत होतें हैं और भरतादि १० क्षेत्रोंमें जो जो अनियत भाव नियत भाव है सो सर्व अनादि अनंत जाणना और इन सिवाय जो क्षेत्र है उनोंमे सर्व भाव प्रायेंकरके अनादि अनंत भांगेमे हैं यह जगत्स्थितिस्वभाव अनादिसें है अनंत कालतक रहेगा एसा लोक स्वभाव हैं और जीव पुद्गल पुण्य पापके कारणसें इस जगतमे विचित्रता देखणे मेंं आवे है परन्तु १४ रज्वात्मक इस लोकका कोइ कर्त्ता नहि अनादि लोकानुभावसें हि वणा हूवा है यह निसंदेह है ।

रत्नराशि अग्निशिखा, यह १४ स्वप्न देखा, और गर्भके प्रभावसें उत्तम उत्तम जो जो डोहला, मरुदेवी माताकों उत्पन्नहुवा, सो इंद्र आयके पूर्ण किया पीछे सर्व दिशायें सुभिख्य समें, मिति चैत्रवदि ८ के दिन, उत्तराषाढा नक्षत्रके विषे, भगवानका जन्म हुवा उसी वखत, रुचक नामकादीप उसके मध्यभागे वलयाकारगोल ८४ हजार योजन ऊंचो और (१००००) दसहजार २२ योजन मूलमे, और (४०००) चार हजारने २४ योजन शिखरऊपर विस्तार है तद् यथा—

चहुसंख, विगप्पे, रुयगदीव, उचत्ति सहस्स चुलसीई,
नर नग सम रुयगो पुण, वित्थरि सयठाण सहसंको २५९
तस्स सिहरंमि चउदिसि, बीयसहस्स इगिगु चउत्थि अट्ठऽट्ठ,
विदिसि चउ इय चत्ता, दिसि कुमरि कूड सहस्सुच्चा २६०

अवतरण–रुचकद्वीपके सख्याका घणा विकल्प मेद है ८४ हजार योजन उचो है' और मानुषोत्तर पर्वत सदृश रुचक पर्वत है, विस्तारमे सो अंकके स्थानमे, हजारका अंक जाणना, २५९, और रुचक द्वीप संख्या विकल्प मूल पाठ देते है, दोकोडी सहस्साइं, छचेवसयाइं इक्वीसाइ, चउयालसयसहस्साइ, विखंभो कुंडलोदीवो, १, दसकोडी सहस्साइं, चत्तारिसयाइं पचसीयाइ' बावत्तरिचलक्खा,, विक्खभोरुयगदीवस्स,, २,, यह द्वीपपन्नतिकीनिर्युक्तिमाहें कुंडलद्वीप और रुचकद्वीपको विष्कंभ कह्यो है,, १, जंबुधायई पुक्खर, वारुणी खीर घय खोय नदी सरा, संख अरुण रूणवाय कुंडल, संखरुयगभुयग कुस कुंचा, ।

११ ए संघयणीकी गाथाके अनुसारे ११ मो कुंडल द्वीप और १३ मो रुचकद्वीप, २, तिपडोयारातहारुणाईया,, इसप्रमाणसें एक नामका ३ नामहोणसें १० मो कुंडलद्वीप आवे है, और २१ मोरुचकद्वीप है, ३ विकल्प, जबूदीवे लवणे, धायइ कालोय पुक्खरे वरुणे, खीर धय खोय नंदी, अरुणवरे कुंडले रुयगे, यह ४ विकल्प है,, पूर्वोक्त ४ संख्याके विकल्पोंकरके विराजमान रुचकपर्वत है,, उस रुचकपर्वतके शिखरकेविषे' पूर्वादिक ४ दिशाकेविषे, २ हजार योजन जांहांपर होवे है, वहां १–१ कूट है, और चोथा ४ हजारके विषे, पूर्वादि ४ दिशामे, ८–८ कूट है, यह कूट दिशाकुमारीका जाणना,, और ९ मुं सिद्ध कूट है,, तथा विदिशाके विषे जे ४ कूट है,, सो १ हजार योजन मूलमें विस्तार है,, और १ हजार योजन उंचा है,, शिखर ऊपर ५०० योजनका विस्तार है,, एसर्व ४० कूटके विषे रुचकवासिनी, दिसिकुमरीके तांदिशिके विषे जे कुमरीवसे है,, उणोका नाम इस प्रमाणे है,, १७ नदोत्तरा १८ नंदा १९ सुनंदा २० नंदवर्द्धनी २१ विजया २२ वैजयंती २३ जयंती २४ अपराजिता यह ८ पूर्व रुचकके विषेवसे है, २५ समाचारा २६ सुप्रदत्ता २७ सुप्रबुद्धा २८ यशोधरा २९ लक्ष्मीवती ३० शेषवती ३१ चित्रगुप्ता ३२ वसुंधरा यह ८ दक्षिण रुचकके विषेवसे है,, ३३ इलादेवी ३४ सुरादेवी ३५ पृथ्वी ३६ पद्मावती ३७ एकनाशा ३८ अनवमिका ३९ भद्रा ४० अशोका यह ८ पश्चिम रुचकके विषेवसे है, ४१ अलंबुसा ४२ मिश्रकेशी ४३ पुडरीका ४४ ारुणी . ४६ सर्व प्रभा

४७ श्री ४८ ह्री यह ८ उत्तर रुचकके विपेवसे है,, ४९ चित्रा ५० चित्रनाशा ५१ तेजा ५२ सुदामिनी यह ४ विदिशाके रुचकमेवसे है,, ५३ रूपा ५४ रूपांतिका ५५ सुरूपा ५६ रूपवती यह ४ मध्यरुचकके विपेवसे है,, इयचत्ताकेता, यह सर्व ४० दिशाकुमारी रुचक नामा पर्वतके ऊपर रहे है,, ओर पहिली १६ दिशा कुमारी मेरुके हेठे–ऊपर अधोलोक और उर्ध्वलोकमे रहे है, उणोकानाम यह है, १ भोगंकरा २ भोगवती ३ सुभोगा ४ भोगमालिनी ५ सुवत्सा ६ वत्समित्रा ७ पुष्पमाला ८ अनंदिता यह ८ अधोलोकवासीनी है, और मेरुपर्वतके पास गजदंता पर्वत है, उणोके नीचे भवनोमे वसे है।

तद् यथा—

अहोलोगवासिणीउं, दिसाकुमारीउं ।
अट्ठ एएसि, हिट्ठा चिट्ठति, भवणेसु ॥

१२८ यह गाथा सुगम है, ९ मेघकरी १० मेघवती ११ सुमेघा १२ मेघमालिनी १३ सुवत्सा १४ वत्समित्रा १५ वलाका १६ वारिपेणा, यह ८ ऊर्ध्वलोकवासीनी है, मेरुपर्वतके ऊपर नंदन नामा वन है, उसमे ८ दिशाकुमारीका कूट है उणोंके ऊपर भवनोंमेवसे है, तद् यथा, नवरं भवण पासायंतरट्ठ दिसिकुमरि-कूडावि, १२२, अवतरण–जिनभवन और प्रासादके ८ आतरोंमें ८ दिशाकुमारीका कूट है, सौमनसवनसें नंदनवनमें इतना विशेष हैं, १२२ यह सर्व ५६ दिकुमारी देव्या आयके, सूतिका जन्मोच्छव किया, पीछे उसीवखत रात्रिकों १ अच्युतेंद्र २ प्राण-

तेंद्र ३ सहस्रारेंद्र ४ शुक्रेंद्र ५ लांतकेंद्र ६ ब्रह्मेंद्र ७ माहेंद्र ८ सनत्कुमारेंद्र ९ ईशानेंद्र १० सौधर्मेंद्र ११ वलींद्र १२ चमरेंद्र १३ भूतानेंद्र १४ वेणुदालींद्र १५ हरिस्सहेंद्र १६ अग्निमाणवेंद्र १७ विसिष्टेंद्र १८ जलप्रभेंद्र १९ मितवाहनेंद्र २० प्रभंजनेंद्र २१ महाघोपेंद्र २२ धरणेंद्र २३ वेणुदेवेंद्र २४ हरिकांतेद्र २५ अग्निशिखेंद्र २६ पूर्णेंद्र २७ जलकांतेंद्र २८ अमितगतीद्र २९ वेलंवेंद्र ३० घोपेंद्र ३१ चंद्रेंद्र ३२ सूर्येंद्र ३३ कालेंद्र ३४ महाकालेद्र ३५ सरूपेंद्र ३६ प्रतिरूपेंद्र ३७ पूर्णभद्रेंद्र ३८ माणिभद्रेंद्र ३९ भीमेंद्र ४० महाभीमेंद्र ४१ किंनरेंद्र ४२ किंपुरुपेंद्र ४३ सत्पुरुपेंद्र ४४ महापुरुपेंद्र ४५ अतिकायेंद्र ४६ महाकायेंद्र ४७ गीतरतीद्र ४८ गीतयशेंद्र ४९ सन्निहितेंद्र ५० सामानिकेंद्र ५१ धात्रेंद्र ५२ विधात्रेंद्र ५३ ऋपीद्र ५४ ऋपिपालेद्र ५५ ईश्वरेंद्र ५६ महेश्वरेंद्र ५७ सुवत्सेंद्र ५८ विशालेद्र ५९ हासेंद्र ६० हास्यरतीद्र ६१ श्वेतेद्र ६२ महाश्वेतेंद्र ६३ पतकेंद्र ६४ पतकपतीद्र इन ६४ इंद्रोंका आसन कंपायमान हुवा, तव अवधिज्ञानसें प्रथम भगवानका जन्म हुवा जाणके जन्मोत्सव करनेकों, मेरुपर्वत ऊपर आए, जिसमे पहिला सौधर्मेंद्र भगवानकी माताके पासे आयके, मंगलीकके अर्थ माताके पासे, भगवानके समान, दूसरा प्रतिविंव रखके, भगवानकों मेरुगिरिके ऊपर लेगया ५ रूपसें उहां वडे उच्छवसें स्नात्रकरायके अष्टद्रव्यसें, पूजाकरके, अगाडी ३२ वद्ध नाटक करके, भगवानकों, पीछा माताके पासें लायके स्थापन किया, क्रोडों सोनइयां की तथा और वस्त्र धान्य हिरण्यादिककी वर्षाकरके

नाभि राजाका घर भरदिया पीछे सर्व इंद्र आठमा नंदीश्वर द्वीप जायके अट्ठाहि उच्छव करके, अपनें २ स्थान गए । (फेर) नाभि राजानें दश दिनपर्यत जन्मके उच्छव किये (उस वखत) युगलिया लोक कुछभी जाणते नहीं थे (इसवास्ते) सोधर्म इन्द्रनें, बहुतसे देवता देव्योकों भगवानकेपास रखदिये (सो) सर्व व्यवहार बताते करते रहे ॥ (पीछे) ११ में दिन, कल्पवृक्षोंका दिया हुवा, नानाप्रकारका भोजन, सर्व युगलियाको जिमायके, नाभि राजायें, रिषभ कुमर नाम स्थापन किया । नाम स्थापनका ये हेतू है (कि) भगवानकी दोनुंसाथलोंमे वृषभका लाछन था । (दूसरो) मरुदेवी माताने, चवदै स्वप्नाके प्रथम स्वप्नेंमे, वृषभ देखा था (इससेती) रिषभ कुमर नाम स्थापन किया ॥ बाल अवस्थामे श्रीऋपभदेवकों जब भूख लगती थी (तब) अपनें हाथका अंगूठा, मुखमे लेके चूसलेते थे । उस अंगुठेमे, इन्द्रनें अमृतसंचार कर दिया था । जब ऋषभदेवजी बडे हुए (तब) देवता उनकों कल्पवृक्षोके फलल्याकर देते थे । वे फल खाते थे । जब ऋपभदेव, कुछन्यून एक वर्षके हुए (तब) इन्द्र आया । खाली हाथसें स्वामिके पास न जाना । इस्सें इक्षुदंड हाथमें लेके आया (उसवखत) श्रीऋपभदेव कुमर, नाभि कुलकरकी गोदीमे बैठे थे। तब भगवानकी दृष्टि इक्षुदंडपर पडी । तब इन्द्रनें कहा (कि) हे भगवन् इक्षु भक्षण करोगे (तब) श्रीऋपभदेव कुमरनें हाथ पसार्या । तब इन्द्रने, ऋपभदेव कुमारके, इक्षुकी इच्छा उत्पन्न होणेसें, भगवान्का इक्ष्वाकु कुल स्थापन करा (यांसे इक्ष्वाकु

वंशकी उत्पत्ति भई) और श्रीऋषभदेवजीके वंशवालोनें, काश वनस्पति विशेषका रस पीया (इसवास्ते) काश्यपगोत्र प्रसिद्ध हुवा ॥ श्रीऋषभदेवजीके, जिस जिस वयमें जो जो काम उचित था, सो सर्व इन्द्रनें आयके करा (यह) अनादिकालसें, जो जो इन्द्र होते आये है उन सबका येही आचार है। कि प्रथम भगवान्के वयोचित सर्व काम करना ॥

(इस अवसरमें) एक लडकी, एक लडका, अर्थात् स्त्री और पुरुष रूप जोडा बालअवस्थामे, तालवृक्षके हेठे खेलते थे। उहां तालके फल गिरनेंसें लडका मरगया (तब) लडकीकुं नाभिकुलकरकूं लायके सोंपी (तब) उसनें ऋषभदेवके विवाह योग्य जाणके, यतनसें अपणेपास रक्खी। तिसका नाम सुनंदा था (और) दूसरी ऋषभदेवकेसाथ जन्मी थी। उसका नाम सुमंगला था। इस दोनोंकेसाथ ऋषभदेव बाल्यावस्थामे खेलते हुए, यौवनवयमें प्राप्त हुए। (तब) इन्द्रनें विवाहका प्रारंभ करा। आगे युगलीयांके समयमें विवाहविधि नहीं थी। (इसवास्ते) यह विवाहमें, पुरुषके कृत्य तो सर्व इन्द्रनें करे (और) स्त्रीयोकी तरफसे सर्व कृत्य इन्द्राणीनें करे (तबसें) विवाहविधि सर्व जगत्मे प्रचलित भया। तब ऋषभदेव दोनों भार्यांकेसाथ संसारिक विषयसुख भोगवता, छलाख पूर्ववर्ष व्यतीत भए (तब) सुमंगला राणीके, भरत (और) ब्राह्मी, यह युगल जन्मा। (तथा) सुनदाके बाहुबली (और) सुंदरी यह युगल जन्मा। पीछेसे सुनंदाके तो और कोइ पुत्रपुत्री नहिं हुवे (परंतु) सुमंगला देवीके उगणपचास (४९) जोडे पुत्रोंहीके हुवे। यह सब मिलकर सो (१००) पुत्र (और) दो पुत्रियो भई ॥

॥ अब सो पुत्रोंके नाम लिखते हैं ॥

१ भरत। २ बाहुबली। ३ श्रीमस्तक। ४ श्रीपुत्रांगारक। ५ श्रीमल्लिदेव। ६ अगज्योति। ७ मलयदेव। ८ भार्गवतार्थ। ९ वंगदेव। १० वसुदेव। ११ मगधनाथ। १२ मानवर्त्तिक। १३ मानयुक्ति। १४ वैदर्भदेव। १५ वनवासनाथ। १६ महीपक। १७ धर्मराष्ट्र। १८ मायकदेव। १९ आसक। २० दंडक। २१ कालिंग। २२ ईपकदेव। २३ पुरुपदेव। २४ अकल। २५ भोगदेव। २६ वीर्यभोग। २७ गणनाथ। २८ तीर्णनाथ। २९ अंबुदपति। ३० आयुवीर्य। ३१ नायक। ३२ काक्षिक। ३३ आनर्त्तक। ३४ सारिक। ३५ ग्रहपति। ३६ करदेव। ३७ कच्छनाथ। ३८ सुराष्ट्र। ३९ नर्मद। ४० सारस्वत। ४१ तापसदेव। ४२ कुरु। ४३ जंगल। ४४ पंचाल। ४५ शूरसेन। ४६ पुटदेव। ४७ कालिंगदेव। ४८ काशीकुमार। ४९ कौशल्य। ५० भद्रकाश। ५१ विकाशक। ५२ त्रिगर्त्तक। ५३ आनर्प ५४ सालु। ५५ मत्स्यदेव। ५६ कुलियक। ५७ मुपकदेव। ५८ वाल्हीक। ५९ कांबोज। ६० मृद्गनाथ। ६१ सांद्रक। ६२ आत्रेय। ६३ यवन। ६४ आभीर। ६५ वानदेव। ६६ वानस। ६७ कैकेय। ६८ सिंधु। ६९ सोवीर। ७० गंधार। ७१ काष्टदेव। ७२ तोपक। ७३ शौरक। ७४ भारद्वाज। ७५ शूरसेन। ७६ प्रस्थान। ७७ कर्णक। ७८ त्रिपुरनाथ। ७९ अवंतिनाथ। ८० चेदीपति। ८१ विष्कंभ। ८२ नैपध। ८३ दशार्णनाथ। ८४ कुसुमवर्ण। ८५ भूपालदेव। ८६ पालप्रभु। ८७ कुशल। ८८ पद्म। ८९ महापद्म। ९० विनिंद्र।

९१ । विकेश । ९२ वैदेह । ९३ कच्छपति । ९४ भद्रदेव । ९५ वज्रदेव । ९६ सांद्रभद्र । ९७ सेतज । ९८ वत्सनाथ । ९९ अंगदेव । १०० नरोत्तम (यह) श्रीऋषभदेवजीके १०० पुत्रोंका नाम कहा ॥

॥ अथ राज्याभिषेक, विनीता नगरी अधिकारः ॥

- (इस अवसरमें) जीवोंके कषाय प्रबल होजानेसे । पूर्वोक्त हकारादि तीनों दंडनीतिका, लोक भय नहिं करनें लगे (इस अवसरमें) लोकोनें सर्वसें अधिक, ज्ञानादि गुणों करके संयुक्त, श्रीऋषभदेवकों जानके, युगललोक, श्रीऋभदेवकों कहते हुए । (कि) अब सर्व लोक दंडका भय नहि करते हैं । (तब) मति १ । श्रुति २ । अरु । अवधि ३ । यह ज्ञानकरके युक्त (ऐसे) आदिकुमर युगलियोंकुं कहते हुए (कि) जो राजा होता है (सो) दंडकर्त्ता है । फेर उसकी आज्ञा कोई उल्लंघन नहिं कर सकता है । ऐसे वचन सुनकर, वे युगलिये बोले (कि) ऐसा राजा हमारेभी होना चाहिये । (तब) आदिकुमर बोले । जो तुमारी इछा ऐसी है (तो) नाभि कुलकरसें याचना करो । (तब) तिनोंने नाभिकुलकरसें वीनती करके (तथा) आज्ञा लेके, आदिकुमरकुं राज्याभिषेक करणेके लिये,—गंगाका जल लेनेंकुं गए (इस समें) सौधर्मइंद्रका आसन कंपमान हुवा । तब अवधि ज्ञानसें, राज्याभिषेकका अवसर जानके, बहुतसे देवता देवीयोंके संग सौधर्मेंद्र आके, श्रीआदिकुमरका राज्याभिषेक, संपूर्ण विधिसंयुक्त, महोत्सवके साथ करा । (जिसवखत) छत्र, मुकुट, कुंडलादिक,

आभरण सहित, रत्नजडित सिंहासनपर बेठे हैं । उस्समय, वे युगल लोक, कमलके पत्तोंमें जल लेके आवे । (वहां) वस्त्राभरण सहित सिंहासनपर बेठे देखके, अगूठेपर जलाभिषेक किया (तब) इंद्रनें विचारा (कि) यह युगल लोक बडे विनयवान हे । ऐसा जानके वैश्रमण नामा देवकुं आज्ञादीवी (कि) आदिराजाके (तथा) इस विनीत पुरुषोंके, रहनेके योग्य, विनीता नामसें, १ नगरी स्थापित करो (तब) वैश्रमण देवनें, गढ, मढ, प्रोल, प्राकारादिक, संयुक्त, वर्णन योग्य, १२ योजन, ४८ कोसमें लंबी ९ योजन चवडी नगरी वसाई । जिसके मध्य भागमें २१ भूमिकाका मकान श्रीआदि राजाके रहने योग्य बनाया (और) सर्व भाई बेटाके योग्य, सात सात भूमिये मकान (और) दूसरोंके योग्य, तीन २ भूमिये मकान बनाये । इसका विस्तार संबंध, सेत्रुंज महात्म्यसें जाण लेना (अब) आदि राजा, चतुरंगिणी सेनाकेवास्ते प्रथमवोहोतसे । हाथी, घोडे, गाय, भैंशे, प्रमुख, उपयोगी जानवरोंकुं, वनसे मंगायके संग्रह करे (और) च्यार वंशकी स्थापना करी । उग्र १ । भोग २ । राजन्य ३ । क्षत्रिय ४ । जिसकुं कोटवालकी पदवी दीवी (सो) उग्र दंडके करनेसे, उग्रवंशी कहलाये १ (तथा) जिसकुं आदि राजानें, गुरुतुल्य बडे करके माने, तिससे वो भोगवंशी कहलाए २ (तथा) आदि राजाके, स्वजनसंबंधि मित्रादिकके, राजन्य वंश कहलाए ३ (और) प्रजागणके सर्व क्षत्री वंश कहलाए ४ (अब युगलियोंके आहारकी विधि कहते है) हीन कालके प्रभावसें, कल्पवृक्ष

फल देनेसें रह गए। तब लोक, और वृक्षोंके, कंद मूल पत्र फल फूल खाने लगे। केईक इक्षुका रस पीने लगे (तथा) सतरे जातिका कच्चा अन्न खाने लगे (परंतु) कितनेक दिनोंतक कच्चा अन्न उनकों जीर्ण न होनेसें, ऋषभदेवजीनें उनको कहा (कि) तुम हाथोसे मसलके, तूंतडा दूर करके, खाओ (फेर) कितनेक दिनो पीछें, वैसेभी पाचन न होने लगा । तब अनेक भांतसें कच्चा अन्न खानेकी विधि बताई । तोभी काल दोषसें अन्न पाचन न होनें लगा (इस अवसरमें) जंगलोंमे वांसादिक घसनेसें अग्नी उत्पन्न हुवा। पहली कितनेक कालतक अग्नि विछेदथा (क्युं कि) एकांत स्निग्ध कालमें (और) एकांत रुक्ष कालमें, अग्नी किसी वस्तूसें उत्पन्न नहिं होसक्ती है (कदाचित्) कोई देवता विदेह क्षेत्रसे अग्नीको लेभी आते (तोभी) इहां तत्काल वुझ जाता था (इसवास्ते) पहले अग्नीसें पकाके खानेका उपदेश नहिं दिया (पीछे) तिस अग्नीको तृणादि दाह कर्त्ता देखके, अपूर्व रत्न जानके पकडने लगे । जब हाथ जले, तब भयसे आदि राजाकू आयके कहा (और) अपणा हाथ जला हुवा देखाया (तब) आदि राजानें अग्नी ले आनेका, और फल फूल पकायके खानेका विधि बताया। फेर आप हाथीपर बेठे हुवे वनमें आये । युगलियोंकेपास लीली मट्टी मंगायके, हस्तीपर बेठे हुवे सर्वके सामने एक हांडी बनायके दीवी (और) कहा कि, इसकुं अग्नीमें रखके पकावो । हांडी पकके तैयार भई (तब) उसमें धान्यका, जलका प्रमाण, रांध-

नेका सर्व विधि वताया । जिसके हाथसें मट्टी मंगाई । और हांडी पकवाई (जिससें) कुंभकार कर्म प्रगट हुवा । इससेती कुंभकारकुं, प्रजापति (तथा) पर्याप्ति कहते हैं (फेर) सनें सनें, सर्व आहार पकाके खानेका विधि प्रगट हो गया (औरभी) संपूर्ण कर्म, कला मात्र, अपना पुत्रादिक प्रजा गणकुं वताई । आदि राजाके उपदेशसें, पाच मूल शिल्प (अर्थात्) कारीगर वने । कुंभकार १ । लोहकार २ । चित्रकार ३ । तंतुकार वस्त्र वणनेंवाले ४ । नापित ५ । (इस) एकेक शिल्पका, अवांतर २० वीस भेद रहें हैं । (इससें) सब मिलके १०० भेद शिल्पके प्रसिद्ध हुवे (तथा) कर्षण कर्म, खेती आदिक करणा । (तथा) वाणिज्य कर्म, व्यापारादिक करनेंकी रीति, तिससे धन उपार्जन करणा । धनका ममत्व करना । धनको शुभ क्षेत्रादिकमें लगाना (इ-त्यादि) संपूर्ण जगत् प्रसिद्ध कर्म बताये । (प्रथम) मट्टीके संचयोंमें, अहरण हथोडी प्रमुख बनाये (पीछे) उससें उपयोगी काम लायक सर्व वस्तु बनाई गई ॥ (और) भरतादि प्रजा लोकोंको वहोत्तर कला सिखलाई (तथा) स्त्रियोंको चोसठ कला सिखलाई (इन सर्व कलाके नाममात्र लिखते हैं) ॥

॥ पुरुषोंकी ७२ कलाका नाम ॥

१ लिखनेंकी कला । २ पढनेंकी कला । ३ गणितकला । ४ गीतकला । ५ नृत्य । ६ ताल बजाना । ७ पटह बजाना । ८ मृदंग बजाना । ९ वीणा बजाना । १० वंशपरीक्षा । ११ भेरीपरीक्षा । १२ गजशिक्षा । १३ तुरंगशिक्षा । १४ धातु-

वाद। १५ दृष्टिवाद। १६ मंत्रवाद । १७ वलिपलितविनाश। १८ रत्नपरीक्षा। १९ नारीपरीक्षा। २० नरपरीक्षा। २१ छंद-बंधन। २२ तर्कजल्पन। २३ नीतिविचार। २४ तत्वविचार। २५ कविशक्ति। २६ ज्योतिष शास्त्रका ज्ञान। २७ वैद्यक। २८ षट्भाषा। २९ योगाभ्यास। ३० रसायणविधि। ३१ अंजन-विधि। ३२ अठारह प्रकार की लिपि । ३३ स्वप्नलक्षण। ३४ इंद्रजालदर्शन। ३५ खेती करणी । ३६ वाणिज्य करणा। ३७ राजाकी सेवा। ३८ शकुनविचार। ३९ वायुस्थंभन। ४० अग्नि-स्थंभन। ४१ मेघवृष्टि। ४२ विलेपन विधि । ४३ मर्दनविधि। ४४ ऊर्द्धगमन। ४५ घटबंधन। ४६ घटभ्रमण। ४७ पत्र छेदन। ४८ मर्मभेदन। ४९ फलाकर्षण। ५० जलाकर्षण । ५१ लोका-चार। ५२ लोकरंजन। ५३ अफल वृक्षोंको सफल करणा । ५४ खड्गबंधन। ५५ छुरीबंधन। ५६ मुद्राविधि । ५७ लोहज्ञान। ५८ दातसमारण । ५९ काललक्षण । ६० चित्रकरण। ६१ बाहुयुद्ध। ६२ मुष्टियुद्ध। ६३ दंडयुद्ध। ६४ दृष्टियुद्ध। ६५ खड्ग-युद्ध। ६६ वाग्युद्ध । ६७ गारुडविद्या। ६८ सर्पदमन। ६९ भूतदमन। ७० योग, सो द्रव्यानुयोग अक्षरानुयोग, व्याकर्ण, औषधानुयोग, ७१ वर्षज्ञान, ७२ नाममाला॥

॥ स्त्रीयोंकी ६४ कलाका नाम॥

१ नृत्यकला। २ औचित्यकला। ३ चित्रकला । ४ वादित्र ५ मंत्र। ६ तंत्र। ७ ज्ञान। ८ विज्ञान। ९ दंभ। १० जलस्थंभ। ११ गीतगान। १२ तालमान । १३ मेघवृष्टि। १४ फलाकृष्टि।

१५ आरामारोपण। १६ आकारगोपन। १७ धर्मविचार। १८ शकुनविचार। १९ क्रियाकल्पन। २० संस्कृतजल्पन। २१ प्रसादनीति। २२ धर्मनीति। २३ वाणिवृद्धि। २४ स्वर्णसिद्धि। २५ तैलसुरभिकरण। २६ लीलासंचरण। २७ गजतुरगपरिक्षा। २८ स्त्रीपुरुषके लक्षण। २९ कामक्रिया। ३० अष्टादश लिपि परिच्छेद। ३१ तत्कालवुद्धि। ३२ वस्तुसिद्धि। ३३ वैद्यकक्रिया। ३४ सुवर्णरत्नभेद। ३५ घटभ्रम। ३६ सारपरिश्रम। ३७ अंजनयोग। ३८ चूर्णयोग। ३९ हस्तलाघव। ४० वचनपाटव। ४१ भोज्यविधि। ४२ वाणिज्यविधि। ४३ काव्यशक्ति। ४४ व्याकरण। ४५ शालिखंडन। ४६ मुखमंडन। ४७ कथाकथन। ४८ कुसुमगुंथन। ४९ वरवेष। ५० सकल भाषा विशेष। ५१ अभिधान परिज्ञान। ५२ आभरण पहरण। ५३ भृत्योपचार। ५४ गृहाचार। ५५ शाठ्यकरण। ५६ परनिराकरण। ५७ धान्यरंधन। ५८ केशबंधन। ५९ वीणादिनाद। ६० वितंडावाद। ६१ अंकविचार। ६२ लोकव्यवहार। ६३ अत्याक्षरिका। ६४ प्रश्नप्रहेलिका॥ यह स्त्रीकी ६४ कला कही॥

अनकी सर्व संसारीक कला पूर्वोक्त कलायोंका प्रकारभूत है (इसवास्ते) सर्व कला इनहीके अतर्भाव है (जैसें) प्रथम लिपि कला के १८ भेद दक्षिण हाथसें ब्राह्मी पुत्रीकों सिखाया। तिसके नाम कहते हैं॥ १ हंस लिपि। २ भूत लिपि। ३ यक्ष लिपि। ४ राक्षसी लिपि। ५ यावनी लिपि। ६ तुरकी लिपि। ७ किरी लिपि। ८ द्राविडी लिपि। ९ सैधवी लिपि। १० मालवी लिपि।

११ नडी लिपि । १२ नागरी लिपि । १३ लाटी लिपि । १४ पारसी लिपि । १५ अनिमित्ती लिपि । १६ चाणकी लिपि । १७ मूलदेवी लिपि । १८ उड्डी लिपि ॥ (यह) अठारह प्रकारकी ब्राह्मी लिपि, देश विशेषके भेदसें, अनेक तरहकी हो गई । (जैसेंकी) १ लाटी । २ चौडी । ३ डाहली । ४ कानडी । ५ गौर्जरी । ६ सोरठी । ७ मरहठी । ८ कौंकणी । ९ खुरासाणी । १० मागधी । ११ सिंहली । १२ हाडी । १३ कीरी । १४ हम्मीरी । १५ परतीरी । १६ मसी । १७ मालवी । १८ महायोधी । (इत्यादि) लिपि सिखाई (तथा) सुंदरी पुत्रीकों वाम हाथसें अंक विद्या सिखाई । (और) जो जगतमें प्रचलित कला है । जिनोंसे कार्य सिद्ध होते हैं । (वे सर्व) श्रीऋषभदेवनें प्रवर्त्ताई हैं । तिसमें कितनीक कला, कई वार लुप्त हो जाती है । फिर समय पाकर प्रगटभी हो जाती है (परंतु) नवीन कला, वा विद्या, कोइभी उत्पन्न नहिं होती है । जो कला व्यवहार, श्रीऋषभदेवजीनें चलाया है । उसका विस्तार, सर्व आवश्यक सूत्रसें देख लेना ॥

श्री आदिराजायें, भरतकेसाथ ब्राह्मी जन्मी थी । तिसका विवाह तो, बाहुबलीकेसाथ किया (और) बाहुबलीकेसाथ, जो सुंदरी जन्मी थी । उसका विवाह [illegible] साथ कर दिया । तबसें माता पिताकी दीनी हुई [illegible] प्रचलित हुवा । (इससे) पहले [illegible] के उ[illegible] बहिनके संबंध होता था (वो [illegible] (व [illegible] विवाह

करनें लगे (और) विवाहका विधि, जर्ने आदिराजाके विवाहसमें, इंद्र, इंद्राणियोने करा था। उसीमुजब करनें लगे ॥ श्री आदिराजाने बहुत कालतक राज्य किया। संपूर्ण राज्यनीतीसें, प्रजाके अर्थ, मनतरेके सुख उत्पन्न किये। (इस हेतुसें) श्रीऋषभदेव स्वामीकों सर्व जगत्स्थितिका कर्त्ता, जैनी लोक मानते हैं (दूसरे मतवाले) जो ईश्वरकी करी सृष्टी मानतेहैं । (वेभी) ईश्वर, आदीश्वर, जगदीश्वर, योगीश्वर, जगत्का कर्त्ता, ब्रह्मा आदि, विष्णु आदि, योगी आदि, भगवान् आदि अर्हत, आदि तीर्थंकर, प्रथम बुद्ध, महादेव (इत्यादि) जो नाम ओर महिमा गाते हैं (वे सर्व) श्री ऋषभदेवजीकेही गुणानुवाद हैं (और) कोई सृष्टीका कर्त्ता नही है ॥ सर्व जगत्का व्यवहार चलाकर शेषमे भरतपुत्रकु, विनीता नगरीका राज्य दीया ॥ बाहुबली पुत्रकु, तक्षशिला नगरीका राज्य दीया ॥ शेष ९८ पुत्रोंको उनोके नामसे, जूदे २ देश बसायके राज्य दीये (जबसें) अग, वग, कलिंगादि देशोंके नाम प्रसिद्ध हुवे। (और) सर्व गोत्रियोंकुभी, यथायोग्य आजीविकाके विभाग कर दिये (इससमे) नव लोकांतिक देवताने भगवानकुं दीक्षाका अवसर जनाया। भगवान् आप अपणे ज्ञानसे दीक्षाका अवसर जानते हे (तथापि) लोकांतिक देवोंका यहहीज जीत व्यवहार हैं (पीछे) संवत्सरी दान देके, चैत्र वदि ८ के दिन, कच्छ, कच्छ, प्रमुख ४ हजार सामत पुरुषोंकेसाथ दीक्षा ग्रहण करी। दीक्षाका महोत्सव सर्व, ६४ इद्रोंनें मिलके करा (तव) भगवानकु चोथा मनपर्यव ज्ञान उत्पन्न

भया। दीक्षा लिये बाद, १ वर्षतक शुद्ध आहार साधूके लेनें योग्य नहिं मिला। जहां भगवान् जावै (वहां) हाथी, घोडे, आभूषण, कन्या, इत्यादिक बहुतसे भेट करे। (परतु) शुद्ध आहार देनेकी विधि कोइ नही जानें (क्यूं कि) आगे कोइ भिक्षाचर देखा नही था॥ और भगवान् उस्समय त्यागी थे (इसवास्ते) आहार बिगर कोइभी पदार्थ ग्रहण करा नहिं। (पीछे) १ वरषके बाद, वैशाख सुदि ३ कुं, हथनापुर आये। (तहां) श्री ऋषभदेव स्वामीका पडपौत्र, श्रेयांसकुमरनें जातिस्मरण ज्ञानके बलसें, भगवानकुं इक्षुरसका पारणा कराया। उस वखतमे, ५ दिव्य देवताने प्रगट करे। साढा १२ क्रोड सोनइयांकी वरषा करी। श्रेयांसका जश तीन भवनमे फेला। तब लोकोंनें आयके पूछा (कि) तुमने ऋषभदेव स्वामीकुं भिक्षार्थी केसेंजाने। तब श्रेयास कुमरनें आपणे (अरु) ऋषभदेव स्वामीकेसाथ, ८ भवोंका संबंध कह्या (इससेती) भगवानकुं साधु मुद्रामें देखके, मेरेकुं जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न भया। तिनसें ८ भवोंका संबंध, तथा भिक्षार्थीपणा जाना॥ इसका विस्तार सर्व आवश्यक सूत्रसे जाण लेना॥ जब भगवानकुं एक वर्षतक शुद्ध आहार न मिला (तब) मच्छ, कच्छ प्रमुख ४ हजार पुरुष, जो साथमें दीक्षा लीवी थी (सो) भूखसें पीडित हुवे थके, वनमे गंगाके दोनूं किनारे, तापसपणा धारके, कंद मूल फल फूल खाते हुवे रहनें लगे (और) श्री ऋषभदेवस्वामीका ध्यान जप आदि, ब्रह्मादि शब्दोंसे करनें लगे (इहांसे) तापसादिककी

उत्पत्ति हुई ॥ (जब) श्रेयांस कुमरनें आहार दिया । उस दिनसे सब लोक साधूकूं शुद्ध आहार देनेकी विधि जाननें लगे ॥

॥ अब विद्याधरोंकी उत्पत्ति कहते है ॥

श्री ऋषभदेवस्वामी दीक्षा लियांकेबाद, १ हजार वर्षतक, देशोमे छद्मस्थपणें विचरते रहे। तिस अवस्थामें। कच्छ (और) महाकच्छके बेटे । नमि, और विनमीने, आकर, भगवान्‌की बहुत सेवा भक्ति करी (तब) धरणेंद्र संतुष्टमान होके, ४८ हजार पठित सिद्धविद्या उनकुं देकर, वेताढ्यगिरीकी, दक्षिण और उत्तर, यह दोनूं श्रेणीका राज्य दीया । (तब) तिनके वशी सब विद्याधर कहलाए (इनही) विद्याधरोंके संतानमे रावण, कुंभकर्ण, बालि, सुग्रीव, हनूमानादि, सर्व विद्याधर भए है ॥

(एकदा) छद्मस्थ अवस्थामे भगवान् विहारकर्त्ते, तक्षशिला नगरी गए। वहा बाहिर, बागमें काउसग्ग करके खडे रहे। यह खबर उहाके राजा, बाहुबलजीकुं हुई । (तब) बाहुबलीनें मनमें विचार करा। कि प्रभातसमें बडे आडंबरके साथ, पिता श्री ऋषभदेवजीकुं वांदनेकुं जाउंगा ॥ जब प्रभातसमे, बडे आडं-बरसें वांदनेकुं गया (तो) वहा भगवानकु न देखा। वनमालीसें सुना (कि) भगवान् तो, सूर्य उगतेही विहार कर गए (तब) बाहुबली बहुत उदास हुयके, जहा भगवान्‌काउसग्ग मुद्रामें ऊभे थे । उसजगे कानूमे अंगुली घालकें (बाबा आदम, बाबा आदम) ऐसे ऊंचे स्वरसे पुकारके, उसी चरनूंके ठिकाने, रत्न मई

थुंभ वनाके, धर्मचक्र तीर्थ स्थापितकरा। (यह) धर्मचक्र तीर्थ विक्रम राजाके राज्यतक तो रहा (पीछे) म्लेच्छादिकके वहुतसें प्रचारसें, धर्मचक्र तीर्थ, ऐसा नाम तो नष्ट भया (और) यवन लोकोंने उसका नाम, मक्का, ऐसा प्रसिद्ध करा (और) अवलसें तो यवनादिकभी, मद्यमांसादिक अभक्ष नहि खाते थे । यवनोंके मतमेंभी, नसादिक अभक्ष खाना नहि कहा है (तथापि) जो केइ खाते है। सो धर्मसें विरुद्ध है॥ और श्रीऋषभदेव स्वामी। जिन २ देशोमे विचरे। वहांका लोकतो प्रायें सरलस्वभावी दयावंत हुवे (और) भगवान् जिनदेशोमे न गए (अरु) जिनूंनें भगवानके दर्शन नहि करे (वो) सर्व म्लेच्छ, अनार्य, निर्दयी, हो गए। अनेक अपनी कल्पनाके मत माननें लगे। उनका व्यवहार औरतरहका हो गया॥

(इस कारणसें) सर्व वरणोंका (तथा) सर्व मत मतांतरका (तथा) सर्व वैद्यक, ज्योतिप, मंत्र, तंत्रादिक, संपूर्ण कलाकौशल्यका मूल उत्पत्तिकारण, श्रीऋषभदेवस्वामी भए ॥ (जब) श्रीऋषभदेवस्वामीकुं चारित्र लियेवाद, १ हजार वर्ष व्यतीत भए (तब) विहार करके विनीता नगरीके पुरिमताल नामा बागमें आये (जिसकुं) इस्समय प्रयागजी कहते हैं (उहां) वड वृक्षके नीचे, तेलेकी तपस्यायुक्त, मिति फाल्गुन वदि ११ के दिन, प्रथम प्रहरमें, संपूर्ण लोकालोकप्रकाशक, केवलग्यान, केवलदर्शन, उत्पन्न हुवा (उसीवखत) ६४ इंद्र। भुवनपति, व्यंतर, ज्योतिपी, वैमानिकके देवगण, सर्व आयके समवसरनकी रचना करी ॥

॥ अब समवसरनका किंचित स्वरूप लि० ॥

प्रथम भुवनपति, वायुकुमारदेवता, १ योजन पृथ्वीका कचरादिक दूरकरके शुद्ध करे (तदनंतर) भुवनपति मेघकुमार नामें देवता १ योजन पृथ्वीपर सुगंधि जलकी वर्षा करे (तदनंतर) व्यंतर देवता उसी पृथ्वीपर गोडे प्रमाण सुगंधि पुष्पोंकी वर्षा करे (पीछे) व्यंतरदेव पुष्पोंके ऊपर, वनस्पतिकुं बाधा रहित, १ योजनमे, रत्नोकी पीठका बनावे । इस पीठकाके ऊपर, भुवनपति देवता, रूपेमई गढ, सुवर्णमई कांगराकी रचना करे ॥ तिसके च्यारुंदिशे, ४ दरवाजा । छत्र, चामर, तोरण, ८ मगलीक, धूपघटी (प्रमुख) वर्णनसहित करे (तिसके अदर) ज्योतिषी (देवता) रत्नमई कागरायुक्त, सुवर्णमई कोट, ४ दरवाजासहित करे । (तिसके अदर) वैमानिक देवता, मणि रत्नमई कागरासहित, रत्नमई कोट ४ दरवाजासहित करे ॥ दरवाजाका वर्णन पूर्ववत् जाण लेना, (अब) इसकोटके मध्यमें, रत्नोंमई १ पीठका बनावे । तिसके ऊपर मध्यभागमे १ रत्नमई स्थटक, वृक्षका थाणा बनावै । तिसके ऊपर, छत्र चामरादि विभूति सहित अशोकवृक्षकी रचनाकरै जिस अशोकवृक्षके नीचे, रत्नजडित सुवर्णमई ४ दिशे ४ सिंहासन स्थापना करे । तिसऊपर, तीन छत्र (अरु) दोनुं तरफ चामर रहे । (और) इसी तरह चणावसहित भगवान्‌के बैठनेके लिये, स्वर्णरत्नमई मध्यकोटके बीचमें देवछंदेकी रचना करे । ऐसा वर्णन सहित समोसरणमें, भगवान् श्रीऋषभदेवस्वामी पूर्वके दरवाजेसे प्रवेशकरके, चैत्य वृक्षके चौत-

रफ, प्रदक्षिणाभूत फिरते हुवे, नमस्तीर्थाय, ऐसा वचन बोलके पूर्वाभिमुख बैठे (शेष) तीन दिशाके सिंहासनपर, भगवान्के समान, प्रतिबिंब व्यंतर इंद्र, स्थापित करे (परंतु) भगवानके अतिशयसें (और) देवानुभावसें चारे दिशासें आनेवाले लोकोंकूं, साक्षात् ऋषभदेव स्वामी, सन्मुख बैठे, उपदेश देते मालुमहूवे (जब) चार मुखसें धर्मोपदेश देते देखके, लोकोनें ऋषभदेव स्वामीकूं, चतुर्मुख ब्रह्मा, ऐसे नामसे केने लगे (धनंजयकोशमेंभी, ऋषभदेव स्वामीका नाम ब्रह्मा लिखा है) जबीसें भगवानका नाम, ब्रह्मा प्रसिद्ध हुवा ॥

(जब) श्री ऋषभदेव स्वामीने केवल ज्ञान उत्पन्न हुवा सुना (तब) भरत चक्रवर्ति राजा परिवार सहित, वंदन नमस्कार करनेकूं, और धर्मोपदेश सुणनेकूं, आते, रस्तेमें हाथीपर बैठी ऊई, मरुदेवी माता, समवसरण, छत्र चामरादि, अपनें पुत्रका अतिशय देखतेही शुद्ध भावसे केवल ज्ञान पायके, मोक्षकुं प्राप्त भई (तब) भरत राजा, हर्ष शोच सहित समवसरणमें आया। वहां भगवान्के मुखसें धर्मोपदेश सुनके, भरत राजाके ५०० पुत्र, और ७०० पोतूंने दीक्षा ग्रहण करी (तथा) ऋषभ देव स्वामीकी पुत्री, ब्राह्मी प्रमुख, अनेक स्त्रीयोंने दीक्षा ग्रहण करी (इनूंसे) भरत राजाके, बडे पुत्रका नाम, ऋषभसेन पुंडरीक था (वो) भगवानके प्रथम गणधर ऊवा (यह) पुंडरीक गणधर, शत्रुंजय पर्वतउपर अंतमें मोक्षगया (इससें) शत्रुंजय तीर्थका नाम पुंडरीक गिरि प्रसिद्ध भया (इसी मुजब) शत्रुंजय तीर्थके अनेक नाम हुये (बोहोतसे)

स्त्री, पुरुषोंने, देशविरति श्रावक धर्म अंगीकार करा (इस तरह) साधु, साधवी, श्रावक, श्राविकारूप चतुर्विध संघ स्थापित करा। आगे कितनेकवरसोसें विछेद हुवा थका, इहांसें फिर, साधु श्रावक धर्म प्रवर्त्तन हुवा (इस समयमें) परिव्राजक सांख्य मत-वालकी उत्पत्ति भई

॥ अथ सांख्यमतका स्वरूप लिखते हैं ॥

भरतजीके ५०० पुत्रोंने दीक्षा लीथी (उसमे) एकको नाम मरीची था (सो) साधुपना पालना महाकठिन देखकै, नवीन मन कल्पित वेष धारन करा (क्यूं कि) पीछा गृहवास करनेमें तो, अपनी हीनता जानके, आजीविका चलानेके लिये मत स्थापित कीया ॥ इस रीतिसे अपना व्यवहार वनाया (कि) साधु तो, मन-दड, वचनदंड कायदंड, इन तीनो दडोसे रहित है (और) में तो इन तीनों दंडो करके सयुक्त हु। इसवास्ते मुजको त्रिदंड रखना चाहिये (दूसरा) साधू तो द्रव्य अरु भाव करके मुंडित है। सो लोच कर्त्ते हैं (अरु) मे तो द्रव्य मुडित हु (इसवास्ते) मुझे उस्तरे पाछनेसें मस्तक मुंडवाना चाहिये। शिखाभी रखनी चाहिये (तीसरा) साधु तो पंचमहा व्रत पालते हे (अरु) मेरे तो सदा स्थूल जीव की हिंसाका त्याग रहो ॥ (चौथा) साधु तो निःकंचन हैं (अर्थात्) परिग्रह रहित है। अरु मुझकों एक पवित्रिकादि रखनी चाहिये। (पाचमा) साधु तो शीलसें सुगंधित है। अरुमे ऐसा नही हु (इसवास्ते मुझे चदनादि सुंगधि लेनी ठीक है (छठा) साधु तो मोह रहित है (अरु) में मोह सयुक्त हु। इसवास्ते मुझे

मोहाच्छादितकों छत्री रखनी चाहियै (सातमा) साधू जूते रहित है। मुजकों पगोंमे खडावुं अग्रुख चाहियै (आठमा) साधू तो निर्मल है। इसवास्ते उनके शुक्लांवर है (अरु) में तो क्रोध मान माया अरु लोभ, इन च्यारों कषायों करकें मेला हुं (इस वास्ते) मुजे कषायला वस्त्र, (अर्थात्) गेरुंसें रंगे हुवे भगमे वस्त्र रखनें चाहियें (नवमा) साधु तो सचित्त जलके त्यागी है। (इस वास्ते) में छाणके सचित्त जल पीउंगा। स्नानभी करुंगा । (इस तरे) स्थूल मृषावादादिकसें निवृत्त हुवा। इस प्रकारसे मरीचिने स्वमतसें अपणी आजीविकाकेवास्ते लिंग बनाया। यही लिंग परिव्राजकोंका उत्पन्न भया। यह मरीचि इस भेषसें भगवान्‌केसाथ विचरता रहा (तब) लोक इसका साधुवोंसे विसदृश लिंग देखके पूछा (तब) मरीचि, साधुका धर्म यथार्थ बतायके कहा (कि) ऐसा कठिन धर्म, मेरेसे पला नही (तब) मैंनें यह लिंग धारण किया है। यह मरीचि समोसरणके बाहिर प्रदेशमें बैठा रहताथा (उहां) जो कोई इसकेपास उपदेश सुनताथा, उसकूं यथार्थ धर्मसे प्रतिबोध देके, भीतर भगवान्‌केपास भेजदेताथा (पीछे) एक दासमें मरीचि रोगाग्रस्त हुवा। तब विचार कीया (कि) मैं कुलिंगी हुं। इसवास्ते साधू लोक तो मेरी वेयावच्च नहिं करते हैं (और) मुझे कराणीभी युक्त नही है। इससें अबके शरीर अच्छा होनेसे, मेरे लायक कोइ शिष्य करुंगा (जब) मरीचि अच्छा हुवा। पीछे थोडा दिनके वाद, एक कपिल नामे राजपुत्र, मरीच केपास धर्म सुणनेकूं आया (तब) मरीचनें यथार्थ साधु धर्मका

स्वरूप वर्णन कीया। तब कपिल बोला (कि) साधू धर्म उत्तम है (तो) तुमने ऐसा भेष काहेकू धारणकरा। तब मरीचि बोला (कि) साधु धर्म मेरेसे पल नही सका। इसरों मैंनें यह लिंग स्वमतिकल्पित धारण कीया है। (इस सेती) तुम भगवान्के पास जायके दीक्षा ग्रहण करो। तब कपिल राजपुत्र समवसरणकेभीतर गया (वहा) श्री ऋषभ देव स्वामीको, छत्र चामरादि सिंहासन युक्त राज्यलीला भोगवता देखके, पीछा मरीचिकेपास आयके केनेलगा (कि) श्री ऋषभदेव स्वामी तो राज्यलीला सुख भोगवते हे। इसवास्ते उसका धर्म तो मुजकूं रुचे नही। अब तेरेपास कुछ धर्म है, या नही। तब मरीचिने जाना (कि) यह भारि कर्मा जीवहै। मेराही शिष्य होने योग्य है। इस लोभसें मरीचिने कहा वहाभी धर्म है। और मेरेपासभी देशे धर्म है। (तब) कपिल मरीचकेपास दीक्षा लेके शिष्य हुवा (शरिपाः शरिपेण रच्यंते इति वचनात्)॥ यह सांख्य मतके प्रवर्त्तक, कपिल मुनिकि उत्पत्ति कही॥ (उस्समय) मरीचिके तथा कपिलकेपास कोईभी उसके धर्मसंबंधी पुस्तक नही था॥ निःकेवल जो कुछ आचार मरीचिने बताया उस प्रकारे कपिल कर्त्ता रहा॥ (और) मरीचिने, शिष्यके लोभसे मेरे पासभी किंचित् धर्म है (ऐसे) उत्सूत्र भाषणेसें एक कोटाकोटि सागरोपमलग जन्म मरण करके, अंतमे २४मा तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी हुवा उस मरीचिके काल करे पीछे, कपिल मरीचिके बताया यथार्थ ज्ञानशून्य आचारमें चलता रहा। उस कपिलमुनीके आसुरी नामे शिष्य हुवा। और भी बहोतसे शिष्य हुए

(जिनकुं) पुस्तकशून्य,आचारमात्र,ज्ञान वतलाया। शिष्युंके ऊपर बहु-तसा प्रेम रखता थका, कपिल मुनि, शेषमें काल करके, ५ मा ब्रह्म देवलोकमें देवता हुवा। उत्पत्तिके अनंतर, तत्काल अवधि ज्ञानसें देखा। कि मेनें परभवमें क्या दान पुन्य करा है। तब पूर्व भव देखनेसें, अपणा आसुरी शिष्यकूं ग्रंथज्ञानशून्य देखा। तब विचार कीया। की मेरा शिष्य कुछ जानता नही है (इसवास्ते) में इस कुं कुछ तत्वोपदेश करुं। ऐसा विचार करके, कपिल देव आकाशमें, पंचवर्णा मंडलमें रहकर, तत्वज्ञानका उपदेश कर्त्ता भया। अव्यक्तसें व्यक्त प्रगट होता है (इत्यादि) धर्मका स्वरूप आकासवानीसें सुनके, आसुरीनें तिस अवसरमें, षष्टि तंत्र, प्रमुख अनेक ग्रंथ वनाये (फेर) इसकी संप्रदायमें एक संख नामा आचार्य हुवा। (तवसें) इस मतका साख्यण सातात हुवा सांख्य परिव्राजक संन्यासियोंके लिंगका, आचारादिकका मूल, यह मरीचि हुवा। एक जैन मतके विगर सब मतोंकी जड, इसकूं समजना चाहिये॥

॥ अब जैन पंडित ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति लि० ॥

(जिस दिन) श्री ऋषभदेव स्वामीकूं केवल ज्ञान उत्पन्न हुवा। उसी वखत भरत राजाके, आयुधशालमें हजार देवा धिष्टित चक्ररत्न उत्पन्न हुवा। दोनू तरफका वधाईदार-साथमें आया। उन दोनुंकूं वधाई देके धर्मकूं मोटा जानके, प्रथम केवल ज्ञानका उच्छव करके पीछे चक्ररत्नका उच्छव करा (औरभी) हजार हजार देवाधिष्टित १३ रत्न उत्पन्न भया। इस १४ रत्नोंके

संयोगसें, भरत क्षेत्रके, छउं खंडमें, अपनी आज्ञा मनाई (इस वास्ते) इसका नाम, भरतखंड, ऐसा प्रसिद्ध हुवा ॥ (जब) छखंड साधके, भरत पीछा विनीता नगरीमें आया । (तथापि) चक्ररत्न आयुधशालामें प्रवेश करे नहि (जब) अपणे ९९ भाइयां कू अपणी आज्ञा मनाणेके लिये दूत भेजा । (तब) बाहुबलजी विगर ९८ भाइयाने विचार किया (कि) राज्य तो हमकूं, पिता ऋषभदेव स्वामी देगए है (तो) इस भरत की आज्ञा कैसें माने । चलो, अब पिताकूं पुछें । जो पिता आज्ञा देवेगा सो करेंगे । ऐसा विचारके भगवान्‌केपास गए (तब) ऋषभदेव स्वामीनें उनके मनका अभिप्राय जानकें, ऐसा उपदेश करा । जिनसे ९८ भाइयोंनें दीक्षा ग्रहण करी । सब झगडे छोड दीये (और) बाहुबलजी दूतके मुख से सुनके, बहुतसें क्रोधमें आयके युद्धकी त्यारी करी (तब) भरतजीभी चढके आये । दोनूंके आपसमें बडा युद्ध हुवा ॥ भरत तो चक्रवर्त्ती था (और) बाहुबलजी बहोत बल पराक्रमका धरनेवाला था । इसवास्ते बाहुबली युद्धमें हारा नहि । चक्ररत्न, गोत्रपर चले नहि । इसवास्ते भरतजी जीतमके नही (शेषमें) बाहुबलजी आपसें समझके दीक्षा ग्रहण करी । तब लोकोमें भरतजीकी अपकीर्ति भई (पीछे) भरतजीभी अपणा सब भाईयोंकूं दीक्षालीवी सुनके, चित्तमें उदास होके, उनोंकू राजी करणेकेलिये, भोजन करानेकों, पकवानोंके गाडे भरायके, भगवान्‌के, समोसरणमें आया (और) केनें लगा, कि अपने भाइयोंकू भोजनकरायके, मेरा अपराधकुं

माफ कराउंगा (तव) भगवान् श्री ऋषभदेवस्वामी कहनें लगे (कि यह) आहार, साधुवोंके लेनें योग्य नहि (तव) भरतजी मनमे उदास होके केनें लगे (कि) यह आहार किसकूं देउं (तव) भगवाननें कहा, जो तेरेसें गुणोंमें अधिक होय, ऐसे वृद्धश्रावक साधर्मीयांकूं भोजन करावे । तो तुजको पूर्ण लाभ होवे तव भरतजीनें वहुत गुणवान् श्रावकोंकूं वो भोजनजिमाया (और) उन श्रावकोंकूं ऐसा कह दीया (कि) तुह्म सव जनें मिलकर सदैव मेरे इहां भोजन कर लियां करो । (औरभी) जो खरच तुमारे चहीये (सो) मेरे भंडारसें लेलीयां करो ॥ (और) वाणिज्यादिक सर्व काम छोडके, स्वाध्याय करनेमें, पढानेंमें, भगवान्को धरम प्रवर्त्तन करनेमें, सदाकाल सावधान रहो (और) मेरे महिलंकेपास रहते हुवे मेरेकूंभि ऐसे वचन सुनाते रहो । (जितो भवान् वर्द्धते भयं । तस्मात् माहन माहन) तव जो वृद्धश्रावक भरतजीके कहनेसे सव काम छोडके निःकेवल धरमकार्य करणेमें उद्यमवंतभए (तवसें) जैनी पंडित, वृद्धश्रावकोकी उत्पत्ति भई । श्री अनुयोगद्वारजी सूत्रमेंभि, जैनी पंडित श्रावकोका नाम, वुड्डसावया ऐसा लिखाहै, यह वृद्धश्रावक भरतजीके महिलोंकेपास वैठे हुवे (जितो भवान्) इस पूर्वोक्त वचनकू सदाकाल उचारन कर्त्तेरहे । (और) भरतजी तो सदा काल भोगविलासमे मग्न रहते थे (तथापि) वृद्धश्रावकोंका वचन सुनके, मनमे चिंतवन करनें लगे । कि मुझकुं किसनें जीताहै । तव स्मरन हुवा । कि मेरेकुं । क्रोध, मान, माया, लोभ, कषायादिकसें, मोहराजा जीतरयाहै

(इससेती) हूं संसारमें मग्न होयरह्यो हूं। मेरे भाइयादिक सर्व धन्य है। जिनोनें राज्य छोडके चारित्र ग्रहण कीया है। इत्यादिक धर्मकी वार्त्ता स्मरण करनेसें, दिलमे वैराग्य उत्पन्न होता था (और) वृद्ध श्रावक, वेरवेर, माहन माहन, पूर्वोक्त वचन कहनेसें, लोक सर्व, उन वृद्धश्रावकांकूं, माहन ऐसे नामसें कहने लगे (तबसे) यह जैनी ब्राह्मण उत्पन्न भए। प्राकृत भाषामें ब्राह्मणकूं माहन नामसें लिखा है। प्राकृत व्याकरणसें, ब्राह्मण शब्द, बंभण (अरु) माहन, इस दोय नामसें सिद्ध होता है। ऐसे श्रावक माहन भोजन करनेवाले, दिन २ बहुतवधे। तब रसोईदार भरतजीकुं कहा। कि इनोंमे श्रावककी, वा अन्य पुरुषकी, क्या मालम पडे। तब जितने श्रावक थे। उनकु बुलायके सर्वकी परीक्षा करी। श्रावक जानके भरतजीनें उनोंके शरीरमें, काकणी रत्नसें तीन २ रेखाका चिन्ह कीया (इससें) जिनोपवीत धारनकी रीति प्रशिद्ध भई॥ (पीछे) भरतजीका बेटा सूर्ययशा हुवा। जिसके संतानवाले, भरतक्षेत्रमें, सूर्यवंशी कहे जाते हैं (अरु) बाहुबलीका बडा पुत्र, चंद्रयशा था (तिसके) संतानवाले, चंद्रवंशी कहे जाते है। श्रीऋषभदेवजीके कुरुनामे पुत्रके सतानवाले सर्व कुरुवशी कहे जाते है। (जिनमे) कौरव, पाडव हुये हैं (जब) भरतका बेटा. सूर्ययशा सिंहासनपर बेठा था। तब तिसकेपास कांकणी रत्न नांहि था (क्यों कि) कांकणीरत्न चक्रवर्त्ति शिवाय और किसीकेपास नांहि होता है। (इसवास्ते) सूर्ययशा राजानें, ब्राह्मण श्रावकाके गलेमें, सुवर्णमय जिनोपवीत

माफ कराउंगा (तब) भगवान् श्री ऋषभदेवस्वामी कहनें लगे (कि यह) आहार, साधुवोंके लेनें योग्य नहिं (तब) भरतजी मनमे उदास होके केनें लगे (कि) यह आहार किसकूं देउं (तब) भगवाननें कहा, जो तेरेसें गुणोंमें अधिक होय, ऐसे वृद्धश्रावक साधर्मीयांकूं भोजन करावे । तो तुजको पूर्ण लाभ होवे तब भरतजीनें बहुत गुणवान् श्रावकोकूं वो भोजनजिमाया (और) उन श्रावकोंकूं ऐसा कह दीया (कि) तुम्ह सब जने मिलकर सदैव मेरे इहां भोजन कर लियां करो । (औरभी) जो खरच तुमारे चहीये (सो) मेरे भंडारसें लेलीयां करो ॥ (और) वाणिज्यादिक सर्व काम छोडके, स्वाध्याय करनेमे, पढानेंमें, भगवान्को धरम प्रवर्त्तन करनेमें, सदाकाल सावधान रहो (और) मेरे महिलंकेपास रहते हुवे मेरेकूंभि ऐसे वचन सुनाते रहो । (जितो भवान् वर्द्धते भयं । तस्मात् माहन माहन) तब जो वृद्धश्रावक भरतजीके कहनेसें सब काम छोडके निःकेवल धरमकार्य करणेमें उधमवंतभए (तबसें) जैनी पंडित, वृद्धश्रावकोंकी उत्पत्ति भई । श्री अनुयोगद्वारजी सूत्रमेंभि, जैनी पंडित श्रावकोका नाम, वुड्ढसावया ऐसा लिखाहै, यह वृद्धश्रावक भरतजीके महिलोंकेपास बैठे हुवे (जितो भवान्) इस पूर्वोक्त वचनकू सदाकाल उचारन कर्तेरहे । (और) भरतजी तो सदा काल भोगविलासमे मग्न रहते थे (तथापि) वृद्धश्रावकोंका वचन सुनके, मनमें चिंतवन करनें लगे । कि मुझकुं किसनें जीताहै । तब स्मरन हुवा । कि मेरेकुं । क्रोध, मान, माया, लोभ, कषायादिकसें, मोहराजा जीतरयाहै

(इससेती) हूं संसारमें मग्न होयरह्यो हूं। मेरे भाईयादिक सर्व धन्य है। जिनोनें राज्य छोडके चारित्र ग्रहण कीया है। इत्यादिक धर्मकी वार्त्ता स्मरण करनेसें, दिलमे वैराग्य उत्पन्न होता था (और) वृद्ध श्रावक, वेरवेर, माहन माहन, पूर्वोक्त वचन कहनेसें, लोक सर्व, उन वृद्धश्रावकांकूं, माहन ऐसे नामसें कहने लगे (तबसें) यह जैनी ब्राह्मण उत्पन्न भए। प्राकृत भाषामें ब्राह्मणकूं माहन नामसें लिखा है। प्राकृत व्याकरणसें, ब्राह्मण शब्द, बंभण (अरु) माहन, इस दोय नामसे सिद्ध होता है। ऐसे श्रावक माहन भोजन करनेवाले, दिन २ बहुतवधे। तब रसोईदार भरतजीकुं कहा। कि इनोमें श्रावककी, वा अन्य पुरुषकी, क्या मालम पडे। तब जितने श्रावक थे। उनकुं बुलायके सर्वकी परीक्षा करी। श्रावक जानके भरतजीनें उनोंके शरीरमें, काकणी रत्नसें तीन २ रेखाका चिन्ह कीया (इससें) जिनोपवीत धारनकी रीति प्रशिद्ध भई॥ (पीछे) भरतजीका वेटा सूर्ययशा हुवा। जिसके संतानवाले, भरतक्षेत्रमे, सूर्यवंशी कहे जाते हैं (अरु) बाहुबलीका वडा पुत्र, चंद्रयशा था (तिसके) संतानवाले, चंद्रवंशी कहे जाते हे। श्रीऋषभदेवजीके कुरुनामे पुत्रके संतानवाले सर्व कुरुवशी कहे जाते हे। (जिनमें) कौरव, पाडव हुये हें (जब) भरतका वेटा. सूर्ययशा सिंहासनपर वेठा था। तब तिसकेपास कांकणी रत्न नहि था (क्यों कि) कांकणीरत्न चक्रवर्त्ति शिवाय और किसीकेपास नहि होता है। (इसवास्ते) सूर्ययशा राजाने, ब्राह्मण श्रावकाके गलेमें, सुवर्णमय जिनोपवीत

करवा दीया। तथा भोजन प्रमुख सर्व भरतमहाराजकीतरे देते रहे (जब) सूर्यजशाका बेटा, महा यश, गद्दीपर बेठा (तब) तिसने रूपेके जिनोपवीत बनवा दीया। आगे तिनके संतानोंने पंचरंगे रेशमी पट्टसूत्रमय जिनोपवीत बनाते रहे। इस पीछे सादे सूतके बनाये गये। यह जिनोपवीतकी उत्पत्ति कही ॥

॥ अब चार वेदोंकी उत्पत्ति लिखते हैं ॥

जब भरतजीनें, ब्राह्मणोकूं बहुतसा मान्या पूज्या (तब) दूसरे भी लोक ब्राह्मणाकूं दानादिक देनें लगे (और) धर्मकृत्य सर्व उनीकेपास सीखनें लगे। तथा करानें लगे (तब) भरत चक्रवर्त्तिनें, ऋषभदेवस्वामी के वचनानुसारे, तिन ब्राह्मणूंके, स्वाध्याय करनेंकेवास्ते, श्री भगवान् ऋषभ देवस्वामीकी स्तवनागर्भित, (और) पूजा, प्रतिष्ठादि, श्रावक धर्मका, संपूर्ण स्वरूप गर्भित, ८ कर्म, ७ नय, ४ निक्षेपा, ९ तत्त्व, क्षेत्र प्रमाणादिक गर्भित, बहुत मंत्रयुक्त ४ वेद रचे (तिनके यह नाम) १ संसार दर्शन वेद। २ संस्थापना परामर्शन वेद। ३ तत्वावबोधन वेद। ४ विद्या प्रबोध वेद। इन च्यारोंमे, सर्व नय वस्तूके कथन संयुक्त तिन ब्राह्मणांकों पढाये। भरत के ८ पाटतक तो, ब्राह्मणोकी भक्ति भरतजीकी तरे करते रहे। (पीछे) प्रजा भी ब्राह्मणांकों भोजन करानें लगी (तबसे) सर्व जगे ब्राह्मण पूजनीक समजे गये। इस पीछे (आठमा) तीर्थंकर, श्री चंद्रप्रभ स्वामीके वखततक, सर्व ब्राह्मण जैनधर्मी श्रावक रहे (अरु) सुविधि भगवान्के पीछे, कितनाक काल व्यतीतभये, इस भरतखंडमें,

जैन धर्म (अर्थात्) चतुर्विधसंघ, और सर्वशास्त्र विच्छेद हो गये । (तब) तिन ब्राह्मणा भासोको लोक पूछनें लगे । (कि) धर्मका स्वरूप हमकों बतलावो । तब तिनोने जो मनमें माना । (और) अपणा जिसमे लाभ देखा सो धर्म बतलाया । अनेक तरहके ग्रंथ बनाते रहे (जब दशमा) श्री सीतलनाथ अरिहंत हुए । तिनोने जब फेर जैनधर्म प्रगट करा (तथापि) कितनेक ब्राह्मणभासोने न माना स्वकपोल कल्पित मतहीका कदाग्रह-रखा (जबसें) अन्य मति ब्राह्मण भए (और) उलटे जिन धर्मके साधुवांके द्वेषी बन गए (इसी तरे) ८ भगवानके ७ अंतर कालमें जिनधर्म विच्छेद होता रहा (इससें) बहुत मिथ्या धर्म बढता गया ॥ (यदुक्त आगमे) सिरिभरहचक्कवट्टी । आय रियवेयाण विस्सुउप्पत्ती । माहण पढणत्थमिणं । कहिय सुहझाण विवहार ॥ १ ॥ जिणतित्थे वुच्छिन्ने । मिच्छत्ते माहणेहि ते ठविया । अस्संजयाण पूआ । अप्पाणंकाहियातेहि ॥ २ ॥ (इत्यादि) ॥ (फेर) कितनेक काल पीछे, याज्ञवल्क्य, सुलसा, पिप्पलाद, अरु पर्वत, प्रमुख ब्राह्मणाभासोने, धनके लोभसें, तिन वेदोंमें जीवहिंसा प्रमुख प्ररूपणा करके उलट पुलट कर डारे । जैन धर्मका नामभी वेदोंमेसे निकाल दीया । बलकी अन्योक्ति करके (दैत्यदस्युवेदबाह्य) इत्यादिनामोसे, साधुओंकी निंदा गर्भित, १ ऋग् । २ यजु । ३ साम । ४ अथर्वण, ये ४ नाम कल्पन कर दीये । (यही बात) बृहदारण्य उपनिषदके भाष्यमें लिखा है (कि) यज्ञोंका कहनेवाला सो

यज्ञवल्क्य । तिसका पुत्र याज्ञवल्क्य । इस कहनेसेंभी यही प्रतीत होता हे । जो यज्ञोंकी रीति, प्राय याज्ञवल्क्यसेंही चली हे (तथा) ब्राह्मण लोकांके शास्त्रमेंभी लिखा है (कि) याज्ञवल्क्यनें पूर्वली ब्रह्मविद्या वमके, सूर्यपासे, नवीन ब्रह्मविद्या सीखके प्रचलित करी (इस्से) यही अनुमान निकलता है (जो) याज्ञवल्क्यनें, प्राचीन वेद छोडके नवीन वेद बनाये । (इस्सें) वर्त्तमान ४ वेद (और) जीवहिंसायुक्त यज्ञकी उत्पत्ति, प्रायः याज्ञवल्क्यादिकोंसें हुई संभव है ॥

(तथा) श्री तेसठ शलाका पुरुप चरित्र ग्रंथमें, आठमें पर्व के दूसरे सर्गमें, ऐसा लिखा है (कि) काशपुरीमे, दो सन्यासणियां रहती थी, तिसमें एकका नाम सुलसा था (अरु) दूसरीका नाम सुभद्रा था, (यह) दोनूंही वेद अरु वेदांगोंकी जानकार थी । (तिस) दोनुं वहिनोंनें बहुतसे वादियोंको वादमे जीते । (इस अवसरमे) याज्ञवल्क्य परिव्राजक, तिनके साथ वाद करनेंकों आया, आपसमें ऐसी प्रतिज्ञा करी (कि) जो हार जावे । वो जीतनेंवालेकी सेवा करै । (तब) याज्ञवल्क्यनें, सुलसाकों वादमें जीतके, अपनी सेवा करनेंवाली बनाई ॥ सुलसाभी रात दिन याज्ञवल्क्यकी सेवा करनें लगी । (अरु) दोनुं युवान थे, इमसें कामातुर होके, आपसमें भोगविलास करने लग गए । (सच है) कि अग्निकेपास, घी रहनेंसें पिघलैईगा (तथा) घी, घास, फूस, मिलनेंसें, अग्नि वधैईगा (निदान) दोनुं काम क्रीडामे मग्न होकर, काशपुरीके निकट, कुटीमे वास

करते थे (तब) याज्ञवल्क्य, सुलसाके पुत्र उत्पन्न भया (तब) लोकोंके उपहासके भयसें, उस लडकेकों, पीपलके वृक्ष नीचे छोडकर, दोनुं भागके कहाइं चले गए ॥ (यह वृत्तांत) सुलसाकी बहन, सुभद्रानें सुना। (तब) तिस बालककेपास आई (जब) बालककों देखा (तो) पींपलका फल स्वयमेव मुखमे पडा हुवा चबोल रहा हे (तब) तिसका नामभी पिप्पलाद रक्खा। (और) तिसकों अपनें स्थानमें ले जाके यत्नसें पाला (अरु) वेदादि शास्त्र पढाए (तब) पिप्पलाद बडा बुद्धिमान् हुवा। बहुत वादियोका अभिमान दूर किया (पीछे) तिस पिप्पलादकेसाथ सुलसा (और) याज्ञवल्क्य, यह दोनुं वाद करनेकों आए (तब) तिस पिप्पलादने दोनुंकों वादमे जीत लिया (और) सुभद्रा मासीके कहनेसें जान गया (कि) यह दोनुं मेरा माता, पिता हे ॥ और मुझे जन्मतेको निर्दयी होकर छोड गये थे (इससें) बहुत क्रोधमे आया (तब) याज्ञवल्क्य (अरु) सुलसाके आगे। मातृमेध, पितृमेध, यज्ञोकों युक्तियोंसे स्थापन करके, मातृपितृमेधमें, सुलसा याज्ञवल्क्यकों मारके होम करा (यह) पिप्पलाद, मीमासक मतका मुख्य आचार्य हुआ ॥ इसका वातली नामे शिष्य हुवा (तबसें) जीव हिंसा संयुक्त यज्ञ प्रचलित हुए (इमसें) याज्ञवल्क्यके वेद बनानेमे कुछभी संका नही (क्यो कि) वेदमे लिखा है (याज्ञवल्केति होवाच) अर्थात् याज्ञवल्क्य ऐसें कहता हुवा (तथा) वेदमे जो साखा हे, वे वेदकर्त्ता मुनियोंकेही सब वंस हे (इसी तरे) श्री आवश्यकजी मूल

सूत्रमें लिखा है (कि) जीव हिंसा संयुक्त, जो वेद है (सो) सुलसा (अरु) याज्ञवल्क्यादिकोंनें बनाये हैं (और) कितनीक उपनिषदोंमें पिप्पलादकाभी नाम है (तथा) और मुनियोंकाभी कितनेक जगेमें नाम है । जमदग्नि, काश्यपतो वेदोंमें खुद नामसें लिखे हैं । फेर वेदोंकें नवीन होनेंमें कुछ संका नहीं ॥ (इस पीछे) महाकाल असुरके सहायसें, पर्वतनें, बहुत जीव हिंसा संयुक्त वेद प्रचलित किये हैं। उसका विशेषअधिकार आवश्यक सूत्र, तेसठ शलाका चरित्रादिकमे लिखा है । उहांसें देख लेना (यह) जैन ब्राह्मण, जैन वेद, (तथा) प्रसंगसें, अन्यमत वेदोत्पत्ति कही ॥ (अब) श्री ऋषभदेवस्वामीके परिवारकी संख्या कहते हे ॥ भगवान् श्री ऋषभदेव स्वामीके सर्व चोरासीहजार (८४०००) साधु हुए (जिसमें) पुंडरीकजी प्रमुख ८४ गणधर हुए ॥ ब्राह्मीजी प्रमुख तीनलाख (३०००००) साध्वी हुई ॥ बीसहजार छसो (२०६००) वेक्रिय लब्धिधारक हुए ॥ बारेहजार छसै पन्नास (१२६५०) वादी विरुद धारक हुए ॥ नवहजार (९०००) अवधिग्यानी हुए ॥ बीसहजार (२००००) केवल ग्यानी हुए बाराहजार साढासातसे (१२७५०) मनपर्यव ग्यानी हुए ॥ च्यारहजार साढासातसे (४७५०) चौदे पूर्वधारी हुए ॥ ३ लाख ५० हजार (३५००००) श्रावक हुए ॥ ५ लाख ५४ हजार (५५४०००) श्रावकण्यां (इत्यादि) बहुतसे जीवोंका उद्धार करके, अंतसमें कैलास पर्वतके ऊपर ६ उपवास तप करके संयुक्त, अनशन किया। पद्माशन मुद्रायें, आ-

त्मगुणके ध्यानसें, सर्व कर्मोकों खपायके, मिति माघ वदि १३ के दिन, १० हजार (१००००) पुरुषाके साथ, ८४ पूर्व लाख वरषको आऊषो पूरण करके, सिद्धिस्थानको प्राप्त भए ॥ (जब) श्री ऋषभदेव स्वामीका कैलास (तथा) दूसरा नाम अष्टापद पर्वत ऊपर, निर्वाण हुवा (तब) ६४ इंद्रादि सर्व देवता निर्वाण उच्छव करनेंकों आए, तिन सर्व देवताओमेंसुं, अग्निकुमार देवतानें श्री ऋषभदेवकी चितामे अग्नि लगाई (तबसेंही) यह श्रुति लोकमे प्रसिद्ध हुई है (अग्नि मुखावै देवा) अर्थात्, अग्नि कुमार देवता, सर्व देवताओंमे मुख्य है (और) अल्प बुद्धियोंने तो इस श्रुतिका ऐसा अर्थ बना लिये है (कि) अग्नि जो है, सो तेतीस कोड देवताओंका मुख हे ॥ भगवानके निर्वाणका स्वरूप, सर्व आवश्यक सूत्र, (तथा) जंबुद्वीपपन्नत्तीसें जान लैना (जब) भगवानकी चितामेंसें, दाढा दात वगैरे सर्व इद्र, देवतादिक, अपनें २ देवलोकमे, पूजाके निमत्त लेजानें लगे (तब) वृद्ध श्रावक ब्राह्मण लोक मिलकर, बहुत विनय संयुक्त, देवताओंसें याचना करने लगे (तब) देवता लोक अहो याचका २, ऐसा बोलके देने लगे (तबसें) ब्राह्मणाको याचक कहनें लगे (और) ब्राह्मणोनें, श्री ऋषभदेवकी चितामेंसे अग्नि लेकर, अपनें २ घरोंमें स्थापन करते हुए (इससें) ब्राह्मणाकों आहिताग्नय कहनें लगे ॥ श्री ऋषभदेवकी चिता जले पीछे, दाढादिक तो सर्व इंद्रादिक ले गए (बाकी) भसी अर्थात् रास रह गई, सो ब्राह्मणोनें थोडी थोडी सर्व लोकोंको दीनी (तब) उस राखकों लेकै सर्वने अपनें

मस्तकपर त्रिपुंडाकारसें लगायी (तबसें) त्रिपुंड लगाना सरू हुवा। (और जब) भरतजीनें कैलास पर्वतके ऊपर, सिंहनिषद्या नामें मंदिर बनाया (उसमें) श्री ऋपभदेवस्वामीकी (और) आगे होनेंवाले २३ तीर्थकरोंकी, सर्व चौवीश प्रतिमा, अपना २ वर्ण प्रमाणसुजब, चारेइं दिशामें संस्थापन करी (और) दंड रत्नसें पर्वतकों ऐसें छीला (कि) जिस ऊपर कोई पुरुप पांवासें न चढ सके। (उसमे) एकेक जोजन ऊंचा ८ पगथिया रक्खा (इससें) कैलास पर्वतका, दूसरा नाम अष्टापद हुवा ॥ और तबसेंही कैलास, महादेवका पर्वत कहलाया ॥ मोटा जो देवसो महादेव, श्री ऋपभदेवस्वामी, जिसका निर्वाण स्थान कैलास हुवा ॥ (पीछे) श्री भरत चक्रवर्त्ति केवलज्ञान पायके मोक्ष गए (तब) श्री भरतजीके पाटे, सूर्ययशा राजा भया। तिसकी औलाद सूर्यवंशी कहलाए। सूर्ययशाके पाटे महायशा राजा गद्दीपर बैठा (ऐसें) अतिबल, महाबल, तेजवीर्य, दंडवीर्य (इत्यादि) अनुक्रमसें अपनें २ पिताकी गद्दीपर, बैठे (परंतु) भरतजीसें आधा राज्य (अर्थात्) भरत क्षेत्रका तीन खंडके भीतर २ राज्य रहा अंतमे (भरतजीकी तरै) आठ पाटतक तो, आरीसा महलमें, केवलग्यान पाय, दिक्षा लेके मोक्ष गए (इस पीछे) दूसरा तीर्थकर, श्री अजितनाथ स्वामीका पित्रा, जितशत्रु राजातक असंख्य पाट हुए। जिन सबका अधिकार सिद्धांतगंडिकासें जाण लेना ॥ इति ५५ बोल गर्भित श्री ऋपभ देवस्वामी (तथा) पहला चक्रवर्त्ति भरतजीका अधिकार कहा ॥

॥ अब दूसरा श्री अजितनाथस्वामी अधिकारः ॥

अजोध्यानगरीमें, भरतजीकेपीछे, असंख्य राजा हो चुके (तब) इक्ष्वागवंशी जितशत्रु राजा भया । तिसके विजयानामे राणी । तिसकी कूखमे, विजय अनुत्तर विमानसें, वैशाखसुद १३ के दिन, भगवान अवतार लिया ॥ मातायें गजादि अग्निशिखापर्यंत, १४ स्वप्ना प्रगटपणें मुखमें प्रवेश करता देखा । गर्भमें ८ मास २५ दिन रहके । मिति माघ शुक्ल ८ के दिन, रोहिणी नक्षत्रे जन्म हुवा (तब) जितशत्रु राजाये १० दिन पर्यंत जन्म उच्छव करके, अजितकुमर, नाम स्थापन किया । लांछन हस्ती । शरीरमान ४५० धनुष । कंचनसमानवर्ण, तीन ज्ञानयुक्त, महातेजस्वी । भोगावलीकर्म निर्जरार्थे, विवाहकरके, क्रमसें राज्यपदको प्राप्त हुवे (पीछे) अवसर आये, लोकांतिक देवताके वचनसें, संवत्सरपर्यंत मोटो दान देके, माघ कृष्ण ९ के दिन, अयोध्या नगरीमें, छठतप करके, शालवृक्षके नीचे १ हजार (१०००) पुरुषोंकेसाथ दीक्षा ग्रहण करी । (उसीवखत) भगवानको चोथा मनपर्यव ग्यान उत्पन्न भया । प्रथम छठका पारणा, परमान्नसे, ब्रह्मदत्त व्यवहारीके घरे हुवा ॥ १२ वरष छद्मस्थपणे विहार करके, अयोध्या नगरीगये (तब) वहा मिती पोषवदि ११ के दिन, लोकालोक प्रकाशक केवल ज्ञान उत्पन्न भया । (तब) देवगणका कीया हुवा, समवसरणमध्ये वैठके, १२ परषदाके सन्मुख, धर्मोपदेश करके, चतुर्विधसंघकी स्थापना करी । भगवान्के सिंहसेन प्रमुख ९५ गणधर हुवे ॥ १ लाख (१०००००) सर्व

साधु मुनिराज भए। ३ लाख ३० हजार (३३००००) फल्गुश्री प्रमुख साधवी हुई ॥ २० हजार च्यारसै (२०४००) वैक्रियलब्धि धारक हुवे ॥ ९ हजार च्यारसै (९४००) अवधि ज्ञानी भए ॥ २२ हजार (२२०००) केवल ज्ञानी भए ॥ १२ हजार साढा-पांचसो (१२५५०) मनपर्याय ज्ञानी भए ॥ सैतीससै वीश (३७२०) चवदे पूर्वधारी भए। १२ हजार च्यारसो (१२४००) वादी विरुद धरनेंवाले भए। २ लाख ९८ हजार (२९८०००) व्रत-धारी श्रावक भए ॥ ५ लाख ४५ हजार (५४५०००) व्रतधारक श्रावकण्यां भई (इत्यादिक) बहुतसे जीवोंका उद्धार करके, अंतसमे समेत शिखरपर्वतऊपर १ हजार (१०००) साधुवोंके साथ, १ मासकी संलेखना करके, काउसग्ग मुद्रासें, सर्व कर्म खपायके, मिती चैत्रसुदि ५ पंचमीके दिन, ७२ पूर्वलाखवरषको आउषो पालकें सिद्धिस्थानकों प्राप्त भए ॥ शासनदेव महायक्ष। शासनदेवी अजितबला मानवगण। सर्पयोनि। वृषराशि। भग-वान् सम्यक्त पाये बाद तीसरे भवमें मोक्षगए (इस समयमें) दूसरा चक्रवर्त्ति सगरनामें हुवा ॥

॥ अब किंचित् सगर चक्रवर्त्तिका अधिकारः ॥

श्री अजितनाथ स्वामीके, पिताका भाई, सुमित्र नामें युवराजा हुवा ॥ जिसके यशोमतीराणीयें। १४ स्वप्न पूर्वक, सगरनामें पुत्रको जन्मा (जब) भगवान्‌ने दीक्षा लीवी। (तब) अपना भाई सगर युवराजाको राजगद्दीपर स्थापन किया। पीछे नवनिधान (और) चक्र वगेरे १४ रत्न प्रगट होनेसें, भरतक्षेत्रका छखंडसा-

धके । दूसरा चक्रवर्त्ति हुवा । इनके, जन्हुकुमार प्रमुख ६० हजार (६००००) पुत्रभए । वो सर्व समुदाई कर्मकेयोग, एकदा भरत-चक्रवर्त्तिका कराया हुवा, सुवर्णमई अष्टापद पर्वतके ऊपर, रत्नमई, निज २ प्रमाणोपेत २४ भगवान्का मंदिर देखके, पर्वतकी रक्षाके निमित्त, बहुत ऊंडी खाई खोदके, गंगानदीके जलसे चउफेर भरदीनी । तब उस जमीनके अधिष्ठित, देवगणकों तकलीन होनेसें एकसाथ ६० हजार (६००००) पुत्रोंको भस्म कर दीया । इसकी मालुम होनेसें, सगरचक्रवर्त्तिकों बहुतसा दुःखभया (पीछे) सौधर्मेंद्रके मुखसें भवस्थितिका स्वरूप सुणके दुःख दूर किया (पीछे जब) सगर पुत्रोंके लाया हुवा, गंगाकाजल बढता थका, अष्टापद पर्वतके चौफेर देशोंमें उपद्रव करने लगा (तब) जन्हुकुमारका पुत्र, भागीरथ, सगर चक्रवर्त्तिकी आज्ञा पायके, दंडरत्नसें जमीनको खोदके, गंगाजलका प्रवाहकु, पूर्व समुद्रमें मिला दिया (इसीसे) गंगाका नाम लोकीकमें जान्हवी (तथा) भागीरथी कहने लगे ॥ और यह खारासमुद्र पिण, देवसहायसे, सगरका लाया हुवा सत्रुजयकी रक्षाकेलिये भरत-क्षेत्रमें मालुम हो रहा है (और) सगर चक्रवर्त्तिकी आज्ञासें वैताढ्य पर्वतसे आयके, लंकाके टापूमें, प्रथम घनवाहन राजा हुवा (इस) घनवाहन राजाके वंशमें, रावण, विभीषणादिक भए हे (सो) राक्षसी विद्यासें राक्षस कहलाए (इसीसें) लंकाके टापूका नाम राक्षसदीप हुवा (और) सिद्धगिरीके ऊपर, मंदिरोंका दूसरा उद्धार, सगरचक्रवर्त्तिनें करा (अरु) बडा दा-

नेसरी हुवा। अंतमें श्री अजितनाथ स्वामीकेपास दीक्षा लेकें, शुद्ध चारित्रसें केवल ज्ञान पायके, मोक्षकों प्राप्त भया ॥ श्री ऋषभदेव स्वामीके निर्वाणसें, पंचासलाख कोड सागरोपम व्यतीत होनेसें, श्री अजितनाथ स्वामीका निर्वाण हुवा ॥ इति ५५ बोलगर्भित दूसरा अजितनाथस्वामी (तथा) दूसरा सगर चक्रवर्त्तिका अधिकारः संपूर्णः ॥

॥ अथ ३ श्री संभवनाथस्वामी अधिकारः ॥

सावत्थी नगरीमें, इक्ष्वाकवंशी, जितारी नामे राजा हुवा (तिसके) सेना नामे पटराणी, जिसकी कूखमें, ऊपरला ग्रैवेयक विमानसें आयके, मिति फाल्गुन शुक्ल ८ के दिन, भगवान् उत्पन्न भया (पीछे) सर्व दिशा सुभिक्षसमें। मिति मिगसर शुक्ल १४, मृगशिर नक्षत्रे, जन्म कल्याणक हुवा (तव) जितारी राजायें १० दिन पर्यंत उच्छव करके, संभव कुमर नाम स्थापन किया। अश्वका लंच्छन युक्त, कंचनवर्ण, शरीर प्रमाण चारसै (४००) धनुप हुवा। तीन ज्ञानयुक्त। महा तेजस्वी। १ हजार ८ आठ (१००८) लक्षणालंकृत। भोगावली कर्म निर्जरार्थे, विवाह करके, क्रमसें राज्यपद धारन किया। अवसर आये, लोकांतिक देवताके वचनसें, संवत्सर पर्यंत मोटो दान देके, मिति मिगसर शुद १५ के दिन, सावत्थी नगरीमे छठ तप करके, प्रियालु वृक्षके नीचे, १ हजार (१०००) पुरुषोंके साथ, दिक्षा ग्रहण करी (उस वखत) चोथा, मनपर्यवज्ञान, उत्पन्न भया। प्रथम छठका पारणा, परमान्न क्षीरसै, सुरिंद्रदत्त

व्यवहारीयाके घरे हुवा । १४ वर्ष । छद्मस्थपणे विहार करकें, फेर सावत्थी नगरीमें चतुर्मास रहे । वहां छठ तप सयुक्त, मिति कार्त्तिक कृष्ण ५ के दिन, लोकालोक प्रकाशक, केवलज्ञान उत्पन्न भया (तिस वखत) चतुर्निकाय देवगणके किया हुवा समवसरणमे, १२ परपदाके सन्मुख धर्मोपदेश देके, चतुर्विधसंघकी स्थापना करी (जिसमे) २ लाख (२०००००) सर्व साधु मुनिराज भए (तिसमे) चारु प्रमुख १०२ गणधर पद धारक भए ॥ १९ हजार ८ सै (१९८००) वैक्रिय लब्धि धारक भए ॥ १२ हजार (१२०००) वादीविरुद धारक भए ॥ ९ हजार छसै (९६००) अवधि ज्ञानी भए ॥ १५ हजार (१५०००) केवल ज्ञानीभए ॥ १२ हजार दोडसो (१२१५०) मन पर्यव ज्ञानी भए ॥ २ हजार दोडसो (२१५०) चउदे पूर्वधारी भए ॥ ६ लाख ३६ हजार (६३६०००) श्यामा प्रमुख सर्व साधवी हुई ॥ २ लाख ९३ हजार (२९३०००) श्रावक हुए ॥ ६ लाख ३६ हजार (६३६०००) श्राविका भई (इत्यादिक) वहुतसे जीवोंका उद्धार करके, अंतसमें समेत शिखर पर्वत के ऊपर, १ हजार (१०००) साधुवोंकेसाथ, १ मासका अणसण ग्रहण कीया ॥ काउसग्ग मुद्रायें, आत्मगुणके ध्यानसें, सर्व कर्मकों खपायकें, मिति चैत्र शुद ५ के दिन, ६० लाख पूर्वका आऊखा पूरण करके, सिद्धि स्थानकों प्राप्त भए ॥ शासनदेव त्रिमुख यक्ष । शासन देवी दुरितारी । देवगण । सर्पयोनि । मिथुन राशि । अंतरकाल १० लाख कोटि सागरोपम । सम्यक्त पायेवाद, तीसरे भवमें मोक्ष गए ॥ इति ५५ बोल गर्भित श्री संभवनाथ स्वामी अधिकार. ॥

॥ अथ ४ था अभिनंदन स्वामी अधिकारः ॥

अयोध्या नगरीमें, इक्ष्वाकवंशी, संवर नामें राजा हुवा। तिसके सिद्धार्था नामें पट्टराणी। जिसकी कूखमें, जयंत नामा अनुत्तर विमानसें आयके, मिति वैशाख शुद्ध ४ के दिन उत्पन्न भया (पीछे) सर्व दिशा सुभिक्षसमें, मिति माघ शुद २, पुनर्वसु नक्षत्रे, जन्मकल्याणक हुवा (तब) संवरराजायें दशदिनका जन्म उच्छव करके, अभिनंदनकुमर, नाम स्थापन किया। वानरके लछन युक्त, कंचनवर्ण, शरीरप्रमाण ३५० धनुप हुवा। तीन ज्ञानयुक्त, महातेजस्वी, १ हजार ८ (१००८) लक्षणालंकृत, भोगावली कर्म निर्जरार्थे, विवाह करकें, क्रमसें राज्यपद धारण किया। अवसर आये लोकांतिक देवतांके वचनसें, संवत्सर पर्यंत मोटो दान देकें, मिति माघ शुक्ल १२ के दिन, अयोध्यानगरीमें, छठ तप करके, प्रियंगु वृक्षके नीचे, १ हजार (१०००) पुरुषोंकेसाथ दीक्षा ग्रहण करी। उसवखत, चोथो मनपर्यवज्ञान उत्पन्नभयो। प्रथम छठको पारणो, परमान्न क्षीरसें, इंद्रदत्त व्यवहारीके घरे हुवो। १८ वरप छद्मस्थपणें विहार करके (फेर) अयोध्यानगरीमें आए (वहां) छठतप संयुक्त, मिति पोप शुक्ल १४ के दिन, लोकालोक प्रकाशक केवलज्ञान उत्पन्न भया। उसवखत चतुर्निकाय देवगणका किया हुवा समवसरणमें, १२ परिपदाके सन्मुख, धर्मोपदेश देकें, चतुर्विध सघकी स्थापना करी॥ ३ लाख (३०००००) सर्व साधु मुनिराज भए (तिसमें) वज्रनाभ प्रमुख ११६ गणधर भए॥ १९ हजार (१९०००) वैक्रिय लब्धिधारक भए॥ ९ हजार ८ सैं

(९८००) अवधि ज्ञानीभए ॥ ११ हजार ६ सै पन्नास (११६५०) मनपर्यव ज्ञानीभए ॥ १४ हजार (१४०००) केवल ज्ञानी भए ॥ १५ सै (१५००) चउदे पूर्वधारीभए ॥ ११ हजार (११०००) वादी विरुदधारक भए ॥ ६ लाख ३० हजार सोल (६३००१६) अजिताप्रमुख साधवी हुई ॥ २ लाख ८८ हजार (२८८०००) श्रावक हुए ॥ ४ लाख २७ हजार च्यारसै (४२७४००) श्राविका हुई (इत्यादिक) बहुतसे जीवोंका उद्धार करकें, अंतसमे समेत-शिखरजी पर्वतके ऊपर १ हजार (१०००) साधुवोंके साथ, १ माशका अणशण ग्रहण किया। काउसग्ग मुद्राये सर्व कर्मको खपायके, मिति वैशाख शुक्ल ८ के दिन, ५० लाख पूर्वका आउखा पूरण करके, सिद्धिस्थानको प्राप्ति भए ॥ शासनदेव नायक यक्ष। शासनदेवी कालिका। देवगण। छागयोनि। मिथुनराशि, अतर-मान ९ लाख कोडि सागरोपम, सम्यक्तपायेबाद तीसरे भवमें मोक्षगए ॥ इति ५५ बोलगर्भित अभिनंदन स्वामीका अधिकारः ॥

अथ ५ मा श्री सुमतीनाथ स्वामी अधिकारः ॥

अयोध्यानगरीमे, इक्ष्वागुवंशी, मेघनामे राजा हुवा। तिसके मंगलानामे पट्टराणी। जिसकी कूखमे, जयत नामा अनुत्तरवि-मानसें आयके, मिति श्रावण शुक्ल २ के दिन, भगवान उत्पन्न हुवा गर्भस्थिति संपूर्ण होनेसै वैशाख शुदि ८ जन्म भया (जन्) दशदिनका उच्छव करके मेघराजायें, सुमतिकुमर नाम स्थापन किया ॥ क्रोचपक्षीके लंछनयुक्त, कंचनवर्ण, शरीरप्रमाण ३०० धनुष हुवा। तीन ज्ञानयुक्त, महातेजस्वी, १००८ लक्षणालकृत,

भोगावली कर्मनिर्जरार्थें विवाहकरके क्रमसें राज्यपद धारण कीया। अवसर आये, लोकांतिक देवताके वचनसें संवत्सरपर्यंत मोटो दान देके, मिति वैशाख शुक्ल ९ के दिन अयोध्यानगरीमें, नित्य भक्तसें, शालवृक्षके नीचे, १००० पुरुषोंके साथ दिक्षा ग्रहण करी (उसवखत) चोथो मनपर्यव ज्ञान उत्पन्न भयो। प्रथम पारणो परमान्नक्षीरसें, पद्मशेखरके घरे हुवो। २० वरष छद्मस्थपणें विहार करकें, फेर अयोध्यानगरीमें चातुर्मास रहें। वहां छठ तपसंयुक्त, मिति चैत्र शुक्ल ११ के दिन, लोकालोका प्रकाशक केवलज्ञान उत्पन्न भया। उसवखत चतुर्निकाय देवगणके किया हुवा, समवसरणमें बैठके, १२ परिषदाके सन्मुख, धर्मोपदेश देके, चतुर्विधसंघकी स्थापना करी॥ भगवान्के सर्वसाधु तीन लाख वीस हजार (३२००००) हुए (जिसमें) चरम प्रमुख सो (१००) गणधरपदधारक भए॥ १८ हजार च्यारसैं चालीस (१८४४०) वैक्रियलब्धि धारक भए॥ ११ हजार (११०००) अवधिज्ञानीभए॥ १० हजार साढाच्यारसै (१०४५०) मन पर्यवज्ञानी हुए॥ १३ हजार (१३०००) केवल ज्ञानीभए॥ चोवीससैं २४०० चवदे पूर्वधारक भए॥ १० हजार च्यारसै (१०४००) वादीविरुद धरनेंवाले भए॥ ५ लाख ३० हजार (५३००००) काश्यपीप्रमुख साधवी हुई॥ २ लाख ८१ हजार (२८१०००) श्रावक हुए॥ ५ लाख १६ हजार (५१६०००) श्राविका हुई॥ (इत्यादिक) वहुतसे जीवोंका उद्धार करके अंतसमें समेतशिखर पर्वतके ऊपर, १ हजार (१०००) साधुवोंके साथ १ मासका अण-

शण ग्रहण कीया ॥ काउसग्ग मुद्रायें, आत्मगुणके ध्यानसें, सर्व कर्मकों खपायके, मिति चैत्र शुक्ल ९ के दिन, ४० लाख पूर्वका आउखा पूरणकरके, सिद्धिस्थानकों प्राप्त भए ॥ शासनदेव तुवरु-यक्ष । शासनदेवी महाकाली । राक्षसगण । मूषक योनि । सिंह-राशी । अंतरकाल ९० हजार कोड सागरोपम । सम्य क्तपाए बाद तीसरे भवमे मोक्षगए ॥ इति ५५ बोलगर्भित श्री सुमतीनाथ स्वामीका अधिकारः ॥

॥ अथ ६ ठा श्री पद्मप्रभु अधिकारः ॥

कोसंबी नगरीमें, इक्ष्वागवंशी, श्रीधरनामे राजा (जिसके) सुसीमा पट्टराणी, तिसकी कूखमे, उपरिम ग्रैवेयक देवविमानसें चवके, मिति माघ कृष्ण ६ के दिन उत्पन्न हुवा । मातायें १४ स्वप्ना देखा (पीछे) सर्व दिशा सुभिक्ष समे, मिति कार्त्तिक कृष्ण १२ के दिन, चित्रा नक्षत्रे, जन्म कल्याणक हुवा (तब) श्रीधर राजाये १० दिन पर्यंत उछव करके, सर्व गोत्रियोंके सन्मुख, पद्मकुमर नाम स्थापनकिया (नाम स्थापनका येहेतू हे) मातानें पद्म सज्यापर सोनेंका डोहला उत्पन्न हुवा था (और) भगवान्‌का पद्म कमलके समान रंग था (इससें) पद्मकुमर नाम हुवा । कमलका लंछन युक्त । रक्तवर्ण । शरीर प्रमाण २५० धनुष हुवा । तीन ज्ञानयुक्त । महातेजस्वी, १००८ लक्षणालंकृत, भोगावलि कर्म निर्जरार्थे, विवाह करके, क्रमसें राज्यपद धारण किया । अवसर आयेसे, लोकांतिक देवताके वचनसें, सवत्सरपर्यंत मोटो दानदेके, मिति कार्त्तिक कृष्ण १३ कों, कोशंबीनगरीमे.

एक उपवास करकें, छत्र वृक्षके नीचे, १००० पुरुषोंकेसाथ, दीक्षा ग्रहण करी (उस वखत) चोथो मनपर्यव ज्ञान उत्पन्न भयो। प्रथम पारणो, सोमदेव ब्राह्मणके घरे, परमान्न क्षीर सेती भयो। छ मास छद्मस्थ पणे विहार करके, फेर कोशंबी नगरीमें आए (वहां) चोथभक्त संयुक्त चैत्र शुद १५ के दिन, लोकालोक प्रकाशक केवलज्ञान उत्पन्न भया। उस वखत चतुर्निकाय देव गणका किया हुवा, समवसरणमें बेठकें, १२ परपदा के सन्मुख, धर्मोपदेश देके, चतुर्विध संघकी स्थापना करी॥ भगवान्के सर्व ३ लाख ३० हजार (३३००००) साधु हुए॥ (जिसमें) एकसो दो (१०२) प्रद्योतन प्रमुख गणधर भए॥ सोलेहजार एकसो आठ (१६१०८) वैक्रिय लब्धि धारक हुए॥ १० हजार (१००००) अवधि ज्ञानी भए॥ १० हजार ३ से (१०३००) मन पर्यव ज्ञानी भए॥ १२ हजार (१२०००) केवल ज्ञानी भए॥ २३०० चउदे पूर्वधारी हुए॥ ९६०० वादी विरुद धरनेंवाले हुए॥ ४ लाख २० हजार (४०२०००) रति प्रमुख साधवी हुई॥ २ लाख ७६ हजार (२७६०००) श्रावक हुए॥ ५ लाख ५ हजार (५०५०००) श्राविका हुई। (इत्यादिक) बहुतसे जीवोका उद्धार करके, अंतसमें, समेत शिखरजी पर्वतके ऊपर, ३०८ साधुवोकेसाथ, १ मासका अणशण ग्रहण किया। काउसग्ग मुद्रायें, आत्मगुणके ध्यानसें, सर्व कर्म कों खपायकें, मिति मिगसर वदि ११ के दिन, ३० लाख पूर्वका आउखा पूरण करके, सिद्धि स्थानकों प्राप्ति भए॥ शासनदेव कुसुम यक्ष। शासन देवी शामा। राक्षसगण।

महिप योनि । कन्या राशि । अंतर काल ९ हजार कोड सागरोपम । सम्यक्त पाएवाद तीसरे भवमें मोक्ष गए ॥

॥ इति ५५ वोल गर्भित ६ श्री पद्म प्रभुका अधिकारः ॥ ६ ॥

॥ अथ ७ श्री सुपार्श्वनाथजी अधिकारः ॥

वनारशी नगरीमें, इक्ष्वाकवंशी, प्रतिष्ट नामें राजा हुवा (तिशके) पृथ्वी नामें पट्टराणी, जिसकी कूखमें, सप्तम ग्रेवेयक देव विमानसें आयके । मिति भाद्रवा वदी ८ के दिन, भगवान् उत्पन्न भया (तव) मातायें चवदें स्वप्न देखा । पीछे सर्व दिशा सुभिक्ष समें, मिति जेष्ट शुद २ के दिन विशाखा नक्षत्रे, जन्म कल्याणक हुवा । साथियेका लांछन शुक्त । कंचन वर्ण, सरीर प्रमाण २ सें (२००) धनुष हुवा। तीन ज्ञानयुक्त। महा तेजस्वी। एक हजार आठ लक्षणालकृत, भोगावली कर्म निर्जरार्थे, विवाह करकें, क्रमसें राज्यपद धारण किया । अवसर आए लोकातिक देवताकें वचनसें, संवत्सर पर्यंत मोटो दान देके, मिति जेष्ट सुदी १३ के दिन, वणारशी नगरीमे, छठ तप करकें, सरीश वृक्षकें नीचे, एक हजार पुरुषोंकेसाथ, दिक्षा ग्रहण करी (उस वखत) चोथो मनपर्यवज्ञान उपज्यो । प्रथम छठको पारणो, माहेंद्रदत्तकें घरे, परमान्नसें हुवो । नवमाश छद्मस्थपणे विहार करके, फेर वनारशी नगरीमे आये । वहा छठ तप सयुक्त, फागुण वदी ६ के दिन, लोकालोक प्रकाशक, केवल ज्ञान उत्पन्न हुवा (उस वखत) चतुर्निकाय देवगणका किया भया, समवसरणमे, वारह परखदाकें सन्मुख भगवान् धर्मोपदेश देकें, चतुर्विध सघकी स्थापना करी ॥

भगवानकै (३०००००) तीन लाख सर्व साधू हुए (जिसमें) विदर्भ प्रमुख ९५ गणधर भए ॥ १५ हजार तीनसै (१५३००) वैक्रीयलब्धि धारक भए ॥ ९ हजार (९०००) अवधि ज्ञानी हुए ॥ ८ हजार दोढसो (८१५०) मनपर्यव ज्ञानी हुए ॥ ११ सै (११००) केवल ज्ञानी हुए २ हजार तीस (२०३०) चवदै पूर्वधारी हुए ॥ ८ हजार ४ सै (८४००) वादी विरुद धारक हुए ॥ ४ लाख ३० हजार ८ (४३०००८) सोमा प्रमुख साधवी हुई ॥ २ लाख ५७ हजार (२५७०००) श्रावक हुए ॥ ४ लाख ९३ हजार (४९३०००) श्राविका हुई (इत्यादिक) बहोतसे जीवोंका उद्धार करकै, अंतसमें, समेत शिखरजी पर्वतकै ऊपर, पांचसै ५०० साधुवोंकैसाथ, एक माशका अणसण ग्रहण कीया ॥ काउसग्ग मुद्रायें, आत्मगुणके ध्यानसें, सर्व कर्म खपायकै, मिति फाल्गुण वदी ७ के दिन, वीस लाख पूर्वका आयुष्य पूर्ण करकै, सिद्धि स्थानकुं प्राप्त भए ॥ सासन देव मातंगजक्ष । सासन देवी सांता । राक्षस गण मृग योनी । तुल राशी । अंतकाल ९ सो कोडी सागरोपम । सम्यक्त पायेबाद, तीसरै भवमें मोक्ष गए ॥ इति ५५ बोल गर्भित श्री सुपार्श्वनाथस्वामी अधिकार संपूर्ण ॥

॥ अथ ८ श्री चंद्राप्रभू स्वामी अधिकारः ॥

चंद्रपुरी नामा नगरीमें, इक्ष्वाकवंशी, महसेन नामे राजा (जिसके) लक्ष्मणा नामें पट्टराणी । जिसकी कूखमें, जयंतनामें विमानसें आयकै, मिति चैत्र कृष्ण ५ के दिन उत्पन्न भया । मातायें चवदै स्वप्न देखा पीछे सर्व दिशा सुभिक्ष समें, मिति पोष

वद् १२ के दिन, अनुराधा नक्षत्रे जन्म कल्याणक हुवा (तन) महसेन राजायें, १० दिनकाउछव करके, चंद्रप्रभ कुमर नाम दिया। चंद्रमाके लाछनयुक्त, स्वेतवर्ण, शरीर प्रमाण १५० धनुप, तीन ज्ञानयुक्त, महा तेजस्वी, १००८ लक्षणालकृत, भोगावली कर्म निर्जरार्थे, विवाह करके, क्रमसे राज्यपद धारण कीया। अवसर आये, लोकांतिक देवताके वचनसें, संवत्सर पर्यंत मोटो दान देके, मिति पोप वदी १३ के दिन, चंद्रपूरी नगरीमें, छठ तप करके, नागवृक्षके नीचे, १००० पुरुषोंकेसाथ दीक्षा ग्रहण करी (उस वखत) चोथो मनपर्यव ज्ञान उत्पन्न भयो। प्रथम छठको पारणो, सोमदत्तके घरे, परमान्न क्षीरसें हुवो॥ ३ माश छद्मस्थपणें विहार करके चंद्रपुरी नगरीमे आए (वहां) छठ तप संयुक्त, मिति फागुण वदि ४ के दिन, लोकालोक प्रकाशक, केवल ज्ञान उत्पन्न भया (उस वखत) चतुर्निकाय देवगणका किया हुवा, समवसरणमे बेठके, १२ परपदाके सन्मुख, धर्मोपदेश देके, चतुर्विध संघकी स्थापना करी। भगवानके सर्व २ लाख ५० हजार (२५००००) साधु भए (जिसमे) ९३ दिन्न प्रमुख गणधर हुए॥ १४ हजार (१४०००) वैक्रिय लब्धि धारक हुए॥ ८ हजार (८०००) अवधि ज्ञानी हुए॥ ८ हजार (८०००) मनपर्यव ज्ञानी हुए॥ १० हजार (१००००) केवल ज्ञानी हुए॥ २ हजार (२०००) चवदे पूर्वधारी हुए॥ ७ हजार ६ सें (७६००) वादी विरुदधारक भए॥ ३ लाख ८ हजार (३०८०००) सुमना प्रमुख साधवी हुई॥ २ लाख ५० हजार (२५००००) श्रावक हुए॥

४ लाख ७९ हजार (४७९०००) श्राविका हुई (इत्यादिक) बहुतसे जीवोंका उद्धार करकें, अंतसमें समेतशिखरजी पर्वतके ऊपर, १००० साधुवोंकेसाथ, १ मासका अणसण ग्रहण कीया। काउसग्ग मुद्रायें, आत्मगुणके ध्यानसें, सर्व कर्मकों खपायकें, मिति भाद्रवा वदि ७ के दिन, दश लाख पूर्वका आउखा पूरण करकें, सिद्धिस्थानकों प्राप्त भए ॥ शासनदेव विजय यक्ष। सासनदेवी भृकुटी। देवगण। मृग योनि। वृश्चिक राशि। अंतरकाल ९० कोडी सागरोपम। सम्यक्त पाएवाद, तीसरे भवमें मोक्ष गए ॥

इति ८ मा श्री चंद्राप्रभु स्वामीका अधिकारः।

॥ अथ ९ मा श्री सुविधनाथ स्वामी अधिकारः ॥

काकंदी नगरीमें, इक्ष्वाकवंशी, सुग्रीवनामें राजा हुवा (तिसके) रामा नामें पट्टराणी। जिसकी कूखमे, नवमा आनत नामा देवलोक ऐसें चवके, मिति फागुण वदि ९ के दिन भगवान् उत्पन्न भया। तब मातायें १४ स्वप्ना देखा (पीछे) सर्व दिशा सुभिक्षसमें, मिति पोष वद १२, मूलनक्षत्रे जन्मकल्याणक हुवा (तब) सुग्रीव राजायें १० दिनपर्यंत जन्म महोच्छव करके, सर्व गोत्रियोंके सन्मुख, सुविधिकुमर नाम स्थापन किया ॥ मगरमच्छका लंछनयुक्त, स्वेतवर्ण, शरीरप्रमाण १०० धनुप हुवा। तीन ज्ञानयुक्त, महातेजस्वी १००८ लक्षणालंकृत, भोगावली कर्म निर्जरार्थे विवाहकरके, क्रमसें राज्यपद धारण किया। अवसरआये। लोकांतिक देवताके वचनसें, सवत्सर पर्यंत मोटो दान देके, मिति पोस वदि

१३ के दिन, काकंदी नगरीमें, छठ तप करके, शालवृक्षके नीचे, १००० पुरुषोंके साथ, दीक्षा ग्रहण करी (उसवखत) चोथो मनपर्यवज्ञान उत्पन्न भयो। प्रथम छठको पारणो, पुष्पदत्तकेघरे, परमान्नसें हुवो। ४ वरस छद्मस्थपणें विहार करके, फेर काकंदी नगरी आए (वहां) छठ तप संयुक्त, मिति कार्तिकशुद ३ केदिन, लोकालोक प्रकाशक केवलग्यान केवल दर्शन उत्पन्न हुवा (उसवखत) चतुर्निकाय देवगणका किया हुवा समवसरणमे, १२ परखदाके सन्मुख, भगवान् धर्मोपदेश देके, चतुर्विध संघकी स्थापना करी। भगवान्के २ लाख (२०००००) सर्व साधु भए (जिसमें) वराह प्रमुख ८८ गणधर भए॥ १३ हजार (१३०००) वैक्रियलब्धि धारक भए॥ ८ हजार ४ सै (८४००) अवधिज्ञानी भए॥ ७ हजार ५ सै (७५००) मनपर्यव ज्ञानीभए॥ ७ हजार ५ सै (७५००) केवल ज्ञानीभए॥ पनरसै (१५००) चौदे पूर्वधारीभए॥ छ हजार (६०००) वादीविरुद धरनेंवालेभए॥ २ लाख २० हजार (१२००००) वारुणीप्रमुख साधवी हुई॥ २ लाख २९ हजार (२२९०००) श्रावक हुए॥ ४ लाख ७१ हजार (४७१०००) श्राविका हुई (इत्यादिक) बहुतसे जीवोंका उद्धार करके, कर्मशत्रुवोंसे छोडायकें, अतममे समेतशिखरजी पर्वतके ऊपर, १ हजार (१०००) साधुवोंके साथ, १ माशका अणशण ग्रहण किया। काउसग्ग मुद्रायें, आत्मगुणके ध्यानसे, सबकर्मोंकों खपायके, मिति भाद्रवा शुद ९ के दिन, २ लाख पूर्वका आउखा पूरण करके, सिद्धि स्थानकों प्राप्ति भए॥ शासनदेव अजितयक्ष।

शासनदेवी सुतारिका । राजसगण । वानरयोनि । धनराशि । अंतरकाल ९ कोड सागरोपम । सम्यक्त पायेवाद, तीसरेभवमें मोक्ष-गए ॥ इति ५५ बोलगर्भित श्री सुविधिनाथस्वामी अधिकारः ॥९॥

॥ अथ १० श्री शीतलनाथ स्वामी अधिकारः ॥

भद्दलपुर नगरीमें, इक्ष्वाकवंशी, दृढरथनामें राजा हुवा (तिसके) नंदा नामे पट्टराणी, जिसकी कूखमें, अच्युत नामें देवलोकसें चवके मिति वैशाखवदि ६ के दिन उत्पन्न भया (तब) मातायें १४ स्वप्ना देखा (पीछे) सर्वदिशा सुभिक्षसमें, मिति माघवदि १२ कों, पूर्वाषाढा नक्षत्रे, जन्मकल्याणक हुवा (तब) ५६ दिश कुमरी, ६४ इंद्रोंके जन्ममहोच्छव कियेवाद, दृढरथ राजा, १० दिवशका महोच्छव करके, श्री शीतलकुमर नाम दिया ॥ श्री वच्छका लंछनयुक्त, कंचनवर्ण, शरीरप्रमाण ९० धनुप हुवा । ३ ज्ञानसहित, महातेजस्वी, १००८ लक्षणालंकृत, भोगावली कर्म निर्जरार्थे, विवाह करकै, क्रमसें राज्यपदको धारन किया । अवसर आये लोकांतिक देवताके वचनसें, संवत्सरपर्यंत मोटो दान देके, मिति माघवदि १२ के दिन, भद्दलपुर नगरमें, छठतप करके, प्रियगु वृक्षके नीचे १००० पुरुषोंकेसाथ दीक्षा ग्रहण करी (उसवखत) चोथो मनपर्यवज्ञान उत्पन्न भयो । प्रथम छठको पारणो, पुनर्वसुके घरे, परमान्नक्षीरसें हुओ । तीनमाश छद्मस्थपणें विहार करके, फेर भद्दलपुर नगर आए (वहा) छठ तप सहित, मिति पोपवदि १४ के दिन, लोकालोकप्रकाशक, केवलज्ञान उत्पन्न भया । (उसवखत) चतुर्निकाय देवगणका किया हुवा, समवस-

रणमें बेठके, १२ परखदाके सन्मुख, भगवान् धर्मोपदेशदेके, चतुर्विधसंघकी स्थापना करी ॥ भगवान्के १ लाख (१०००००) सर्व साधुभए (जिसमे) नद प्रमुख ८१ गणधर हुए ॥ १२ हजार (१२०००) वैक्रियलब्धि धारक भए ॥ ७ हजार २ सै (७२००) अवधि ज्ञानीभए ॥ ७ हजार ५ सै (७५००) मनपर्यवज्ञानीभए ॥ १४ सै (१४००) चवदे पूर्वधारीभए ॥ ५ हजार ८ सै (५८००) वादी विरुदधारीभए ॥ १ लाख ४० हजार (१४००००) सुयशाप्रमुख साधवी हुई ॥ दोलाख तयासीहजार (२८३०००) श्रावकभए ॥ ४ लाख ५८ हजार (४५८०००) श्राविकाभई (इत्यादिक) बहुतसे जीवोंका उद्वार करके, अंतसमें समेतशिखरजी परवतके ऊपर, १ हजार (१०००) साधुवोंके साथ, १ माशका अणसण ग्रहण किया॥ काउसग्ग मुद्रायें, आत्मगुण के ध्यानसें, सर्वकर्मोंको खपायके, मिति वैशाखवदि २ केदिन, १ लाख पूर्वको आयुपूरण करके, सिद्धिस्थानकों प्राप्तभए ॥ शासनदेव ब्रह्मायक्ष । शासनदेवी अशोका । मानवगण । नकुलयोनि । धनराशि । अतरकाल १ कोटि सागरोपम, सम्यक्त पाएवाद, तीसरे भवमे मोक्षगए (इनोंकी बखतमे) हरिवंशकुलकी उत्पत्तिभई (जिसमें) वसुराजादि हुवे है । इसका विस्तार संवध जैनसिद्वातोंसे जाणना ॥ इति ५५ बोलगर्भित श्री शीतलनाथ स्वामी अधिकारः ॥

॥ अथ ११ मा श्री श्रेयांसनाथस्वामी अधिकारः ॥

सिंहपुरी नगरीमें, इक्ष्वाकवंशी, विष्णु नामे राजा हुवा (तिसके) विष्णु नामे पट्टराणी, जिसकी कूखमें, अच्युतनामा १२ मा

देव लोकसें चवके, मिति ज्येष्ट वदि १४ के दिन, भगवान् उत्पन्न हुवा (तब) मातायें, गजादि अग्निशिखा पर्यंत, १४ स्वप्ना प्रगट-पणें मुखमें प्रवेश कर्त्ता देखा (पीछे) सर्व दिशा सुभिक्षसमें, मिति फागुन वदि १२ को, श्रवणनक्षत्रे, जन्म कल्याणक हुवा (उसी वखत) ५६ दिशकुमरी मिलके सूतिका महोच्छव किया (और पीछे) ६४ इंद्र, मेरु पर्वतपर भगवान्‌कों ले जायके जन्म महोच्छव किया (तिस पीछे) विष्णु राजा १० दिवसपर्यंत मोटो जन्म महोच्छव करके, सर्व न्याती गोती प्रजा गणकों, मनसा भोजन करायके, सर्वके सन्मुख श्रेयांस कुमर नाम दिया ॥ नाम स्थापनका यह हेतु हे (कि) विष्णु राजाके महिलमें, देव अधि-ष्ठित १ सज्याथी । उस देवसय्यापर जो सूवे बेठे, तो अकस्मात् कोई उपद्रव हुवे विगर रहे नही (जब) भगवान् विष्णु माताके गर्भमें आये (तब) माताकों उस देवसय्यापर, सोनेका डोहला उत्पन्न भया (इस सेती) विष्णु माता जब देवसय्यापर सूती, तब देवता प्रसन्न होके माताकी सेवामें हाजर भया । कोइ तरहका उपद्रव नहि हो सका (इसवास्ते) पितायें श्रेयांसकुमर नाम दिया । गेंडेका लंछन युक्त, कंचन वर्ण, शरीर प्रमाण ८० धनुष हुवा । तीन ज्ञान सहित, महा तेजस्वी, १००८ लक्षणालंकृत, भोगावली कर्म निर्जरार्थे, विवाह करके, क्रमसें राज्यपद धारन किया । अवसर आये, लोकांतिक देवताके वचनसें । संवत्सर पर्यंत मोटो दान देके, मिति फाल्गुन वदि १३ के दिन, सिंहपुरी नगरीमें, छठ तप करके, तिंदुक वृक्षके नींचे, १००० पुरषोंकेसाथ

दीक्षा ग्रहण करी। उस वखत चोथो मनपर्येव ज्ञान उत्पन्न भयो। प्रथम छठको पारणो, नंदरायके घरे, परमान्न क्षीरसें हुवो ॥ दो वर्ष छद्मस्थपणें विहार करके (फेर) सिंहपुरी नगरीमें आए वहां छठ तप सहित, मिति माघ वदि ३० के दिन, लोकालोक प्रकाशक केवल ग्यान उत्पन्न भया (उस वखत) चतुर्निकाय देवगणका किया भया समवसरणमें, १२ परषदाके सन्मुख, भगवान् धर्मोपदेश देके, चतुर्विध संघकी स्थापना करी ॥ भगवान्के ८४ हजार (८४०००) सर्व साधु हुए (जिसमें) कच्छप प्रमुख ७६ गणधर पद धारक भए ॥ ११ हजार (११०००) वैक्रियलब्धि धारक भए ॥ ६ हजार (६०००) अवधिज्ञानी भए ॥ ६ हजार (६०००) मनपर्यव ज्ञानी भए ॥ ६ हजार ५ सैं (६५००) केवल ज्ञानी भए ॥ १३ सै (१३००) चौंदे पूर्वधारी हुए ॥ ५ हजार (५०००) वादी विरुदधारक भए ॥ १० लाख ३ सै (१००३००) साधवीयो भई ॥ २ लाख ७८ हजार (२७८०००) श्रावक भए ॥ ४ लाख ४८ हजार (४४८०००) श्राविका हुई ॥ इत्यादिक बहुतसे जीवोंका उद्धार करके, (अंतसमे) समेत सिखरजी पर्वत ऊपर, १००० साधुवोंकेसाथ, एक मासका अणसण ग्रहण किया ॥ काउसग्ग मुद्रायें, आत्मगुणके ध्यानसें, सर्व कर्मोको खपायके, मिति श्रावण वदि ३ के दिन, ८४ लाख वरषका आयुष्य पूरण करके सिद्धि स्थानकों प्राप्त हुए ॥ शासनदेव यक्षराज। शासनदेवी मानवी। देवगण। वानर योनी। मकर राशि। अंतरमान ५४ सागरोपम। सम्यक्त पाये बाद तीसरे भवमे मोक्ष गए ॥

इति ५५ बोल गर्भित श्री श्रेयास जिन अधिकारः ॥

(इनोंके वखतमें) त्रिपृष्ट नामें पहला वासुदेव, अचल नामें बलदेव हुवा (जिणोंनें) अपना वैरी, अश्वग्रीव प्रति वासुदेवकों मारके, भरत क्षेत्रके तीन खडका राज करा ॥ (और) इनोंके समयमें, वैताढ्य पर्वतसें, श्रीकंठ नामा विद्याधरके पुत्रनें पद्मोत्तर विद्याधरकी बेटीकों अपहरण करके, अपना बहनोई राक्षसवंशी, लंकाका राजा, कीर्त्तिधवलके शरणमें गया (तब) कीर्त्तिधवलनें तीनसे जोजन प्रमाण, वानर द्वीप, उनके रहनेकों दिया । तिनके संतानोमेंसें चित्र विचित्र, विद्याधरोनें, विद्यासें बंदरका रूप बनाया, (तब) वानरद्वीपके रहनेसें, और वानरका रूप बनानेसें, वानरवंशी प्रसिद्ध हुये । तिनोंकी ओलादमें वाली, सुग्रीवादिक भए है ॥

॥ अथ १२ मा श्री वासुपूज्यस्वामी अधिकारः ॥

चंपापुरीनामा नगरीमें, इक्ष्वाकुवंशी, वसुपूज्यनामे राजा हुवा (उसके) जयानामें पट्टराणी, जिसकी कूखमें, प्राणतनामा १० मा देवलोकसे चवके, मिती ज्येष्टसुदि ९ के दिन, भगवान् उत्पन्न हुये । तब मातायें, गजादि अग्निशिखापर्यंत, १४ स्वप्न प्रगटपणें मुखमें प्रवेश कर्त्ते देखे । पीछे सर्व दिशा सुभिक्षसमें, मिति फाल्गुनवदि १४, शतभिषानक्षत्रे, जन्मकल्याणक हुवा (उसी-वखत) ५६ दिशाकुमारीयों मिलके सूतिकामहोच्छव कीया (पीछे) ६४ इंद्र मेरुपर्वतपर भगवानकों लेजायके जन्ममहोच्छव कीया (तिस पीछे) वसुपूज्य राजायें, १० दिनपर्यंत, मोटो जन्म महोच्छव करके. सर्व न्याती प्रजागणकुं मनसाभोजन करायके,

वासुपूज्य कुमरनाम स्थापन किया (नाम स्थापनका यह हेतु है) वासवनाम इंद्र, जब भगवान् माताके गर्भमे आये, तब इंद्रनें भगवान्‌की माताकों वारवार पूज्या । इस्सें वासुपूज्यनाम (अथवा) वसुकहिये रत्नवासव कहिये वैश्रमण, जब भगवान गर्भमें आये । तब वैश्रमण देवनें राजाके घरमे वारवार रत्नांकी वर्षा करी, इत्यादि कारणोसें, वासुपूज्य नाम दिया । पाडेका लछनयुक्त, लालवर्ण, शरीरप्रमाण ७० धनुष हुवा । तीन ज्ञानसहित, महातेजस्वी, १००८ लक्षणालकृत, भोगावलीकर्म निर्जरार्थे विवाह किया । अवसर आये, लोकांतिक देवताके वचनसें, कुमारावस्थामें संवत्सरपर्यंत मोटो दान देके, फाल्गुन सुदि १५ दिन चंपानगरीमें, छठतप करके, पाडलवृक्षके नीचे, ६०० पुरुषोंके साथ, दीक्षा ग्रहण करी । उसवखत चोथो मनपर्यवज्ञान उत्पन्न भयो । प्रथम छठको पारणो सुनंदके घरे, परमान्नक्षीरसें हुवो । १ वरस छद्मस्थपणे विहार करके, फेर चंपानगरीमे आये । वहां छठतप सहित, मिति माघसुदि २ के दिन, लोकालोक प्रकाशक, केवलज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न हुवा, तब चतुर्निकाय देवगणका कीया हुवा समोसरणमे, १२ पर्षदाके सन्मुख, भगवान् धर्मोपदेश देके, चतुर्विध संघकी स्थापना करी । भगवान्‌के ७२ हजार (७२०००) सर्व साधु हुये (जिसमे) सुभूम प्रमुख ६६ गणधर पदधारक हुये ॥ धारणी प्रमुख १ लाख (१०००००) साधवियो हुई ॥ १० हजार (१००००) वैक्रियलब्धि धारक हुये ॥ चोपनसो (५४००) अवधि ज्ञानीभये ॥ ६ हजार (६०००) केवल ज्ञानीभये ॥ पैंसठसो (६५००) मनपर्यव

ज्ञानीभये ॥ १२ सो (१२००) चवदे पूर्वधारीभये ॥ सैंतालीससो (४७००) वादी विरुदधारीभये ॥ २ लाख १५ हजार (२१५०००) श्रावक हुये ॥ ४ लाख २६ हजार (४२६०००) श्राविका हुई (इत्यादिक) बहुतसे जीवोंका उद्धार करके, अंतसमें चंपानगरीमें, ६०० साधुवोंकेसाथ, १ मासका अनशन ग्रहण कीया । काउसग्ग मुद्रायें, आत्मगुणके ध्यानसें, सर्व कर्मकों खपायके, आषाढसुदि १४ के दिन, ७७ लाख (७७०००००) वर्षको आयुष्य पूरण करके। सिद्धि स्थानकों प्राप्ति भये । शासनदेव कुमारयक्ष । शासनदेवी चंडा । राक्षसगण अश्वयोनी । कुंभराशि । अंतरमान ३० सागरोपम । सम्यक्तपायेबाद तीसरे भवमें मोक्ष गये । इनोके बखतमें दूसरा द्विपृष्टनामा वासुदेव (अरु) विजय नामें बलदेव हुवा । इनका वेरी, तारक नामे दूसरा प्रतिवासुदेव हुवा । इति ५५ बोलगर्भित श्री वासुपूज्यस्वामी अधिकारः ॥ १२ ॥

॥ अथ १३ मा विमलनाथस्वामी अधिकारः ॥

कंपिलपुरी नगरीमें, इक्ष्वाकुवंशी, कृतवर्मनामें राजा हुवा (तिसके) श्यामानामें पट्टराणी । जिसकी कूखमें, सहस्रारनामें ८ मा देवलोकसे चवके, मिति वैशाखसुदि १२ के दिन भगवान उत्पन्न हुये, तब मातायें गजादि अग्निशिखापर्यंत १४ स्वप्ना, प्रगटपणें मुखमें प्रवेशकर्त्ता देखा पीछे सर्वदिशा सुभिक्षसमें, मिति माघसुदि ३ के दिन, उत्तराभाद्रपद नक्षत्रे जन्मकल्याणक हुवा (उसीवखत) ५६ दिशा कुमारीयो मिलके, सूतिका महोच्छव किया पीछे ६४ इंद्र मिलके, मेरु पर्वतपर, भगवानकों लेजायके, जन्म महोच्छव

कीया। तिस पीछे कृतवर्म राजायें, १० दिवस पर्यंत, मोटो जन्म-महोच्छव करके, सर्व न्याती गोती प्रजागणकुं मनसा भोजन करायके, विमल कुमर नाम स्थापन किया। (नाम स्थापनका यह हेतु है) कि जब भगवान् माताके गर्भमे आये। तब माताकी बुद्धि, अरु शरीर, दोनुं निर्मल हो गये (इस्सें) विमल कुमर नाम स्थापन किया। वाराहका लंछनयुक्त, कंचनवर्ण, शरीर प्रमाण ६० धनुप हुवा। ३ ज्ञान सहित, महा तेजस्वी, १००८ लक्षणालंकृत, भोगावली कर्म निर्जरार्थे, विवाह करके, क्रमसें राज्यपद धारण किया। अवसर आये, लोकांतिक देवताके वचनसें, संवत्सर पर्यंत वडो दान देके, मिति माघ सुदि ४ के दिन, कंपिलपुर नामा नगरमे, छठ तप करके, जंबू वृक्षके नीचे, १००० पुरुषोंकेसाथ, दीक्षा ग्रहण करी। उस वखत चोथो मन पर्यव ज्ञान उत्पन्न भयो। प्रथम छठको पारणो, जय राजाके घरे, परमान्न क्षीरसें हुवो। दो मास छद्मस्थपणे विहार करके, कंपिलपुरी नगरीमें आये। छठ तप सहित, पोषसुदि ६ के दिन, लोकालोक प्रकाशक, केवल ज्ञान, केवल दर्शन उत्पन्न हुवा। (तब) चतुर्निकाय देवगणका किया हुवा, समोसरणमे, १२ परपदाके सन्मुख, भगवान् धर्मोपदेश देके, चतुर्विध संघकी स्थापना करी॥ भगवान्के ६८ हजार (६८०००) सर्व साधु हुये (जिसमें) मंदर प्रमुख ५७ गणधर पद धारक हुये॥ धरा प्रमुख १ लाख ८ सो (१००८००) सर्व साध्वी हुई॥ ९ हजार (९०००) वैक्रिय लब्धि धारक भये॥ छत्तीसमो (३६००) वादी विरुद धारक हुये॥

अडतालीससो (४८००) अवधिज्ञानी हुये ॥ पचावनसो (५५००) मनपर्यव ज्ञानी हुये ॥ पचावनसो (५५००) केवल ज्ञानी हुये ॥ (११००) चवदे पूर्वधारी हुये ॥ २ लाख ८ हजार (२०८०००) श्रावक हुये ॥ ४ लाख २४ हजार (४२४०००) श्राविका हुई (इत्यादिक) बहुतसे जीवोंका उद्धार करके, अंतसमें, समेत शिखरजी पर्वत ऊपर, ६०० साधुवोंकेसाथ, १ मासका अनशन ग्रहण किया काउसग्ग मुद्रायें, आत्म गुणके ध्यानसें, सर्व कर्मकों खपायके, मिति आषाढ वदि ७ के दिन, ६० लाख (६००००००) वर्षको आयुष्य पूरन करके सिद्धि स्थानकों प्राप्त भये। शासन देव षण्मुख यक्ष। शासन देवी विदिता। मानवगण छागयोनि। मीन राशि। अंतर्मान ९ सागरोपम, सम्यक्त पाये-बाद तीसरे भव मोक्ष गये ॥ इनोंके वारे तीसरा स्वयंभू वासुदेव, अरुभद्र नामा बलदेव तथा मेरक नामा प्रति वासुदेव हुवा ॥ इति ५५ बोल गर्भित श्री विमल स्वामी अधिकारः ॥ १३ ॥

॥ अथ १४ मा श्री अनंतनाथ स्वामी अधिकारः ॥

अयोध्या नगरीमे, इक्ष्वाकवंशी, सिंहसेन नामें राजा हुवा तिसके सुयशा नामें पट्टराणी। जिसकी कूखमे, प्राणत नामा, देवलोकसें चवके, मिति श्रावण वदि ७ के दिन, भगवान् उत्पन्न हुवा। तब मातायें गजादि अग्नि शिखापर्यंत, १४ स्वप्न प्रगटपणे मुखमे प्रवेश कर्त्ता देखा (पीछे) सर्व दिशा सुभिक्षसमे, मिति वैशाख वदि १३ के दिन, रेवती नक्षत्रे, जन्म कल्याणक हुवा (उसी वखत) ५६ दिशा कुमारीयों मिलके, सूतिका महोच्छव

किया (पीछे) ६४ इंद्र मेरु पर्वतपर भगवान्कों ले जायके, जन्म महोन्छव कीया (तिस पीछे) सिंहसेन राजायें १० दिवसपर्यंत मोटो जन्म महोच्छव करके, सर्व न्याती गोती प्रजागणकों मनसा भोजन करायके, सर्वके सन्मुख, अनंतनाथ नाम स्थापन कीया (नाम स्थापनका यह हेतु हे) कि भगवान् गर्भमें आये, तब रत्नजडित चित्रविचित्र मोटी दाममाला, स्वप्नमें मातायें देखी । तिस कारणसें, अनंतनाथ नाम स्थापन किया सींचाणेका लछनयुक्त, कंचनवर्ण, शरीर प्रमाण ५० धनुप हुवा। तीन ज्ञानसहित, महा तेजस्वी, १००८ लक्षणालंकृत, भोगावली कर्म निर्जरार्थे विवाह कीया, क्रमसें राज्यपद धारन कीया। अवसर आये, लोकांतिक देवताके वचनसें, संवत्सरपर्यंत मोटो दान देके, वैशाख वदि १४ के दिन, अयोध्या नगरीमे, छठ तप करके, अशोक वृक्षके नीचे, १००० पुरुषोंके साथ दीक्षा ग्रहण करी । उस वखत चोथो मनपर्यव ज्ञान उत्पन्न भयो। प्रथम छठको पारणो, विजय राजाके घरे परमान्न क्षीरसें हुवो ॥ ३ वर्ष छद्मस्थपणें विहार करके, अयोध्या नगरीमे आये । वहां छठ तप सहित, वैशाख वदि १४ के दिन, लोकालोक प्रकाशक केवल ज्ञान उत्पन्न हुवा । उस वखत चतुर्निकाय देवगणका कीया हुवा समोसरणमे १२ परपदाके सन्मुख, भगवान् धर्मोपदेश देके, चतुर्विध संघकी स्थापना करी । भगवान्के ६६००० सर्व साधु हुवे (जिसमें) जस प्रमुख ५० गणधर पद धारक भए । पद्मा प्रमुख ६२००० सर्व साध्वी हुई । ८०००

वैक्रिय लब्धि धारक भए ॥ ३२०० वादीविरुद धारक भए ॥ ४३०० अवधिज्ञानी भए ५००० मनपर्यवज्ञानी भए ॥ ५००० केवलज्ञानी भए ॥ १००० चवदे पूर्वधारी भए ॥ २०६००० श्रावक भए ॥ ४१४००० श्राविका भई (इत्यादिक) बहुतसे जीवोंका उद्धार करके अंतसमें, समेतशिखरजी पर्वतपर, ७०० साधुवोकेसाथ १ मासका अनशन ग्रहण कीया । काउसग्गमुद्रायें, आत्मगुणके ध्यानसें, सर्वकर्मोकूं खपायके, मिति चैत्रसुदि ५ के दिन, तीसलाख (३००००००) वर्षको आयुष्य पूरन करके, सिद्धिस्थानकों प्राप्त भए ॥ शासनदेव पाताल यक्ष । शासनदेवी अंकुशा । देवगण । हस्तियोनि । मीनराशि । अंतर्मान ४ सागरोपम । सम्यक्तपायेवाद तीसरे भवमें मोक्ष गये ॥ इनोंके वारे, चोथा पुरुपोत्तमनामा वासुदेव (अरु) सुप्रभनामा बलदेव (तथा) मधुकैटभनामा प्रतिवासुदेव हुवा ॥ इति ५५ बोलगर्भित श्री अनतनाथस्वामी अधिकारः ॥ १४ ॥

॥ अथ १५ मा श्री धर्मनाथस्वामी अधिकारः ॥

रत्नपुरीनामा नगरीमें, इस्वाकुवंशी, भानुनामे राजा हुवा (तिसके) सुव्रतानामें पट्टराणी । जिसकी कूखमे, विजयनामा अनुत्तर विमानसें चवके, मिति वैशाख सुदि ७ के दिन, भगवान् उत्पन्न हुवा । तव मातायें गजादि अग्निशिखापर्यंत १४ स्वप्ना प्रगटपणे मुखमें प्रवेशकर्त्ता देखा (पीछे) सर्व दिशा सुभिक्षसमें, मिति माघसुदि ३ के दिन, पुष्यनक्षत्रे, जन्मकल्याणक हुवा ॥ उसीवखत ५६ दिशा कुमारीयों मिलके सूतिका

महोच्छव कीया । (पीछे) मेरूपर्वतपर भगवानकों लेजायके जन्म महोच्छव कीया । तिस पीछे भानुराजायें, १० दिवसपर्यत बडो जन्ममहोच्छव करके, सर्व न्याती गोती प्रजागणकों, मनसा भोजन करायके, सर्वके सन्मुख, श्री धर्मनाथ नाम स्थापन किया ॥ नाम स्थापनाका यह हेतु हैं । कि परमेश्वरके गर्भमे आनेसें, माता दानादिक धर्ममें तत्पर भई (इस्सें) धर्मकुमर नामस्थापन कीया । वज्रका लाछन युक्त, कंचनवर्ण, शरीरप्रमाण ४५ धनुष हुवा । तीन ज्ञानसहित, महातेजस्वी, १००८ लक्षणालंकृत, भोगावली कर्मनिर्जरार्थे विवाह करके, क्रमसें राज्यपद धारन कीया । अवसर आये लोकातिक देवताके वचनसें, संवत्सरपर्यंत मोटो दान देके, मिति मायसुदि १३ दिन, रत्नपुरीनगरीमे, छठ तप करके, दधिपर्णनामा वृक्षके नीचे, १००० पुरुषाकेसाथ दीक्षा ग्रहण करी उसवखत चोथो मनपर्यवज्ञान उत्पन्न भयो । प्रथम छठको पारणो, धनसिंहके घरे, परमान्नक्षीरसें हुवो । दो वर्ष छद्मस्थपणे विहार करके, रत्नपुरी नगरीमे आये । छठतप सहित, पोष सुद १५ के दिन, लोकालोक प्रकाशक, केवल ज्ञान केवल दर्शन उत्पन्न हुवा (उसवखत) चतुर्निकाय देवगणका कीया हुवा समोसरणमे, १२ परषदाके सन्मुख, भगवान् धर्मोपदेश देके, चतुर्विध संघकी स्थापना करी। भगवानके ६४००० सर्व साधु हुवे (जिसमें) अरिष्ट प्रमुख ४३ गणधर हुये ॥ आर्यशिवा प्रमुख ६२४०० सर्व साधवीयों हुई ॥ ७००० वैक्रिय लब्धि धारक हुवे ॥ २८००

वादी विरुद धारक हुवे ॥ ३६०० अवधि ज्ञानी हुवे ॥ ४५०० केवल ज्ञानी हुवे ॥ ९०० चवदे पूर्वधारी हुवे ॥ २०४००० श्रावक हुवा ॥ ४१३००० श्राविका हुई (इत्यादिक) बहुत्तसे जीवोंका उद्धार करके, अंतसमें, समेत शिखरजी पर्वतपर, १००८ साधुवोंकेसाथ, १ मासका अनशन ग्रहण कीया काउसग्ग मुद्राइं, आत्मगुणके ध्यानसें, सर्व कर्मोंकुं खपायके, मिति ज्येष्ट सुदि ५ के दिन, १० लाख वर्षको आयुष्य पूरन करके, सिद्धिस्थानकों प्राप्त भए ॥ शासनदेव किन्नर यक्ष । शासन देवी कंदर्पा । देवगण । मंजार योनी । कर्कराशि । अंतरमान ३ सागरोपम । सम्यक्तपायेवाद तीसरे भवमें मोक्ष गये ॥ (इनोकेबारे) ५ मा पुरुष सिंहनामा वासुदेव (अरु) सुदर्शन नामा बलदेव (तथा) निशुंभ नामा प्रति वासुदेव हुवा ॥

॥ इति ५५ वोल गर्भित श्री धर्मनाथाधिकारः ॥ १५ ॥

१५ मा श्री धर्मनाथ स्वामीके पीछे, अरु १६ मा श्री शांतिनाथ स्वामीके पहिले, तीसरा मघवा नामा चक्रवर्त्ति (और) चोथा सनत्कुमार नामा चक्रवर्त्ति हुवा ॥

॥ अथ १६ मा शांतिनाथ स्वामी अधिकारः ॥

हस्तनापुर नामा नगरमें, इक्ष्वाकुवंशी, विश्वसेन नामे राजा हुवा (तिसके) अचिरा नामें पट्टराणी, जिसकी कूंखमे, सर्वार्थसिद्ध नामा देवलोकसें चवके, मिति भाद्रवा वदि ७ के दिन, भगवान् उत्पन्न भए । तब मातायें, गजादि अग्निशिखापर्यंत, १४ स्वप्ना प्रगटपणें मुखमें प्रवेश कर्त्ता देखा (पीछे) सर्व दिशा

सुभिक्षसमे, ज्येष्ट वदि १३ के दिन, भरणी नक्षत्रे, जन्म कल्याणक हुवा ॥ उसी वखत ५६ दिशा कुमारीयों मिलके सूतिका महोच्छव कीया (पीछे) ६४ इंद्र मेरु पर्वतपर, भगवानको ले जायके, जन्म महोच्छव कीया (तिस पीछे) विश्वसेन राजायें १० दिवसपर्यंत, मोटो जन्म महोच्छव करके, सर्व न्याती गोती प्रजागणकों मनसा भोजन करायके, सर्वके सन्मुख शांतिकुमर नाम स्थापन कीया ॥ नाम स्थापनका यह हेतु है, गर्भमे भगवान्‌के उत्पन्न होनेसें, पूर्वे जो मरीआदिक रोगोपद्रव बहुतथा, वो शांति हो गया (इस कारणसें) शांति कुमर नाम दिया। हिरणका लांछनयुक्त, कंचनवर्ण, शरीरप्रमाण ४० धनुप हुवा। ३ ज्ञान सहित, महातेजस्वी, १००८ लक्षणालंकृत, भोगावलीकर्म निर्जरार्थे, चक्रवर्त्तिपद धारण करके, ६४ हजार स्त्रियाकों परण्या (पीछे) अवसर आये लोकांतिक देवताके वचनसें, मिति ज्येष्ठ वदि १४ के दिन, हस्तनापुर नगरमे, छठ तप करके नंदीवृक्षके नीचे, १००० पुरुषोंकेसाथ दीक्षा ग्रहण करी (उस वखत) चोथो मनपर्यवज्ञान उत्पन्न हुवो । प्रथम छठको पारणो, सुमित्रके घरे परमान्नक्षीरसें हुवो । १ वर्ष छद्मस्थपणे विहार करके, फिर हस्तनापुर नगरमे आये । वहां छठ तप सहित, पोपसुदि ९ के दिन, लोकालोक प्रकाशक केवल ज्ञान केवल दर्शन उत्पन्न हुवा (उस वखत) चतुर्निकाय देवगण का कीया हुवा समोसरणमे, १२ परपदाके सन्मुख, भगवान् धर्मोपदेश देके चतुर्विध संघकी स्थापना करी । भगवान्‌के ६२ हजार सर्व साधु हुये

(जिसमें) चक्रायुध प्रमुख ३६ गणधर पदधारक हुये ॥ सुचि-प्रमुख ६१६०० साधवींयों हुई ॥ ६००० वैक्रिय लब्धिवंत भए ॥ २४०० वादी विरुद धारक भए ॥ ३००० अवधि ज्ञानी भए ॥ ४००० मनपर्यव ज्ञानी भए ॥ ४३०० केवल ज्ञानी भए ॥ ८०० चवदे पूर्वधारी हुये ॥ २ लाख ९० हजार श्रावक हुवा ॥ २ लाख ९३ हजार श्राविका हुई ॥ (इत्यादिक) बहुतसे जीवोका उद्धार करके, अंतसमें समेत शिखरजीपरवतपर, ९०० साधुवों-केसाथ, १ मासका अणशन ग्रहण कीया । काउसग्ग मुद्राई आ-त्मगुणके ध्यानसें, सर्व कर्मोकों खपायके, मिति ज्येष्ट वदि १३ के दिन, १ लाख वर्षको आयुष्य पूरण करके, सिद्धिस्थानकों प्राप्त भए । शाशनदेव गरुड यक्ष । शासनदेवी निर्वाणी । मानव गण । हस्ति योनी । मेप राशि । अंतरमान अर्द्धपल्योपम । सम्यक्त पायेवाद १२ मे भवमें मोक्ष गए ॥ इति ५५ बोल गर्भित ५ मा चक्रवर्त्ति, १६ मा श्रीशांतिनाथ स्वामी अधिकारः ॥ १६ ॥

॥ अथ १७ मा श्री कुंथुनाथ स्वामी अधिकारः ॥

गजपुर नामा नगरमें, इक्ष्वाकुवंशी, सूरनामा राजा हुवा (तिसके) श्री नामा पट्टराणी । जिसकी कूखमें, सर्वार्थसिद्ध नामा देवलोकसें चवके, मिति श्रावण वदि ९ के दिन, भगवान् उत्पन्न भए । तब मातायें, गजादि अग्नि शिखापर्यंत, १४ स्वप्ना प्रगट-पणें मुखमें प्रवेश कर्त्ता देखा (पीछे) सर्व दिशा सुभिक्षसमें, वैशाख वदि १४ के दिन, कृत्तिका नक्षत्रे, जन्म कल्याणक हुवा । उसी वखत ५६ दिशा कुमारीयों मिलके सूतिका महोच्छव कीया

(पीछे) ६४ इंद्र मेरुपर्वतपर भगवानकों ले जायके जन्म महोच्छव कीया (तिस पीछे) सूर राजायें १० दिवस पर्यंत, मोटो जन्म महोच्छव करके, सर्व न्याती गोती प्रजागणकों मनसा भोजन करायके, सर्वके सन्मुख, श्री कुंथु कुमर नाम स्थापन कीया ॥ नाम स्थापनका यह हेतु है कि भगवान् गर्भमे आया, तव माता रत्नमई कुंथुवोंकी राशि देखती भई । इससें, कुंथ कुमर नाम दिया ॥ बकराका लछनयुक्त, कनकवर्ण, शरीर प्रमाण ३५ धनुप हुवा । ३ ज्ञानसहित, महा तेजस्वी, १००८ लक्षणालंकृत भोगावली कर्मनिर्जरार्थे, चक्रवर्त्ति पद धारण करके, ६४ हजार स्त्रियाकों परण्या (पीछे) अवसर आये लोकांतिक देवताके वचनसें, मिति चैत्रवदि ५ के दिन, हस्तनापुर नगरमें, छठ तप करके, भीलक वृक्षके नीचे १००० पुरुषोंकेसाथ दीक्षा ग्रहण करी (उसवखत) चोथो मनपर्यव ज्ञान उत्पन्न भयो । प्रथम छठको पारणो, व्याघ्रसिंघके घरे, परमान्नक्षीरसें हुवो । १६ वर्ष छद्मस्थपणें विहार करके, फिर हस्तनापुर नगरमें आये । वहां छठ तप सहित, चैत्रसुदि ३ के दिन लोकालोक प्रकाशक केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ (उसवखत) चतुर्निकाय देवगणका कीया भया समोसरणमे १२ परपदाके सन्मुख भगवान् धर्मोपदेश देके चतुर्विध सघकी स्थापना करी ॥ भगवानके ६० हजार सर्व साधु हुये (जिसमें) सांब प्रमुख ३५ गणधर पदधारक भये ॥ दामिनी प्रमुख ६०६०० साध्वी हुई ॥ ५१०० वैक्रियलब्धिवंत भए ॥ २००० वादी विरुदपद धारक भए ॥ २५०० अवधि ज्ञानी

भए ॥ ३३४० मनपर्यव ज्ञानी भए ॥ ३२०० केवल ज्ञानी भए ॥ ६७० चवदे पूर्वधारी भए ॥ १ लाख ७९ हजार श्रावक हुआ ॥ ३ लाख ८१ हजार श्राविका हुई (इत्यादिक) वहुतसे जीवोंका उद्धार करके, अंतसमें समेतशिखरजी पर्वतऊपर, १००० साधुवोंकेसाथ, १ मासका अनशन कीया । काउसग्ग मुद्राइं, आत्मगुणके ध्यानसें, सर्वकर्मोकुं खपायके, मिति वैशाखवदि १ दिन, ९५ हजार वर्षको आयुष्य पूरण करके सिद्धिस्थानकों प्राप्ति भए । शासनदेव गंधर्व यक्ष । शासनदेवी वला । छागयोनी । वृषराशि । अतरमान पावपल्योपम । सम्यक्त पायेवाद तीसरेभवमें मोक्ष गये ॥ इति ५५ बोलगर्भित ६ ठा चक्रवर्ति, १७ मा श्री कुंथुनाथ स्वामीका अधिकार संपूर्णम् ॥

॥ अथ १८ मा श्री अरनाथस्वामी अधिकारः ॥

गजपुरनामा नगरमे, इक्ष्वाकुवंशी, सुदर्शननाम राजा हुवा (तिसके) देवीनामें पट्टराणी हुई । जिसकी कूखमें सर्वार्थसिद्ध नामा देवलोकसें चवके, मिति फागणसुदि २ के दिन भगवान् उत्पन्न भए । तव मातायें गजादि अग्निसिखापर्यंत १४ स्वप्न प्रगटपणें मुखमें प्रवेशकर्त्ता देखा । पीछे सर्व दिशा सुभिक्षसमें, मिगसर सुद १० के दिन, रेवतीनक्षत्रे जन्मकल्याणक हुवा । उसी वखत ५६ दिशा कुमारीयों मिलके सूतिका महोच्छव कीया पीछे ६४ इंद्र मेरुपर्वतपर भगवानकों ले जायके जन्ममहोच्छव कीया । तिस पीछे सुदर्शनराजायें १० दिवसपर्यंत मोटो जन्ममहोच्छव करके, सर्व न्याती गोती प्रजागणकों मनसा-

भोजन करायके, सर्वके सन्मुख, श्री अरनाथ कुमर नाम स्थापन कीया। नाम स्थापनका यह हेतु है, कि भगवान् जब गर्भमे स्थित हुवा, तब मातायें स्वप्नमे, सर्व रत्नमई अरदेख्या (इस-कारणसें) अरकुमर नाम दीया। नंधावर्त्तका लंछनयुक्त, कनक-वर्ण, शरीरप्रमाण ३० धनुप हुवा। ३ ज्ञानसहित, महातेजस्वी, १००८ लक्षणालंकृत, भोगावली कर्म निर्जरार्थे, चक्रवर्त्ति पद-धारण करके, ६४ हजार स्त्रियांकों परण्या (पीछे) अवसर आये लोकातिक देवताके वचनसें, मिति मिगसरसुदि ११ के दिन, हस्तनापुर नगरमे, छठतप करके, आंबाका वृक्षके नीचे, १००० पुरुषोंकेसाथ दीक्षा ग्रहण करी (उसवखत) चोथो मनपर्यवज्ञान उत्पन्न भयो। प्रथम छठकोपारणो, अपराजितके घरे परमान्नक्षीरसे हुवो। तीनवर्ष छद्मस्थपणे विहार करके, फिर हस्तनापुरमे आये। वहा छठतप सहित, कार्त्तिकसुदि १२ के दिन, लोकालोक प्रकाशक केवल ज्ञान उत्पन्न हुवा (उस वखत) चतुर्निकाय देवगणका कीया हुवा समोसरणमें १२ परिपदाके सन्मुख, भगवान् धर्मोपदेश देके चतुर्विध संघकी स्थापना करी। भगवान्के ५० हजार सर्व साधुभये (जिसमे) कुंभ प्रमुख ३३ गणधर पदधारक भये। रक्षिता प्रमुख ६० हजार साध्वी हुई। ७३०० वैक्रिय लब्धिवंत भये॥ १६०० वादी विरुदपद धारकभये॥ २६०० अवधि ज्ञानीभये॥ २५५१ मनपर्यव ज्ञानीभये २८०० केवल ज्ञानीभये॥ ६१० चवदे पूर्वधारीभये॥ १ लाख ८४ हजार श्रावक हुये। ३ लाख

७२००० श्राविका हुई (इत्यादिक) वहुतसे जीवोंका उद्धार करके, अंतसमें समेत शिखर जी पर्वतपर, १००० साधुवोंके- साथ, १ मासका अनशन कीया । काउसग्ग मुद्राइं, आत्म- गुणके ध्यानसें, सर्व कर्मोंकों खपायके, मिति मिगसरसुदि १० के दिन, ८४००० वर्षकों आयुष्यमान पूरो करके, सिद्धि- स्थानकों प्राप्ति भये । शासनदेव यक्षराज । शासनदेवी धारणी । देवगण । हस्तियोनी । मीनराशि । अंतरमान १ हजार कोड- वर्ष । सम्यक्त पायेवाद तीसरे भवमें मोक्ष गये ॥ इहां १८ मा, तथा १९ मा, तीर्थंकरके वीचमें, ६ ठा पुरुष पुडरीक वासुदेव, तथा आनंदनामा वलदेव, वलिनामा प्रतिवासुदेव हुये इस पीछे ८ मा सुभूमनामें चक्रवर्त्ति हुवा । इस पीछे, दत्तनामा ७ मा वासुदेव, तथा नंदनामा बलदेव, और प्रह्लादनामा प्रति- वासुदेव भये ॥ इति ५५ वोलगर्भित ७ मा चक्रवर्त्ति, १८ मा श्री अरनाथ स्वामीका अधिकार संपूर्ण ॥ १८ ॥

॥ अथ १९ मा श्री मल्लिनाथस्वामी अधिकारः ॥

मिथिला नामा नगरीमें, इक्ष्वाकुवंशी, कुंभनामें राजा हुवा । तिसके प्रभावतीनामें पट्टराणी हुई । जिसकी कूखमें, जयंत विमा- नथी चवके, मिति फागुण सुदि ४ के दिन, भगवान् उत्पन्न भये । तव मातायें, गजादि अग्निशिखापर्यंत, १४ स्वप्ना प्रगट- पणें मुखमें प्रवेशकर्त्ता हुवा देखा (पीछे) सर्व दिशा सुभि- क्षसमें, मिगसर सुदि ११ के दिन, अश्विनीनक्षत्रे जन्म कल्याणक हुवा । उसीवखत ५६ दिशा कुमारीयो मिलके

सूतिका महोच्छव कीया । पीछे ६४ इंद्र, मेरुपर्वतपर भगवानको लेजायके, जन्ममहोच्छव कीया (तिस पीछे) कुंभराजायें १० दिवसपर्यंत मोटो जन्ममहोच्छव करके, सर्व न्याती गौती प्रजागणकों मनसा भोजन करायके, सर्वके सन्मुख श्री मल्लिकुमर नाम स्थापन कीया (नाम स्थापनका यह हेतु हैं) कि भगवान् जब गर्भमें आया तब भगवान्की माताकों सुगंधवाले फूल मालाकी सय्याऊपर, सोनेंका दोहद उत्पन्न भया । सो देवतानें पूरण कीया (इस कारणसें) मल्लिकुमर नाम दीया । कलशका लंछनयुक्त, नीलवर्ण, शरीर प्रमाण २५ धनुप हुवा । ३ ज्ञानसहित, महातेजस्वी, १००८ लक्षणालकृत, विवाह कियेविगर, कुमार अवस्थामे रया (पीछे) अवसर आये लोकातिक देवताके वचनसें, मिति मिगसरसुदि ११ के दिन, मथुरा नगरीमे, अष्टमतप करके, अशोकवृक्षके नीचे, ३०० कुमरी ३०० पुरुषोंकेसाथ दीक्षा ग्रहण करी (उस वखत) चोथो मनपर्यवज्ञान उत्पन्न भयो । प्रथम छठको पारणो, विश्वसेनकेघरे, परमान्नक्षीरसें हुवो । फिर उसीदिन मिथिलानगरीमे । छठतपसहित, मिगसर सुदि ११ के दिन लोकालोक प्रकाशक केवलज्ञान उत्पन्न हुवा (उसवखत) चतुर्निकाय देवगणका कीया हुवा समोसरणमें १२ परिषदाके सन्मुख भगवान धर्मोपदेश देके चतुर्विध संघका स्थापना करा भगवानके ४० हजार सर्व साधु भये । (जिसमे) अभिक्षक (किंसुक) प्रमुख २८ गणधर पदधारक हुवे ॥ बंधुमती प्रमुख ५५ हजार सर्व साध्वी हुई ॥

२९०० वेक्रियलब्धिवंत भये ॥ १४०० वादी विरुद धारक भये ॥ २२०० अवधिज्ञानी भये ॥ १७५० मनपर्यव ज्ञानी भये ॥ २२०० केवलज्ञानी भये ॥ ६६८ चवदे पूर्वधारी हुये ॥ १ लाख ८३ हजार श्रावक भये ॥ ३७०००० श्राविका हुई, इत्यादिक बहुतसे जीवोंका उद्धार करके, अंतसमें समेतसिखरजी पर्वतऊपर, ५०० साधुवोंकेसाथ १ मासका अनशन कीया। काउसग्ग मुद्राइं, आतमगुणके ध्यानसें, सर्वकर्मोकों खपायके, मिति फागुणसुदि १२ के दिन, ५५ हजार वर्षको आयुष्यमान पूरो करके, सिद्धि स्थानकों प्राप्ति भये। शासनदेव कुवेरयक्ष। शासनदेवी धरणप्रिया। देवगण। अश्वयोनि। मेषराशि। अंतरमान ५४०००० वर्ष, सम्यक्तपायेवाद तीसरे भवमें मोक्ष गया ॥

॥ इति १९ मा श्री मल्लिनाथस्वामी अधिकारः ॥ १९ ॥

॥ अथ २० मा श्री मुनिसुव्रतस्वामी अधिकारः ॥

राजगृही नामा नगरीमें, हरिवंशी, सुमित्र नामें राजा हुवा (तिसके) पद्मावती नामे पट्टराणी भई। जिसकी कूखमे, अपराजित नामा अनुत्तर विमानसें चवके, मिति श्रावण सुदि १५ के दिन, भगवान् उत्पन्न भया। तव मातायें गजादि अग्नि शिखापर्यंत, १४ स्वप्ना प्रगटपणें मुखमे प्रवेश कर्त्ता हुवा देखा, पीछे सर्व दिशा सुभिक्षसमें, ज्येष्ट वदि ८ के दिन, श्रवण नक्षत्रे, जन्म कल्याणक हुवा (उस वखत) ५६ दिशा कुमारीयों मिलके, सूतिका महोच्छव कीया (पीछे) ६४ इंद्र, मेरु पर्वतपर भगवान् कों ले जायके, जन्म महोच्छव कीया। तिस

पीछे, सुमित्र राजायें १० दिवसपर्यंत, वडो जन्म महोच्छव करके, सर्व न्याती गोती प्रजागणकों मनसा भोजन करायके, सर्वके, सन्मुख, मुनिसुव्रत कुमर नाम स्थापन कीया। (नाम स्थापनका यह हेतु हे) कि भगवान् गर्भमे स्थित हुवा, तव माता मुनिकी तरे, भले व्रतवाली होती भई (इस हेतुसें) मुनिसुव्रत नाम दीया। कच्छपके लंछनयुक्त। श्यामवर्ण, शरीर प्रमाण २० धनुप हुवा। ३ ज्ञान सहित, महा तेजस्वी, १००८ लक्षणालंकृत, भोगावली कर्म निर्जरार्थे, विवाह करके, क्रमसें राज्यपद धारण कीया। पीछे अवसर आये, लोकांतिक वचनसें, मिति फागुण शुदि १२ के दिन, राजगृही नगरीमे, छठ तप करके, चंपेका वृक्षके नीचे, १००० पुरुषोंकेसाथ, दीक्षा ग्रहण करी (उस वखत) चोथो मनपर्यव ज्ञान उत्पन्न भयो। प्रथम छठ को पारणो, ब्रह्मदत्तके घरे, परमान्न क्षीरसें हुवा। ११ मास छद्मस्थपणें विहार करके, फिर राजगृही नगरीमे आये। वहां छठ तप सहित, फागुण वदि १२ के दिन, लोकालोक प्रकाशक, केवल, ज्ञान उत्पन्न हुवा (उस वखत) चतुर्निकाय देवगणका कीया हुवा समोसरणमे, १२ परिपदाके सन्मुख, भगवान् धर्मोपदेश देके, चतुर्विध संघकी स्थापना करी। भगवानके ३० हजार सर्व साधु भये (जिसमे) मल्लि प्रमुख १८ गणधर हुये पुष्पवती प्रमुख ५० हजार सर्व साध्वी भई ॥ २००० वैक्रिय लब्धिवत भये ॥ १२०० वादी विरुद धारक भये ॥ १८०० अवधि ज्ञानी भये ॥ १५०० मनपर्यव ज्ञानी भये ॥ १८०० केव-

लज्ञानी भये ॥ ५०० चवदे पूर्वधारी भये ॥ १ लाख ७२ हजार श्रावक भये ॥ ३ लाख ५० हजार श्राविका भई (इत्यादिक) बहुतसे जीवोंका उद्धार करके, अंतसमें समेत शिखरजी पर्वतऊपर, १००० साधुवोंके साथ, १ मासका अनशन कीया ॥ काउसग्ग मुद्राइं, आत्मगुणके ध्यानसें, सर्व कर्मोंकों खपायके, मिति ज्येष्ट वदि ९ के दिन, ३० हजार वर्षको आयुष्य मान पूरो करके, सिद्धि स्थानकों प्राप्ति भये। शासनदेव वरुण यक्ष। शासनदेवी नरदत्ता । देवगण । वानर योनि मकर राशि। अंतरमान ६ लाख वर्ष। सम्यक्त पायेबाद, तीसरे भवमें मोक्षगये॥ इणोकेवारे रामचंद्र लक्ष्मण ८ मां बलदेव वासुदेव रावणप्रति वासुदेव हुवा ॥

॥इति५५ बोल गर्भित २० माश्री मुनि सुव्रतस्वामी अधिकारः२०॥

~ ॥ अथ २१ मा श्री नमिनाथस्वामी अधिकारः ॥

मथुरा नामा नगरीमे इक्ष्वाकुवंशी, विजय नामा राजा हुवा तिसके वप्रा नामें पट्टराणी भई। जिसकी कूखमें, प्राणत नामा देव लोकसे चवके, मिति आशोज सुदि १५ के दिन, भगवान् उत्पन्न भया। (तब) माताये गजादि अग्नि शिखापर्यंत, १४ स्वप्ना प्रगटपणें मुखमें प्रवेश कर्त्ता हुवा देखा (पीछे) सर्व दिशा सुभिक्षसमे, मिति श्रावण वदि ८ के दिन, अश्विनी नक्षत्रे जन्मकल्याणक हुवा (उसीवखत) ५६ दिशा कुमारीयों मिलके, सूतिका महोच्छव कीया (पीछे) ६४ इंद्र मेरु पर्वतपर भगवानकों ले जायके जन्म महोच्छव कीया (तिस पीछे) विजय

राजायें १० दिवसपर्यंत मोटो जन्म महोच्छव करके, सर्व न्याती गोती प्रजा गणकों मनसा भोजन करायके, सर्वके सन्मुख, श्री नमीनाथकुमर नाम स्थापन कीया (नाम स्थापनका यह हेतु हे कि) भगवान् माताके गर्भमें आये, तब वैरी राजायोंनेभी नमस्कार करा (इस कारणसें) नमी कुमर नाम दीया । कमलका लंछनयुक्त । पीतवर्ण । शरीरका प्रमाण १५ धनुष हुवा । ३ ज्ञान सहित, महा तेजस्वी. १००८ लक्षणालंकृत, भोगावली कर्म निर्जरार्थे, विवाह करके, राज्यपद धारन किया । पीछे अवसर आये, लोकातिक देवताके वचनसें, मिति आपाढ वदि ९ के दिन, मथुरा नगरीमें छठ तप करके, १ हजार पुरुषोंकेसाथ, वकुल वृक्षके नीचे, दीक्षा ग्रहण करी । उस वखत चोथो मन पर्यव ज्ञान उत्पन्न भयो । प्रथम छठको पारणो, दिन्न कुमारके घरे, परमान्न क्षीरसें हुवो । ६ मास छद्मस्थपणे विहार करके फिर मथुरा नगरीमें आये । वहां छठतप सहित, मिगसर सुदि ११ के दिन, लोकालोक प्रकाशक, केवल ज्ञान उत्पन्न हुवा (उसवखत) चतुर्निकायदेवगणका कीया हुवा समोसरणमे, १२ परिषदाके सन्मुख भगवान् धर्मोपदेश देके चतुर्विध संघकी स्थापना करी । भगवान्के २० हजार सर्व साधु भये (जिसमे) शुभप्रमुख १७ गणधर हुये । अनिला प्रमुख ४१ हजार सर्व साध्वी भई ॥ ५००० वैक्रियलब्धिवंत भये ॥ १००० वादी विरुद्ध धारक भये ॥ १६०० अवधि ज्ञानी भये १२५० मनपर्यव ज्ञानी भये ॥ १६०० केवल ज्ञानीभये ॥ ४५० चवदे पूर्वधारीभये ॥ १ लाख ७० हजार श्रावक भये ॥ ३ लाख

४८ हजार श्राविका हुई (इत्यादिक) बहुतसे जीवोंका उद्धार करके, अंतसमें समेतशिखरजी पर्वतऊपर १००० साधुवोंके साथ १ मासका अनशनकीया । काउसग्ग मुद्राइं आत्मगुणके ध्यानसे, सर्व कर्मोंकों खपायके, मिति वैशाखवदि १० के दिन, १० हजार वर्षको आयुष्यमान पूरो करके, सिद्धि स्थानकों प्राप्त भये । शासनदेव भृकुटीयक्ष शासनदेवी गंधारी । देवगण । अश्वयोनि । मेषराशि । अंतरमान ५००००० वर्ष, सम्यक्त पायेबाद तीसरेभवमें मोक्षगये ॥ इनोंके वारे हरिषेणनामा १० मा चक्रवर्ति हुवा ॥ और २१ मा (तथा) २२ मा तीर्थकरके अंतरमें, ११ मा जयनामा चक्रवर्त्ति हुआ ॥ इति २१ मा श्री नमिनाथस्वामी अधिकार संपूर्णम् ॥

॥ अथ २२ मा श्री नेमिनाथस्वामी अधिकारः ।

सोरीपुरनामा नगरमें, हरिवंशी, समुद्रविजयनामें राजा हुवा तिसके शिवादेवी नामें पट्टराणी । जिसकी कूखमें, अपराजित-नामें देव लोकसें चवके, मिति कार्त्तिकवदि १२ के दिन, भग-वान् उत्पन्न भया । तब मातायें गजादि अग्निशिखापर्यंत १४ स्वप्ना प्रगटपणें मुखमें प्रवेशकर्त्ता देखा । पीछे सर्व दिशा सुभि-क्षसमें, मिति श्रावणसुदि, ५ के दिन, चित्रा नक्षत्रे, जन्मकल्याणक हुवा (उसीनरात) ५६ दिशा कुमारीयों मिलके सूतिका महो-च्छव कीया (पीछे) ६४ इंद्र मेरुपर्वतपर भगवानकों लेजायके जन्ममहोच्छव कीया । तिस पीछे समुद्रविजय राजायें १० दिन पर्यंत मोंटो जन्ममहोच्छव करके सर्व न्याती गोती प्रजागणकों

मनसा भोजन कराके, सर्वके सन्मुख, श्री अरिष्टनेमि कुमर नाम स्थापन कीया (नाम स्थापनका यह हेतु है कि) भगवान् जब गर्भमे आया, तब मातानें अरिष्ट रत्नमय वडा नेमी (चक्रधारा) आकाशमे उत्पन्न स्वप्नमें देखा। तिस कारणसें अरिष्टनेमि नाम दिया। शंखके लंछनयुक्त, श्यामवर्ण, शरीरका प्रमाण १० धनुष हुवा। ३ ज्ञानसहित, महातेजस्वी, १००८ लक्षणालंकृत विवाहकिये विगर कुमारअवस्थामें रहै (पीछे) काकेका वेटा श्रीकृष्ण, तथा बलभद्रनें बहुत हठ करके, मनविगर राजीमतीके साथ विवाह ठहराया। जब जान लेके भगवान् सुसराके घरे तोरणकेपास आये। उहां मारणके निमत्त बहुतसे जानवर वाडा पींजरामें भरे हुवे देखे। तब दया करके सर्व जीवां को बंधमेंसे छोडाए। और आप पीछा फिरके दिक्षा लेनेकों तैयार भए, फेर लोकांतिक देवताके वचनसें, मिति श्रावणसुदि ६ के दिन, द्वारका नगरीके बाहिर गिरनारपर्वतपर, छठ तप करके, वेडसवृक्षके नीचे, १००० पुरुषोंके साथ, दीक्षा ग्रहण करी (उसवखत) चोथो मनपर्यव ज्ञान उत्पन्न भयो। प्रथम छठको पारणो, वरदिन्नके घरे, परमान्नक्षीरसें हुवो। ५४ दिन छद्मस्थपणे विहार करके, फिर गिरनार पर्वतपर आये वहां अठ्ठम तपसहित, आशोजवदि अमावसकेदिन, लोकालोक प्रकाशक केवलज्ञान उत्पन्नभया। उसवखत चतुर्निकाय देवगणका कीया भया समोसरणमे, १२ परिषदाके सन्मुख, भगवान धर्मोपदेश देके, चतुर्विध संघकी स्थापना करी। भगवानके १८ हजार सर्व साधुभये (जिसमे)

वरदत्त प्रमुख १८ गणधर पदधारक हुये । यक्षणी प्रमुख ४० हजार सर्व साध्वी हुई ॥ १५०० वैक्रियलब्धिवंत भये ॥ ८०० वादीविरुदपद धारक भये ॥ १५०० अवधि ज्ञानी भये ॥ १००० मनपर्यव ज्ञानी भये ॥ १५०० केवल ज्ञानी भये ॥ ४०० चवदे पूर्वधारी भये ॥ १ लाख ६४ हजार श्रावक भये ॥ ३ लाख ३६ हजार श्राविका भई (इत्यादिक वहुतसे जीवोंका उद्धार करके अंतसमें गिरनारजी पर्वतपर, ५३६ साधुवोंकेसाथ १ मासका अनशन कीया । पद्मासन मुद्राइं, आत्मगुणके ध्यानसें, सर्व कर्मांकूं खपायके, मिति आपाढ सुदि ८ के दिन १ हजार वर्षको आयुष्यमान पूरण करके, सिद्धि स्थानकों प्राप्ति भये । शासनदेव गोमेध यक्ष । शासनदेवी अंबिका । राक्षस गण । महिप योनि । कन्या राशि । अंतरमान ८३ हजार ६ से ५० वर्ष, सम्यक्त पायेवाद नवमे भवमें मोक्ष गये ॥ इनोके वारें, इनोंके चाचेका वेटा, श्रीकृष्ण नवमा वासुदेव, तथा वलभद्र वलदेव भया ॥ और वाईशमा भगवान पीछे, तेवीसमा भगवान पहले इस अंतरमें १२ मा ब्रह्मदत्त नामे चक्रवर्त्ति भया ॥ इति ॥

॥ अथ २३ मा श्री पार्श्वनाथस्वामी अधिकारः ॥

वणारसी नामा नगरीमें, इक्ष्वाकुवंशी, अश्वसेन नामे राजा हुवा । जिसके वामा देवीनामे पट्टराणी, जिसकी कूखमे, प्राणतनामा देवलोकसें चवके, मिति चैत्र वदि ४ के दिन, भगवान् उत्पन्न भये । तव मातायें, गजादि अग्निशिखा पर्यंत, १४ स्वप्न प्रगटपणें मुखमें प्रवेश कर्त्ता देखा । पीछे सर्व दिशा सुभिक्षसमें,

मिति पोष वदि १० के दिन, विशाखा नक्षत्रे जन्म कल्याणक हुवा। उसी वखत ५६ दिशा कुमारीयों मिलके सूतिका महोच्छव कीया। पीछे ६४ इंद्र, मेरु पर्वतपर भगवानकों ले जायके, जन्म महोच्छव कीया। तिस पीछे अश्वसेन राजाये १० दिवसपर्यंत मोटो महोच्छव करके, सर्व न्याती गोती प्रजागणकों, मनसा भोजन करायके सर्वके सन्मुख श्री पार्श्व कुमर नाम स्थापन कीया। नाम स्थापनाका यह हेतु हे, कि भगवान जब गर्भमे आया, तब मातायें अंधारी रात्रीकों पासमे सर्प जाता हुवा देखा, इससें माता पितायें विचारा कि ए गर्भका प्रभाव है॥ इस कारणसे पार्श्वनाथ नाम दिया। सर्पका लंछनयुक्त, नीलवर्ण, शरीरका प्रमाण ९ हाथ हुवा। ३ ज्ञान सहित, महा तेजस्वी, १००८ लक्षणालंकृत, भोगावली कर्म निर्जरार्थे विवाह कीया। राज्यपद नहिं धारण करके, लोकांतिक देवताके वचनसे, मिति पोष वदि ११ के दिन, वणारसी नगरीमें, छठ तप करके, धातकी वृक्षके नीचे, ३०० पुरुषोंकेसाथ, दीक्षा ग्रहणकरी। उस वखत चोथो मनपर्यव ज्ञान उत्पन्न भयो। प्रथम छठको पारणो, धन्नाके घरे, परमान्न क्षीरसे हुवो। ८४ दिन छद्मस्थपणें विहार करके फिर वणारसी नगरीमे आये, वहा अट्ठम तपसहित, चैत्रवदि ४ के दिन, लोकालोक प्रकाशक केवल ज्ञान केवल दर्शन उत्पन्न भया। उस वखत, चतुर्निकाय देवगणका कीया हुवा, समोसरणमें, १२ परिषदाके सन्मुख, भगवान् धर्मोपदेश देके चतुर्विध संघकी स्थापना करी। भगवान्के १६ हजार सर्व साधु भये। जिसमें, आर्यदिन्न प्रमुख १० गणधर

पद धारक हुये । पुष्पचूडा प्रमुख ३८ हजार सर्व साध्वी भई ॥ ११०० वैक्रिय लब्धिवंत भये ॥ ६०० वादी विरुद पद धारक भये ॥ १००० अवधि ज्ञानी भये ॥ ७५० मनपर्यव ज्ञानी भये ॥ १००० केवल ज्ञानी भये ॥ ३५० चवदे पूर्वधारी भये ॥ एक लाख ६४ हजार श्रावक भये ॥ ३ लाख ३९ हजार, श्राविका भई ॥ इत्यादिक वहुतसे जीवोंका उद्धार करके, अंतसमें समेत शिखरजी पर्वतऊपर, १ मासका अनशन कीया । काउसग्ग मुद्राइं आत्मगुणके ध्यानसें, सर्व कर्माकों खपायके, मिति श्रावण सुदि ८ के दिन, ३३ साधुवोंकेसाथ, १०० वर्षका आयुष्य मान पूरण करके, सिद्धि स्थानकों प्राप्त भए ॥ शासनदेव पार्श्व यक्ष, शासन-देवी पद्मावती, राक्षस गण, मृग योनी, तुल राशि, अंतरमान २५० वर्ष, सम्यक्त पायेवाद १० में भवे मोक्ष गया ॥ इति २३ मा श्री पार्श्वनाथ स्वामीका ५५ बोल गर्भित अधिकारः ॥

॥ अथ २४ मा श्री वर्द्धमानस्वामी अधिकारः ॥

ब्राह्मण कुंडग्रामनामा नगरमें, कोडालश गोत्रका धरणहार ऋषभदत्त नामे ब्राह्मण हुवा, जिसके देवानंदानामे भार्या भई, जिसकी कूखमे प्राणतनामा देवलोकसें चवके, मिति आशाढ सुद ६ के दिन उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रकेविषे भगवान् उत्पन्न भया । तब देवानंदा ब्राह्मणीयें चउदे स्वप्न देखा (पीछे) सौधर्म इंद्र ब्राह्मणोंके कुलमें पूर्वकर्मकेयोग भगवान् कों उत्पन्न हुवा देखके, आश्चर्यभूत संबंध हुवा जानके, अपना आग्याकारी हरणेगमेषी देवताकों भेजा, सो हरणेगमेषी देवता आयके देवमाया करके

देवानदाकी कूखसें भगवान्कों करसंपुटमें ग्रहण करके, क्षत्रियकुंड ग्रामानगरकेविषे, इक्ष्वाकुवंशी, सिद्धार्थनामें राजा, जिसके त्रिशला नामे पट्टराणी, जिसकी कूखमें मिति आशोजवद १३ के दिन अवतारण किया । और त्रिशला माताकी कूखसें पुत्रीको अपहरण करके, देवानंदा ब्राह्मणीकी कूखमे संक्रामण किया । इसीतरे हरणेगमेषी देवता इंद्रकी आग्या करके अपने स्थानक गया (और) जिसवखत देवतानें देवानदाकी कूखसें त्रिशला क्षत्रियाणीकी कूखमे संक्रामण किया, तब देवानदायें तो अपना १४ स्वप्न त्रिशला क्षत्रियाणीकेपास जाता हुवा देखा, और त्रिशला क्षत्रियाणीनें प्रगटपणें १४ स्वप्न मुखमे प्रवेश होता देखा । पीछे सर्व दिशा सुभिक्षसमे, मिति चैत्र शुदि १३ के दिन, उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रे, जन्म कल्याणक हुवा । उसी वखत, ५६ दिशा कुमारीयों मिलके सूतिकामहोच्छव कीया । पीछे ६४ इद्र मेरु पर्वतपर भगवानकों ले जायके, जन्म महोच्छव कीया । तिस पीछे सिद्धार्थ राजाये १० दिवसपर्यंत मोटो महोच्छव करके, सर्व न्याती गोती प्रजागणको, मनसा भोजन करायके, सर्वके सन्मुख, श्री वर्द्धमान कुमर नाम स्थापन कीया । नाम स्थापनका यह हेतु हे, कि जब भगवान् गर्भमे आया, तब सिद्धार्थ राजा धनसें राज्यसें परिवारसे बहुत वधता रहा, इससे वर्द्धमान कुमर नामदिया । तथा इंद्रादिक देवतावोंनें मेरु पर्वतपर भगवानका जन्म महोच्छव करनेके समय अनंत बली देखके, महावीर नाम स्थापन किया ॥ केशरीसिंह लंछन, पीतवर्ण, शरीरका प्रमाण ७ हाथ हुवा तीन

ज्ञान सहित, महा तेजखी, १००८ लक्षणालंकृत, भोगावली कर्म निर्जरार्थे, विवाह कीया। राज्यपद धारण न किया। अवसर आये, लोकांतिक देवताके वचनसें, मिति मिगशर वदि १० के दिन, क्षत्रीकुंड नामा नगरमें, छठ तप करके, साल वृक्षके नीचे, एकाकीपणें दीक्षा ग्रहण करी, उस वखत चोथो मनपर्यव ज्ञान 'उत्पन्न' भयो। प्रथम छठको पारणो, वहुल ब्राह्मणके घरे, परमान्न क्षीरसें हुवो। १२ वर्ष छद्मस्थपणें विहार करके, ऋजुवालका नदीपर आये, वहां छठ तप सहित, वैशाख सुदि १० के दिन, लोकालोक प्रकाशक, केवल ज्ञान उत्पन्न भया। उस वखत चतुर्निकाय देवगणका कीया भया समोसरणमें, देशना दीया ११ के दिन पावापूरिवाहिर १२ परिपदाके सन्मुख, भगवान् धर्मोपदेश देके, चतुर्विध संघकी स्थापना करी। भगवान्के सर्व साधु १४ हजार भये। जिसमे इंद्रभूति प्रमुख ११ गणधर पद धारक भये ॥ चंदनवाला प्रमुख ३६००० सर्व साध्वी भई ॥ ७०० वैक्रिय लब्धिवंत भये ॥ ४०० वादी विरुद धारक भये ॥ १३०० अवधि ज्ञानी भये ॥ ५०० मनपर्यव ज्ञानी भये ॥ ७०० केवल ज्ञानी भये ॥ ३०० चवदे पूर्वधारी भये ॥ १ लाख ५९ हजार श्रावक भये ॥ ३ लाख १८००० श्राविका भई ॥ इत्यादिक वहुतसे जीवोंका उद्धार करके, अंतसमे पावापुरी नगरीमें, छठ तपका अनशन कीया ॥ पद्मासन मुद्राइं, आत्मगुणकेध्यानसें, सर्व कर्माकों खपायके, मिति कार्त्तिकवदि अमावशके दिन, एकाकी,

७२ वर्षका आयुष्यमान पूरण करके, सिद्धि स्थानकों प्राप्त भये शासनदेव ब्रह्मशाति यक्ष । शासनदेवी सिद्धायिका । मानव गण । महिषयोनि । कन्या राशि । सम्यक्त पायेवाद २७ मे भव मोक्ष गये श्री महावीरस्वामी मोक्ष गये पीछे, तीन वर्ष, साढी आठ महिना गए, चौथा आरा उतरा और पांचमा आरा सरू हुवा ॥

इति २४ श्री वर्द्धमान स्वामीका ५५ बोल गर्भित अधिकारः इसी तरे चोवीश भगवान्‌का नाम दृष्टात कहा ॥ अब २४ भगवान्‌के, १२ चक्रवर्त्ति, ९ वासुदेव, ९ बलदेव, ९ प्रति वासुदेवादि बडे २ उत्तम पुरष मोक्षगामी राजादिक भए, जिन सर्वका नाम मात्र दृष्टात इहा लिखतां हुं ॥

अथ १२ चक्रवर्त्ति अधिकारः ॥

॥ पहला श्री भरत चक्रवर्त्तिः ॥

विनीता नगरीमे प्रथम भगवान् श्री ऋषभदेव नामें राजा हुवा जिनोंके सुमंगला नामे राणी, जिसका पुत्र भरत नामे पहला चक्रवर्त्ति हुवा इनके ६४ हजार स्त्रीयो हुई, जिसमें मुख्य स्त्रीरत सुदामा नामें भई । जब चक्ररत्नादिक १४ रत्न उत्पन्न हुवा, तब इस भरत क्षेत्रके छ खंड मे राज्य किया । अंतमे आरीसा महलमें, शुद्ध भावनासे केवलग्यान पायके चारित्र ग्रहण करके, ८४ पूर्व लाख वरषको आयुष्य पूरण करके मोक्षकों प्राप्त हुवा ॥ १ ॥ इति ॥

॥ दूसरा सगर चक्रवर्त्तिः ॥

अयोध्या नगरीमें, सुमित्र नामें राजा हुवा, जिसके जसवती नामें पट्टराणी, जिनके पुत्र सगर नामें दूसरा चक्रवर्त्ति हुवा। इनके भद्रा नामें स्त्रीरत्न भई। जब चक्ररत्नादिक, १४ रत्न उत्पन्न हुए, तब भरत क्षेत्रके ६ खंडकों साधके राज्य किया। अतमें चारित्र ग्रहण करकें ७२ पूर्व लाख वरपको आयुष्य पूरण करके, सिद्धि स्थानकों प्राप्त हुवा ॥

तीसरा मघवा नामें चक्रवर्त्तिः ॥

सावत्थी नगरीमे, समुद्रविजय नामें राजा, जिसके सुभद्रवती नामे पट्टराणी हुई, जिनके पुत्र मघवानामें तीसरा चक्रवर्त्ति हुवा। इनके सुभद्रानामे स्त्रीरत हुई। अंतमें शुभभावसे चारित्र लेके सर्व पांच लाख वरपको आयुष्य पूरण करके देवलोकको प्राप्त हुवा ॥ इति ॥ ३ ॥

॥ चोथा सनत्कुमारनामे चक्रवर्त्तिः ॥

हथनापुरनामा नगरमे, अश्वसेननामे राजा, जिसके सहदेवीनामें पट्टराणी, जिनकेपुत्र सनत्कुमार नामें चोथा चक्रवर्त्ति हुवा। इनके जया नामे स्त्रीरत्न भई। ६ खंडका राज्य किया, अतमे शुभभावसें चारित्र ग्रहण करके, तीन लाख वरपका आयुष्य पूर्ण करके देवलोककों प्राप्त हुवा ॥ इति ॥

॥ अथ पांचमा, श्री शांतिनाथ चक्रवर्त्तिः ॥

हथनापुरनामा नगरमें, विश्वसेननामे राजा, जिसके अचिरानामे

पट्टराणी, जिनकेपुत्र शोलमा भगवान्, पांचमां चक्रवर्त्ति श्री शातिनाथ स्वामी हुवा, इनके विजयानामे स्त्रीरत्न भई, छ खंडका राज्य किया, अवसर आये चारित्र लेके केवल ग्यानपायके सर्व एक लाख वरपको आयुष्य पूरण करके सिद्धिस्थानकों प्राप्त हुवा ॥ इति ॥ ५ ॥

॥ ६ ठा, श्री कुंथुनाथचक्रवर्त्तिः ॥

हथनापुरनामा नगरमे, सूरनामे राजा, जिसके श्रीनामें पट्टराणी जिनके पुत्र १७ मा भगवान्, छठा चक्रवर्त्ति श्री कुथनाथस्वामी हुवा। इनके कन्हसीरीनामे स्त्रीरत्न हुई, छ खंडका राज्य किया। अवसर आये चारित्र लेके केवल ग्यान पायके, ८५ हजार वरपका आयुष्य पूरन करके मोक्षकों प्राप्त हुवा ॥ इति ॥ ६ ॥

॥ ७ मा श्री अरनाथनामे चक्रवर्त्तिः ॥

हथनापुरनामा नगरमे, सुदर्शननामे राजा, जिसके देवीनामे पट्टराणी, जिनकेपुत्र १८ मा भगवान्, ७ मा चक्रवर्त्ति श्री अरनाथस्वामी हुवा। इनके पद्मश्रीनामे स्त्रीरत्न हुई। ६ खडमें राज्य किया, अंतमे चारित्र लेके केवल ग्यान पायके ६० हजार वरपका आयुष्य पूरण करके मोक्षको प्राप्त हुवा ॥ इति ॥ ७ ॥

॥ ८ मा सुभूमनामें चक्रवर्त्तिः ॥

हथनापुरनामा नगरमे, कीर्त्तिवीर्यनामे राजा जिसके तारानामे पट्टराणी, जिनके पुत्र सुभूमनामें आठमा चक्रवर्त्ति हुवा। इनके सूरश्रीनामे स्त्रीरत्न हुई। छ खंडका राज्य किया। अंतमें ३०

हजार वरपका आयुष्य पूरण करके सातमी नरक पृथ्वीमें उत्पन्न हुवा ॥ इति ॥ ८ ॥

॥ ९ मा पद्मनामे चक्रवर्त्तिः ॥

वणारसी नामें नगरीमें, पद्मोत्तर नामा राजा, जिसके ज्वाला नामें पट्टराणी, जिसके पुत्र महापद्म नामें नवमा चक्रवर्त्तिं हुवा। इनके वसुंधरा नामें स्त्रीरत्न भई। अतमें १९ हजार वरपको आयुष्य पूरण करके मोक्षको प्राप्त हुवा ॥ इति ॥ ९ ॥

॥ १० मा हरिषेण नामें चक्रवर्त्तिः ॥

कंपिलपुर नामा नगरमे, हरि नामें राजा, जिसके मेरा नामें पट्टराणी, जिनके पुत्र हरिषेण नामे दशमा चक्रवर्त्ति हुवा। इनके देवी नामे स्त्रीरत्न भई। अतमें दश हजार वरपको आयुष्य पूरण करके सिद्धि स्थानकों प्राप्त हुवा ॥ इति ॥ १० ॥

११ मा, जय नामें चक्रवर्त्तिः ॥

राजगृही नामें नगरीमे, विजय नामे राजा, जिसके विप्रा नामें पट्टराणी, जिसके पुत्र जय नामे इग्यारमा चक्रवर्त्ति हुवा। इनके वलच्छीनामे स्त्रीरत्न भई। अतमे तीन हजार वरपको आयुष्य पूरण करके सिद्धि स्थानकों प्राप्त हुवा ॥ इति ॥ ११ ॥

१२ मा ब्रह्मदत्त नामें चक्रवर्त्तिः ॥

कंपिलपुर नामा नगरमे, ब्रह्म नामें राजा, जिसके चूलणी नामें पट्टराणी, जिसके पुत्र ब्रह्मदत्त नामे वारमा चक्रवर्त्ति हुवा। इनके कुरमती नामे स्त्रीरत्न भई। अतमें ७ से वरपको, आयुष्य

पूरण करके सातमी नरक पृथ्वीमें नारकी पणें उत्पन्न हुवा ॥ इति ॥ १२ ॥

॥ १२ चक्रवर्त्ति समानशुद्धी अधिकारः ॥

ये १२ चक्रवर्त्ति काश्यपगोत्रमे हुये, इन सर्वका कंचनसमान शरीरकावर्ण हुवा। इस भरतक्षेत्रका ६ खंडमें राज्य किया। नवनिधान १४ रत्न, १६ हजार यक्ष, ३२ हजार मुगट बद्धराजा, ६४ हजार अतेउरी, एकेक राणीसाथे दोदो वरागना होय, तव एक लाख ५२ हजार वरागना, ८४ लाख हाथी, ८४ लाख घोडा, ८४ लाख रथ, ९६ कोटि प्यादा। ३२ हजार नाटक, ३२ हजार वडादेश, ३२ हजार वेलाउल। १४ हजार जलपथ। २१ हजार सन्निवेस। १६ हजार राजधानी ५६ अतरद्वीप। ९९ हजार द्रोणमुख। ९६ कोटि ग्राम। ४९ हजार उद्यान। १८ हजार श्रेणि प्रश्रेणी। ८० हजार पडित। ७ कोडि कौटंबिक। १६ हजार आगर। ३२ कोडि कुल। १४ हजार महामंत्रवी, १४ हजार बुद्धिनिधान। १६ हजार म्लेच्छराज्य। २४ हजार कर्पट। २४ हजार सवाधन। १६ हजार रत्नाकर। २४ हजार खेडा सुन्य। १६ हजार द्वीप। ४८ हजार पाटण। ५० कोडि दीवडिया। ८४ लाख महानिसाण। १० कोडि धजापताका। ३६ कोडि अगमर्दक। ३६ कोडि आभरण धारक। ३६ कोडि सूपकार। तीन लाख भोजन थानक। एक कोडि गोकुल। तीन कोडि हल। ३६० सुथार। ९९ कोडि माडंविक ९९ कोडि दासीदास। ९९ लाख अगरक्षक। ९९ कोडि भोई। ९९ कोडि

कावडिया । ९९ कोडि मल्लरिया । ९९ कोडि थइयायत । ९९ कोडि पटतारक । ९९ कोडि मीठावोला, १ कोडि ८० हजार रासभ । १२ कोडि सुखासण । ६० कोंडि तंवोली, ५० कोडि पखालिया ॥ इत्यादि अनेक प्रकारकी शुद्धी सर्व चक्रवर्त्तिके समान होती है ॥ इति ॥

अथ नववासुदेव, वलदेवका दृष्टांत लि० ॥

॥ १ तृपृष्ट वासुदेवः १ अचल वलदेवः ॥

११ मा भगवान् श्री श्रेयांसनाथ स्वामीके वारे, शोभनपुरनामा नगरमें, प्रजापतिनामें राजा हुवा, जिसके मृगावतीनामें पट्टराणी, जिमकी कूखसें सातमादेवलोकसे आयके, ७ स्वप्नासूचित तृपृष्टनामें पुत्र हुवा ॥ और दूसरी भद्रानामें राणी, जिसकी कूखसें ४ स्वप्ना सूचित अचलनामे पुत्र हुवा । ये क्रमसें वधता थका अपना वैरी अश्वग्रीव प्रतिवासुदेवकों युद्धमें मारके, पहला वासुदेव हुवा । चक्रवर्तिसें आधा अर्थात् इस भरतक्षेत्रका तीन खंडमें राज्य किया । नीलेवर्ण, देहमान ८० धनुपका हुवा, अतमें ८४ लाख वरपका आयुष्य पूरण करके तृपृष्ट वासुदेव सातमी नरक पृथ्वीमें गया । और वलदेवका उज्वलवर्ण, शरीर प्रमाण ८० धनुष हुवा, अंतमें भाईका मरण देख वैराग्यसें चारित्र ग्रहण किया, क्रमसें केवलज्ञान पायके ८५ लाख वरपका आयुष्य पूरण करके मोक्ष गया ॥ इति ॥ १ ॥

॥ द्विपृष्ट वासुदेवः, २ विजय बलदेवः ॥

१२ मा तीर्थकरके वारे, द्वारामतीनामा नगरमे, बंभनामें राजा, जिसके ऊमानामे पट्टराणी, जिसकी कूखमे १० मा देवलोकसें आयके, ७ स्वप्ना सूचित, द्विपृष्टनामे पुत्र हुवा ॥ और दूसरी सुभद्रानामें राणी, जिसकी कूखसें ४ स्वप्ना सूचित विजय नामे पुत्र हुवा। ये क्रमसें युवान अवस्थाकों प्राप्त हुवा, तब अपना वैरी तारकनामे प्रतिवासुदेवकों मारके, दूसरा वासुदेव, बलदेव हुवा। तीन खंडमे राज्य किया, वासुदेवका नीला वर्ण, देहमान ७० धनुष हुवा। अंतमे ७२ लाख वरपका आयुष्य पूरण करके, छठी नरक पृथ्वीमे गया। और विजयबलदेवका उज्वलवर्ण, शरीरप्रमाण ७० धनुष हुवा, अंतमे शुद्धभावसें चारित्र लेके केवलज्ञान पायके ७२ लाख वरपको आयुष्य पूरण करके मोक्षमें गया ॥ इति ॥

॥ ३ स्वयंभुः वासुदेवः ३ भद्र बलदेवः ॥

१३ मा तीर्थकरके वारे, द्वारका नामा नगरीके विषे, रुद्र नामें राजा हुवा। जिसके पुहवी नामें पट्टराणी, जिसकी कूखसें, ६ ठा देवलोकसें आयके, ७ स्वप्ना सूचित स्वयप्रभू नामे पुत्र हुवा। और सुप्रभा राणीके ४ स्वप्ना सूचित भद्र नामका पुत्र भया। ये क्रमसें युवान अवस्थाको प्राप्त भया, तब अपना वैरी मेरुक नामें प्रति वासुदेवकों मारके, तीसरा वासुदेव बलदेव हुआ। इस भरत क्षेत्रके तीन खंडमें राज्य किया। वासुदेवका नीलावर्ण, देहमान ६० धनुष हुआ। अतमे ६० लाख वरपका आयुष्य

पूरण करके, छठी नरक पृथ्वीमें गया। और भद्र बलदेवका उज्वल वर्ण, शरीरप्रमाण ६० धनुषभया; अंतमें चारित्र अंगीकार करके, केवल ग्यान पायके, सर्व ६५ लाख वरषको आयुष्य पूरण करके मोक्ष गया॥ इति तीसरा वासुदेव, बलदेव दृष्टांतम्॥

॥ अथ ४ मा पुरषोत्तम वासुदेवः, सुप्रभु बलदेवः॥

१४ मा तीर्थकरके वारे, वारवई नामा नगरीमें, एक सोम नामें राजा हुआ। जिसके सीता नामें पट्टराणी, उसकी कूखसें ८ मा देव लोकसें आया हुवा, ७ स्वप्ना सूचित, पुरषोत्तम नामें पुत्र हुआ। और दुसरी सुदर्शना नामें राणी, जिसकी कूखसें ४ स्वप्ना सूचित सुप्रभु नामें पुत्र हुआ। ये जब युवान अवस्थाकों प्राप्त भया, तब अपना वैरी, मधु नामें प्रति वासुदेवको मारके, चोथा वासुदेव, बलदेव, इस भरत क्षेत्रमें हुआ। तीन खडमें अखंड राज्य किया। वासुदेवका नीलावर्ण, और शरीर प्रमाण ५० धनुषका हुवा। और अंतमें ३० लाख वरषको आयुष्य पूरण करके छठी पृथ्वीमें गया॥ और बलदेवका उज्वलवर्ण शरीर प्रमाण ५० धनुष हुवा। अंतमें ५५ लाख वरषको आयुष्य पूरण करके मोक्ष गया॥ इति चोथा वासुदेव, बलदेव, प्रति वासुदेव, दृष्टांतम्॥

॥ अथ ५ मा पुरषसिंह वासुदेवः, सुदर्शन बलदेवः॥

१५ मा तीर्थकरके वारे, अश्वपुरी नामा नगरीमें, शिव नामें राजा हुवा। जिसके अम्मा नामें पट्टराणी, उसकी कूखसें, चोथा देवलोकसें आया हुवा, ७ स्वप्ना सूचित, पुरषसिंह

नामे पुत्र हुवा । और दूसरी विजया नामें राणी, जिसकी कूखसें ४ स्वप्न सूचित, सुदर्शन नामें पुत्र हुवा । ये जब युवान अवस्थाकों प्राप्त हुवा । तब अपना वैरी निसुंभ नामा प्रतिवासुदेवको मारके पाचमा वासुदेव, बलदेव इस भरत क्षेत्रमे भया । तीनखंडमे राज्यकिया इसमें वासुदेवका नीला वर्ण, शरीरप्रमाण ४५ धनुष हुवा, अतमे १ लाख वरषका आयुष्य पूरण करके, छठी नरक पृथ्वीमे गया ॥ और बलदेवका उज्वलवर्ण, शरीर प्रमाण ४५ धनुष हुवा । अंतमें एक लाख ७० हजार वर्षको आयुष्य पूरण करके मौक्ष गया ॥ इति पाचमा वासुदेव, बलदेव, प्रति वासुदेव दृष्टांतम् ॥

अथ ६ पुरुषपुंडरीक वासु० आनदबलदेवः ॥

अठारमा उगणीसमा तीर्थंकरके अतरमें, चक्रपुरीनामा नगरीमे महाशिवनामे राजा, जिसके लक्ष्मीनामे पट्टराणी, उसकी कूखसे पांचमा देवलोकसें आया हुवा, सात स्वप्न सूचित, पुरुष पुडरीकनामे पुत्रहुवा । और दूसरी वैजयतीनामे राणी, उसकी कूखसे, चार स्वप्न सूचित आनद नामे पुत्र हुवा । ये दोनु जब युवान अवस्थाकों प्राप्त भये । तब अपना वैरी, बलीनामा छठा प्रतिवासुदेवको मारके छठा वासुदेव बलदेव हुये । तीन खंडमें राज्य किया । इसमे वासुदेवका नीलावर्ण, शरीरप्रमाण २९ धनुष हुवा । अतमे ६५ हजार वरषका आयुष्य पूरण करके, छठी नरक पृथ्वीमें गया और बलदेवका उज्वलवर्ण, शरीरप्रमाण २९ धनुष हुवा । अंतमें शुभभावसें चारित्र लेके, केवलग्यान

पायके, सर्व ८५ हजार वरपका आयुष्य पूरण करके सिद्धिगतिमें गया ॥ इति छठा वासुदेव बलदेव दृष्टांतम् ॥

अथ ७ मा दत्त वासुदेवः नंदन बलदेवः ॥

१८ मा तीर्थंकरके वारे, वणारसीनामा नगरीमें, अग्निसिंहनामें राजा हुवा। जिसके सेसवतीनामें पट्टराणी, उसकी कूखसें, पहला देवलोकसें आया हुवा, सात स्वमा सूचित दत्तनामे पुत्र हुवा। और दूसरी जयती नामें राणी जिसकी कूखसें चार स्वमा सूचित नंदननामे पुत्र हुआ, ये दोनुं जब युवान अवस्थाकों प्राप्त भये, तब अपना वैरी प्रह्लादनामा प्रतिवासुदेवकों चक्ररत्नसें मारके, सातमा वासुदेव बलदेव, हुये। तीन खंडमें राज्य किया ॥ इसमें वासुदेवका नीलावर्ण, सरीर २६ धनुष हुआ। अतमें ५६ हजार वरपका आयुष्य पूरण करके, पांचमी नरकपृथ्वीमें गया ॥ और-नंदन बलदेव, अपना भाईका मरण देखके, वैराग्यसें चारित्र ग्रहण किया। क्रमसें केवल ग्यान पायके सर्व ६५ हजार वरपका आयुष्य पूरण करके मोक्ष गया इति सातमा वासुदेव बलदेव दृष्टांतम् ॥

॥ ८ मा लक्ष्मणवासुदेवः, रामचंद्र बलदेवः ॥

२० मा तीर्थंकर श्री मुनिसुव्रत स्वामीकेवारे, अयोध्यानामा नगरीमें, दशरथनामे राजा हुवा, जिसके सुमित्रानामें पट्टराणी, उसकी कूखसे तीसरा देवलोकसें आया हुवा, सात स्वमा सूचित लक्ष्मणनामें पुत्र हुवा। और दूसरी अपराजिता नामें राणी जिसकी कूखसें चार स्वमा सूचित रामचंद्र नामें पुत्र हुवा। ये दोनुं जब

युवान अवस्थाकों प्राप्त भये । तब सीताकों अपहरण करनेवाला, अपना वैरी, लंकाका राजा, रावण प्रतिवासुदेवको मारके, आठमा वासुदेव बलदेव हुये । इस भरतक्षेत्रके ३ खडमें राज्य किया, इसमें लक्ष्मण वासुदेवका नीलावर्ण, सरीर प्रमाण १६ धनुपका हुवा । अतमे १२ हजार वरपका आयुष्य पूरण करके चोथी नरक पृथ्वीमे उत्पन्न भया । और रामचंद्र बलदेव, अपना भाईका मरण देखके, वैराग्यसें चारित्र ग्रहण किया । क्रमसें केवल ज्ञान पायके, सर्व १५ हजार वरपका आयुष्य पूरण करके, सिद्धगिरी पर्वत ऊपर मोक्ष गया ॥ इसी रामचंद्रजीकों बहुतसे हिदू लोक, अपना ईश्वरावतार मानते हैं ॥ और रावणको दशमुखवाला राक्षस कहते हे, तथा लोकीक रामायणमेभी रावणके १० मुख लिखे हैं, सो ठीक नही हैं, क्योंकि मनुष्यके स्वाभाविकही दशमुख कदापि नही होसक्ते हे, पद्मचरित्रादिकमे लिखा हे, कि रावणके वडे वडेरोंकी परपरासें, एक वडा नवमाणिकरत्नका हार चला आताथा, सो रावणनें बालावस्थासें अपने गलेमें पहनलिया था । और वे नौही माणक बहुत वडे थे । चार चार माणक दोनु स्कंध तरफ जडे हुये थे । एक बीचमेथा, ऐसें नवमुख माणकमे नया दीखता था, और एक रावणका असली मुख था इसवास्ते दशमुखवाला रावण कहा जाता हे । और रावणके समयसेंही हिमालयके पहाडमें बद्री नाथका तीर्थ उत्पन्न हुआ है । तिसकी उत्पत्ति जैन धर्मके शास्त्रोंसें ऐसे जानी जाती हे, कि यह असली पार्श्वनाथकी मूर्त्ति थी, तिसकाही नाम बद्रीनाथ रक्खागया है । इसका विशेप

अधिकार देखना होय तो पद्मचरित्र ओर पार्श्वनाथचरित्रसें जाण लैना ॥ इति आठमा वासुदेव, वलदेव दृष्टांतम् ॥

॥ अथ ९ मा कृष्ण वासुदेवः, वलभद्र, वलदेवः,

२२ मा श्री नेमिनाथ भगवान्के वारे, शोरीपुर नामा नगरमें, समुद्रविजयजी नामे राजा, जिसका छोटा भाई वसुदेवजी हुवा, जिसके पूर्व नियाणेके योगसें ७२ हजार स्त्रीयों हुई, जिसमें मुख्य देवकी नामें राणी, जिसकी कूखसें सातमा देवलोकसें आया हुवा सात स्वप्न सूचित कृष्ण नामें पुत्र हुवा। और दूसरी रोहणी नामें राणी। जिसकी कूखसें चार स्वप्न सूचित वलभद्र नामें पुत्र हुवा, इन दोनुंको कंसके भयसें वसुदेवजीने अपना गोकुलमें, नंद गोवालियेके घरे, कितनेक वरष छिपे हुवे रक्खे। जव ये दोनुं युवानावस्थाकों प्राप्त भये। तव प्रथम तो अपना भाइयोको मारनेंवाला, कंसको वैरी जानके मल्ल अखाडेमें आयके, कंसको मारा, जव यादव लोक वहुतसे भयको प्राप्त हुवे, कि कसका सुसरा जरासिंध प्रति वासुदेव अभी सर्वमे मोटा राजा है, इससें कदाच यादवोंको क्षय नहि कर देवै, इस भयसें शोरीपुर, तथा मथुरा नगरीसे, यादव सर्व निकल के पश्चिम समुद्रके किनारे जायके, उहां द्वारिका नगरी वसायके कितनेक वरष सुखसें रहा। पीछे जव जरासिंध अपनी सेना लेके युद्ध करनेंकों आया। तव कृष्ण वलभद्र युद्धमें जरासिंधप्रतिवासुदेवकों मारके, नवमा वासुदेव, वलदेव हुवा। इसमें वासुदेवका श्यामवर्ण, सरीरप्रमाण १० धनुष हुवा। ये, श्रीनेमिनाथस्वामीका

वडा भक्त अविरति सम्यग् दृष्टि श्रावक हुवा। अंतमें सर्व एक हजार वरपका आयुष्य पूरण करके तीसरी नरक पृथ्वीमें उत्पन्न भया। और वलदेवका उज्जल वर्ण, सरीरप्रमाण १० धनुप हुवा। जब द्वारकानगरी, यादवोका क्षय हुवा, और अपना भाई श्रीकृष्णका कौसंववनमे जराकुमरके हाथसें मरण हुवा देखके, वैराग्यसें संसारको असार जाणके, शुद्धभावसें चारित्र ग्रहण किया। क्रमसें सोवर्प चारित्र पालके, सर्व १२०० वरपको आयुष्य पूरण करके, पांचमा ब्रह्मदेवलोकमे देवतापणें उत्पन्न भया। आवती चौवीसीमें वारमा, चौदमा तीर्थकरहोके दोनुं मोक्ष जावेंगे॥ ये कृष्ण, वलभद्र, जगतमे वहुत प्रसिद्ध हैं। क्योंकि वहुतसे लोक श्रीकृष्ण वासुदेवको साक्षात् ईश्वर तथा ईश्वरका अवतार, जगत्का कर्त्ता मानते है। सो यह वात श्रीकृष्ण वासुदेवके जीते हुये न हुई, किंतु उनके मरे पीछे लोक कृष्ण वासुदेवकों ईश्वरावतार माननें लगे हे॥ तिसका हेतु श्री त्रेसठमलाका पुरप चरित्रमे ऐसे लिखा है। कि जब कृष्ण वासुदेवनें कौसववनमे शरीरछोडा, तब कालकरके तीसरी वालुकाप्रभा पृथ्वी (पातालमे) गये, और वलभद्रजी एकसौ वर्प जैन दिक्षा पालके पाचमा ब्रह्मदेवलोकमे देव हुये, उहा अवधि ज्ञानसें अपना भाई श्रीकृष्णको पातालमें तीसरी पृथ्वीमे देखा। तव भाईके स्नेहसे वैक्रिय शरीर वनाकर श्रीकृष्णकेपास पोंहचा और श्रीकृष्णसें आलिंगन करके कहा। कि मे वलभद्र नामा तेरे पिछले जन्मका भाई हुं, मे काल करके पाचमा

देवलोकमें देवता हुआ हुं, और तेरे स्नेहसें इहां तेरेपास मिलनेंकों आया हुं, सोमें तेरे सुखवास्ते क्या काम करूं ॥ इतना कहकर जब बलभद्रजीनें आपनें हाथों ऊपर कृष्णजीकों लिया, तब कृष्णका शरीर पारेकी तरे हाथसें क्षरके भूमि ऊपर गिर पडा, फेर मिलकर संपूर्ण शरीर पूर्ववत् हो गया ॥ इसीतरे प्रथम आलिंगन करनेंसें, फेर विरतात कहनेंसें, और हाथोंपर उठानेंसें जान लिया । कि यह मेरे पूर्व भवका अति वल्लभ बलभद्र भाई है तब श्रीकृष्णजीनें संभ्रमसे उठके नमस्कार करा । बलभद्रजीनें कहा, हे भाई, जो श्रीनेमिनाथ स्वामीनें कहा था । यह विषय सुख महा दुःखदाई है सो प्रत्यक्ष तुमको प्राप्त हुआ । तुज कर्म नियंत्रितको में स्वर्गमेंभी नहिं लेजा सक्ता हु । परतु तेरे स्नेहसे तेरेपास में रहा चाहता हुं तब कृष्णजीनें कहा, हे भ्राता तेरे रहनेंसेंभी मैनें करे हुये कर्मका फल तो मुझको अवश्य भोगवनाही है । परतु मुझकों इस दु खसे वो दु ख बहुत अधिक है । जोमें द्वारिका, और सकल परिवारके दग्ध हो जानेसें, एकला कौशंबवनमें जरा कुमरके तीरसें मरा । और मेरे शत्रुवोको सुख, तथा मेरे मित्रोंको दुःख हुआ, जगत्में सर्व यदुवंशी वदनाम हुये, इसवास्ते हे भ्राता, तूं भरतखंडमे जाकर, चक्र, शारंग, शख, गदाका धरनेंवाला, और पीला वस्त्र, तथा गरुड ध्वजाका धरनेवाला, ऐसा मेरा रूप बनाकर विमानमे बैठाकर लोकोकों दिखलाव । तथा नीला वस्त्र हल मूशल शस्त्रका धरनेवाला ऐसा रूपसे तूं विमानमें बैठके अपना

सागीरूप सर्व जगे दिखलाकर लोकोंकों कहो, कि रामकृष्ण दोनुं हम अविनाशी पुरुष हैं। और स्वेच्छा विहारी हैं। जब लोकोंकों यह सत्य प्रतीत हो जावेगा तब अपना सर्व अपयश दूर हो जावैगा। यह श्रीकृष्णजीका कहना सर्व श्री बलभद्रजीनें अगीकार किया। और भरतखडमे आकर कृष्ण, बलभद्र, दोनुंका रूप करके सर्व जगे विमानारूढ दिखलाया, और ऐसे कहनें लगा, कि अहोलोको तुम कृष्ण, बलभद्र, अर्थात् हमारे दोनोकी सुंदर प्रतिमा बनाकर, ईश्वरकी बुद्धीसें बडे आदरसें पूजो, क्यों कि हमही जगत्के रचनेंवाले, और स्थिति संहारके कर्त्ता हें, और हम अपनी इच्छासें स्वर्ग (वैकुंठसें) चले आते हैं। और द्वारिका हमनेंही रचीथी, तथा हमनेंही उसका संहार करा है, क्यों कि जब हम, वैकुंठमे जानेंकी इच्छा करते हैं, तव अपना सर्व वंश द्वारिका सहित दग्ध करके चले जाते हे। हमारे उपरात और कोई अन्य कर्त्ता, हर्त्ता, नही है। ऐसा बलभद्रजीका कहना सुनके प्राये केइ-ग्राम, नगरके लोक कृष्ण बलभद्रजीकीप्रतिमा सर्व जगे बनाकर पूजने लगे, तब अपनी प्रतिमाकी भक्ति करनेवालोंकों बलभद्र जीने बहुत धनादिक सुख देके आनदित किए। इसवास्ते बहुतसे लोक हरिभक्त हो गए। जबसें भक्त हुये तबसें पुस्तकोंमें श्रीकृष्णजीको पूर्णब्रह्म परमात्मा ईश्वरादि नामोसें लिखाहे लोकिकमे श्रीकृष्ण होयेको पाच हजार वरष कहते हैं, इससें क्या जानें जबसें बलभद्रजीने कृष्णजीकी पूजा करवाई, तबसेंही लोकोंनें

कृष्णकों ईश्वरावतार माना होय, और उस समयकों पांच हजार वरष हुआ होय, तो इस वातकों पांच हजार वरष हुआ होगा ॥

इसी तरे ६३ तेसठ शिलाका पुरुषोंका दृष्टांत इहां नाममात्र लिखा है । इन सर्वका विस्तारसें संवध देखना होय, तो श्री हेमाचार्यजी महाराजकृत तेसठ शलाका पुरषोका चरित्रादिकसें देख लेना ॥

और जितनें कालमें २४ भगवान हुए हें, उतनें कालमें इग्यारे रुद्र हुए हे, जिनका किंचित संवंध लिखता हुं ॥

॥ अथ ११ रुद्र नाम, गति विचार लि० ॥

१ श्री ऋषभदेव स्वामीके वारे, महारुद्रपरणामका धरनेंवाला भीमवल नामें पहला रुद्र हुआ, अतमें मरके सातमी नरक पृथ्वीमे गया ॥ इति ॥ २ श्री अजितनाथ स्वामीके वारे जितशत्रु नामें दूसरा रुद्र हुवा, सो अंतमें मरके सातमी नरक पृथ्वीमें गया ॥ इति २ ॥ ९ श्री सुविधिनाथ स्वामीके वारे, रुद्रवल नामें तीसरा रुद्र हुआ । अंतमें मरके छठी नरक पृथ्वीमे गया ॥ इति ॥ १० मा श्रीशीतलनाथ स्वामीके वारे, विश्वानर नामें चोथा रुद्र हुआ । अंतमें छठी नरक पृथ्वीमें गया ॥ इति ॥ ११ मा श्री श्रेयांशनाथ स्वामीके वारे, सुप्रतिष्ठनामें पांचमा रुद्र हुआ । अंतमे मरके छठी नरक पृथ्वीमें गया ॥ इति ॥ १२ मा श्री वासुपुज्य स्वामीके वारे, अचल नामें छठा रुद्र हुआ । अंतमे मरके छठी पृथ्वीमे गया ॥ इति ॥ १३ मा श्री विमलनाथ स्वामीके वारे, पुंडरीक नामें सातमा रुद्र हुआ । अंतमे मरके छठी नरक पृथ्वीमे

गया ॥ इति ॥ ७ ॥ १४ श्री अनंतनाथ स्वामीके वारे, अजितधर नामें आठमा रुद्र हुआ । अंतमें मरके पाचमी नरक पृथ्वीमे गया ॥ इति ॥ ८ ॥ १५ मा श्री धर्मनाथ स्वामीके वारे, अजितनल नामे नवमा रुद्र हुआ । अंतमें मरके चोथी नरक पृथ्वीमे गया ॥ इति ॥ १६ मा श्रीशांतिनाथ स्वामीके वारे, पेढाल नामे दशमा रुद्र हुआ । अतमे मरके चोथी नरक पृथ्वीमे गया ॥ इति १० ॥ २४ मा भगवान् श्री महावीरस्वामीके वारे, सत्यकी नामे इग्यारमा रुद्र हुआ । अतमें मरके तीसरी पृथ्वीमें गया ॥ ये इग्यारमा रुद्र लोकीकमे बहुत मान्यताकों प्राप्त हुआ थका है, इससे इनका इहां किंचित विस्तारसे दृष्टात लिखते हे ॥

॥ अथ ११ मा रुद्र सत्यकी दृष्टांत लि० ॥

विशाला नगरीके, चेटक राजाकी छठी पुत्री सुज्येष्टा नामा कुमारी कन्याने दिक्षा लीनीथी, अर्थात् जैन मतकी साध्वी हो गई थी, वो किसी अवसरमे उपाश्रयके अंदर सूर्यके सन्मुख आतापना लेती थी, इस अवसरमे पेढाल नामा परिव्राजक अर्थात् संन्यासी विद्यासिद्व था, सो अपनी विद्या देनेंकेवास्ते पात्रपुरषको देखता था । और उसका विचार ऐसा था, कि यदि ब्रह्मचारणीका पुत्र होवे तो सुनाथ होवेगा । तब तिस संन्यासीनें, रात्रीमे सुज्येष्टाको, नग्नपणे शीतकी आतापना लेतीको देखा, तब धुध विद्यासें अधकारमे अचेत करके उसकी योनीमे अपने वीर्यका संचार करा, तिस अवसरमे सुज्येष्टाकों रुतु धर्म आगयाथा इसवास्ते गर्भ रह गया, तब साथकी साध्वीयोंमे गर्भकी चर्चा

होनें लगी, पीछे अतिशय ज्ञानीनें कहा कि, सुज्येष्टानें विषय भोग किसीसें नहीं करा, अरुतिस विद्याधरका सर्व वृत्तांत कहा-तब सर्वकी शंका दूर हो गई, पीछे जब सुज्येष्टाने पुत्र जन्मा, तब तिस लडकेको श्रावकनें अपनें घरमें लेजाके पाला, तिसका नाम सत्यकी रक्खा, एकदा समय सत्यकी, साध्वीयोंके साथ श्री महावीर भगवान्‌के समवसरणमें गया, तिस अवसरमें एक कालसंदीपक नामा विद्याधर श्री महावीर स्वामीको वंदना करके पूछनें लगा, कि मुझकों किससें भय है, तब भगवंत श्री महानीर स्वामीनें कहा कि यह जो सत्यकी नामा लडका है, इससें तुझकों भय है। तब कालसंदीपक सत्यकीके पास गया, अवज्ञासें कहनें लगा, कि अरे तूं मुझकों मारैगा, ऐसें कहकर जोरावरीसें सत्यकीकों अपनें पगोंमे गेरा, तब तिसके पिता पेढालनें सत्यकीका पालन करा, और अपनी सर्व विद्यायों सत्यकीको देदई, पीछे जब सत्यकी महारोहणी विद्याका साधन करनें लगा, इस सत्यकीका यह सातमा भव रोहणी विद्या साधनमे लगरहा था, रोहणी विद्यानें इस सत्यकीके जीवको पांच भवमे तो जीवसें मार गेरा, और छठे भवमे छे महिने शेष आयुके रहनेंसें, सत्यकीके जीवनें विद्याकी इच्छा न करी, परंतु इस सातमें भवमें तो तिस रोहणी विद्याकों साधनेका प्रारभ करा तिसकी विधि लिखते हैं। अनाथ मृतक मनुष्यको चितामे जलावे, और आले चमडेकों शरीर ऊपर लपेटके पगके वामें अगुठेसें खडा होकर जहां लग वो चिताका काष्ट जले, तहां लग जाप करे, इस

विधिसें सत्यकी विद्या साध रहा था। उहां कालसंदीपक विद्याधरभी आगया, और चितामें काष्ट प्रक्षेप करके सात दिन रात्रीतक अग्नि बुझनें न दीनी, तब सत्यकी इसीतरे सात दिन वामे अगूठेसें खडा रहा, ऐसा सत्यकीका सत्य देखके रोहणी आप प्रगट होकर काल संदीपककों कहनें लगी कि मत विघ्नकर– क्यों कि मे इस सत्यकीके सिद्ध होनेंवाली हु, इसवास्तेमें सिद्ध हो गई हुं, तब रोहणी देवीनें सत्यकीको कहा, कि में तेरे शरीरमे किधरसें प्रवेश करुं, सत्यकीनें कहा मेरे मस्तकमे होकर प्रवेश कर, तब रोहणीनें मस्तकमे होकर प्रवेश करा तिस्सें मस्तकमे खड्डा पडगया, तब देवीने तुष्ट मान होकर तिस मस्तककी जगों तीसरे नेत्रका आकार बना दिया, तब तो सत्यकी तीन नेत्रवाला प्रसिद्ध हुआ, पीछे सत्यकीनें सोचा कि पेढालने मेरी माता राजाकी कुमारी बेटी साध्वीकों विगाडा हे। ऐसाशोचकर अपने पिता पेढालकों मार दिया, तब लोकोंने सत्यकीका नाम रुद्र (भयानक) रख दिया, क्यों कि जिसनें अपना पिताको मार दिया उससें और भयानक कौन है॥ पीछे सत्यकीनें विचारा कि काल संदीपक मेरा वैरी कहां है, जब सुना कालसदीपक अमुक जगा मे है, तब सत्यकी तिसके पास पोंहचा। फेर कालसंदीपक विद्याधर तहासे भाग निकला, तोभी सत्यकी तिसके पीछे लगा, तब कालसदीपक हेठै ऊपर भागता रहा, परतु सत्यकीने उसका पीछा न छोडा, फेर कालसदीपकनें सत्यकीके भुलानेवास्ते तीन नगर बनाये, तब सत्यकीने विद्यासें तीनों नगरभी जला दीये,

तब कालसंदीपक दोडके पाताल कलशमें चला गया, सत्यकीनें तहां जाकर काल संदीपककों मार डाला, तिस पीछे सत्यकी विद्याधर चक्रवर्त्ति हुआ, तीन संध्यामें सर्व तीर्थकरों कों वंदना करके नाटक करता हुआ, तब इद्रनें सत्यकीका नाम महेश्वर दीया, तिस महेश्वरके दो शिष्य हुये, एक नंदीश्वर, दूसरा नांदिया, तिनमें नांदीया तो विद्यासें बैलका रूप बना लेता था, और तिस ऊपर महेश्वर चढके अनेक क्रीडा कूतूहल करता था, महेश्वर श्री महावीर भगवंतका अविरति सम्यग् दृष्टि श्रावक था, परतु बडा भारी कामीथा, और ब्राह्मणो केसाथ उसके बडा भारी वैर हो गया था, इससें विद्याके बलसे सैकडो ब्राह्मणोंकी कुमारी कन्यायोको विषय सेवन करके बिगाडा, और लोक तथा राजा प्रमुखकी बहु बेटियोंसे काम क्रीडा करनें लगा, परतु उसकी विद्यायोके भयसे उसे कोई कुछ कह सक्ता नहीं था, और जो कोई मनाभी करता था सो मारा जाता था, महेश्वरनें विद्यासे एक पुष्पक नामा विमान बनाया तिसमें बैठके जहा इच्छा होती तहां जाता था, ऐसें उसका काल व्यतीत होता था, एकदा प्रस्तावे महेश्वर उज्जयन नगरमे गया तहां चडप्रद्योतनकी एक शिवानामा राणीको छोडके, दूसरी सर्वराणीयोके साथ विषयभोग करा, औरभी सर्व लोकोंके बहु बेटीयोंकों बिगाडना शरू करा तब चडप्रद्योतन राजाकों बडी चिता हुई, अरु विचारा कि कोई एसा उपाय करीयें कि जिस्सें इस महेश्वरका विनाश (मरणा) हो जावै। परतु तिसकी विद्याके आगे किसीका कोई उपाय नहीं चलता था, पीछे तिस उज्जइन

नगरमे एक उमा नामें वेश्या वडी रूपवंत रहती थी, उसका यह कौल था कि जो कोई इतना धन मुझे देवे, सो मेरेसें भोग करे, जो कोई उसके कहेमुजब धन देता था सो उसके पास जाता था। एक दिन महेश्वर उस वेश्याके घर गया, तब तिस उमा वेश्याने महेश्वरके सन्मुख दो फूल करे, एक विकशा हुआ, दूसरा मिचा हुआ, तब महेश्वरने विकशे फूलकी तर्फ हाथ पसारा, तब उमा वेश्यानें मिचा हुआ कमल महेश्वरके हाथमे दीया, और कहा कि यह कमल तेरे योग्य है, तब महेश्वरनें कहा क्यों यह कमल मेरे योग्य हे ॥ तब उमानें कहा, इस मिचे हुए कमल समान कुमारी कन्या है सो तुझकों भोग करनेंवास्ते वल्लभ है ॥ और मे खिले हुए फूल समान हु, तब महेश्वरने कहा तूभी मेरेकों बहुत वल्लभ है, ऐसा कहकर भोग भोगनें लगा, और तिसकेही घरमे रहने लगा, तिस उमाने महेश्वरको अपने वशमे कर लीया, उमाका कहना महेश्वर उल्लघन नही करसकता था, ऐसें जब कितनाक काल व्यतीत हुआ, तब चडप्रद्योतनने उमाकों बुलायके उसको बहुत धन, और आदर सन्मान देकर कहा, कि तूं महेश्वरसें यह पूछे कि ऐसाभी कोई काल है कि जिसकालमे तुमारेपास कोइभी विद्या नहीं रहती ॥ तब उमाने महेश्वरकों पूर्वोक्त रीतिसे पूछा, तब महेश्वरने कहा कि जब मे मैथुन सेवता हुं तब मेरेपास कोइभी विद्या नहीं रहती अर्थात् कोई विद्या चलती नही तब उमाने चडप्रद्योतन राजाको सर्व कथनसुना दीया, तब राजानें उमासें कहा कि जब महेश्वर तेरेसें भोग करैगा, तब हम उसकों

मारेंगे, जब उंमानें कहा कि मुझकों मत मारना, तब चंडप्रद्योतननें कहा कि तुझकों नहीं मारेंगे ॥ पीछे चंडप्रद्योतननें अपने सुभटोको छाना, उमाके घरमें छिपा रक्खा जब महेश्वर उमाके साथ विषय सेवनमें मग्न होके दोनोका शरीर परस्पर मिलके एक शरीरवत् हो गया, तब राजाके सुभटोनें दोनोंहीकों मार डाला और अपनें नगरका उपद्रव दूर करा, पीछे महेश्वरकी सर्व विद्यायोंनें उसके नंदीश्वर शिष्यको अपना अधिष्ठाता बनाया, जब नंदीश्वरनें अपनें गुरुकों इस विटंवनासें मारा सुना, तब विद्यासें उज्जयन नगरके ऊपर शिला बनाई, और कहनें लगा कि हे मेरे दासो, अब तुम कहां जाओगे, में सबकों मा रुंगा, क्योंकि मे सर्व शक्तिमान् ईश्वर हु, किसीका मारामें मरता नहिं हुं में सदा अविनाशी हुं, यह सुनकर बहुतसे लोक डरे, सर्व लोक वीनती करके पगोमें पडे, अरु कहने लगे, कि हमारा अपराध क्षमा करो, तब नंदीश्वरनें कहाकि, जो तुम उसी अवस्थामें अर्थात् उमाके भगमे महेश्वरका लिंग स्थापन करके पूजो तो में तुमको जीता छोडुंगा, तब लोकोनें वैसाही बनाकर पूजा करी, पीछे नंदीश्वरनें इसी तरे प्राय केइ गाम नगरोंमें लोकोंको डरा डराके मदर बनवाये, तिनमे पूर्वोक्त आकारे भगमें लिंगस्थापन कराके पूजा कराई ॥ यह श्रीमहावीर स्वामीका अविरति सम्यग् दृष्टी श्रावक, इग्यारमारुद्र सत्यकी महेश्वरका दृष्टात कहा ॥ इसीतरे ६३ शलाका उत्तम पुरुषोंका इहा संक्षेप मात्र अधिकार कहा, विशेष अधिकार देखना होयतो, आवश्यक, कल्पसूत्र, त्रेशठ

श्रीमहावीर स्वामीके सर्व शिष्य साधुवर्ग १४ हजार हुए जिसमे मुख्य बडे शिष्य गणधरलब्धिकेधारक ११ गणधर हुवे, तिन ११ गणधरोंका नाम यहहैं, इन्द्रभूति १ अग्निभूति २ वायुभूति ३ व्यक्तस्वामी ४ सुधर्मास्वामी ५ मडितपुत्र ६ मौर्यपुत्र ७ अकंपित ८ अचलभ्राता ९ मैतार्य १० प्रभास ११ यह ११ गणधर सर्वाक्षरोंके सजोगकु जाणनेवाले थे, और सर्व साध्वी आर्या चदना प्रमुख ३६ हजार हुई, और शंख पुष्कली आनद कामदेवादि सर्वश्रावक १ लाख ५९ हजार हुवे और सुलसा रेवती चेलणा जयंती आदि सर्वश्राविका ३ लाख १८ हजार हुइ और श्रेणिक कोणिक उदायन उदायी चेटक चंडप्रद्योतन नवमल्लकी नवलेछकी दशार्णभद्र महेश्वरादि देशव्रतधर समस्त्वव्रतधर बडे बडे अनेक राजालोक श्रीमहावीर स्वामीके लाखोंही सेवक हुवे ॥ ऐसे श्रीमहावीर भगवत विक्रम सवतसे ४७० वर्ष पहिले पावापुरी नगरीमे हस्तिपाल राजाकी पुराणी राज सभामे ७२ वर्षका आयु भोगवके कार्त्तिक वदि अमावस्याकी रात्रिके पीछले प्रहरमे पद्मासन किये हुए वेदनीयादि चार कर्मकी सर्व उपाधि छोडके निर्वाण हुए (मोक्ष पहुंचे) तिस समयमे श्री गौतमस्वामी और श्रीसुधर्मास्वामी, यह दो बडे शिष्य जीते थे, शेष नव बडे शिष्य तो श्री महावीरस्वामीके जीते हुये ही एक मासका अनशन करके केवल ज्ञान पायके मोक्षचलेगये थे, यह इग्यारहही बडे शिष्य जातिके तो ब्राह्मण थे, चार वेद, और छ वेदागादि सर्व शास्त्रोंके जानकार थे, इन इग्यारह पंडितों के चौमालीससै (४४००) विद्यार्थी थे ॥

श्रीः

अथ द्वितीयः सर्गः ॥

तत्रादौ मंगलाचरणम् ॥

श्रीतीर्थेशगणेशान्, प्रणिपत्य सम्यग्, इन्द्रभूति प्रमुखानाम्, गणाधिपानाञ्च, चरित्रलेशं, स्वपरोपकृत्यै, विवृणोमि किंचित् ॥१॥ अथसम्प्रति एकादश श्रीवीरस्य गणाधिपाः, इन्द्रभूतिरग्निभूतिर्वायुभूतिश्च गौतमाः ॥ २ ॥ व्यक्तः सुधर्मा मंडितमौर्यपुत्रावकम्पितः अचलभ्राता मेतार्यः प्रभासश्च पृथक्कुलाः ॥ ३ ॥

अथ श्रीवीरनाथस्य, गणधरेष्वेकादशस्वपि, द्वयोर्द्वयोर्वाचनयोः, साम्यादासन् गणा नव ॥ ४ ॥ श्रीजम्ब्वादिसूरीणा, मोक्षमार्गविशुद्धये, चरित्रं कीर्तयिष्यामि, पवित्रं लोकभाषया ॥ ५ ॥ श्रीवैदेहं तीर्थपतिं, वन्दे विश्वगुणाकर, श्रीसुधर्म श्रीजम्बूं, निष्ठितार्थ समृद्धये ॥६॥ केवली चरमो जम्बू, अथ श्रीप्रभवप्रभुः' शय्यंभवो यशोभद्रः, संभूतिविजयस्ततः ॥७॥ भद्रबाहुः स्थूलिभद्रः, श्रुतकेवलिनो हि पद्, महागिरिसुहस्त्याद्या, वज्रान्ता दश पूर्विणः ॥ ८ ॥ श्लोकार्धेनाग्रे प्रयोजनं भावि ॥ सारं सार श्रुतागी, कारकारं गौरवे प्रणतिं च क्रमाच्चरित्र सर्गे, द्वितीयके वच्मि श्रेयोर्थ ॥ ९ ॥

अब श्रीचौवीशमा भगवान श्रीमहावीर स्वामीसें लेकर आज पर्यंत पट्टपरंपरा, मूलसूरियोका, अन्याचार्यादिकोंका किंचित् वृत्तात लिखता हुं ॥

श्रीमहावीर स्वामीके सर्व शिष्य साधुवर्ग १४ हजार हुए जिसमे मुख्य वडे शिष्य गणधरलब्धिकेधारक ११ गणधर हुवे, तिन ११ गणधरोंका नाम यहहैं, इन्द्रभूति १ अग्निभूति २ वायुभूति ३ व्यक्तस्वामी ४ सुधर्मास्वामी ५ मंडितपुत्र ६ मौर्यपुत्र ७ अकंपित ८ अचलभ्राता ९ मेतार्य १० प्रभास ११ यह ११ गणधर सर्वाक्षरोंके संजोगकु जाणनेवाले थे, और सर्व साध्वी आर्या चंदना प्रमुख ३६ हजार हुई, और शंख पुष्कली आनंद कामदेवादि सर्वश्रावक १ लाख ५९ हजार हुवे और सुलसा रेवती चेलणा जयंती आदि सर्वश्राविका ३ लाख १८ हजार हुइ और श्रेणिक कोणिक उदायन उदायी चेटक चडप्रद्योतन नवमल्लकी नवलेछकी दशार्णभद्र महेश्वरादि देशव्रतधर समस्त्वव्रतधर वडे वडे अनेक राजालोक श्रीमहावीर स्वामीके लाखोंही सेवक हुवे ॥ ऐसे श्रीमहावीर भगवंत विक्रम संवतसे ४७० वर्ष पहिले पावापुरी नगरीमें हस्तिपाल राजाकी पुराणी राज सभामे ७२ वर्षका आयु भोगवके कार्त्तिक वदि अमावस्याकी रात्रिके पीछले प्रहरमे पद्मासन किये हुए वेदनीयादि चार कर्मकी सर्व उपाधि छोडके निर्वाण हुए (मोक्ष पहुचे) तिस समयमे श्री गौतमस्वामी और श्रीसुधर्मास्वामी, यह दो वडे शिष्य जीते थे, शेष नव वडे शिष्य तो श्री महावीरस्वामीके जीते हुये ही एक मासका अनशन करके केवल ज्ञान पायके मोक्षचलेगये थे, यह इग्यारहही वडे शिष्य जातिके तो ब्राह्मण थे, चार वेद, और छ वेदांगादि सर्व शास्त्रोंके जानकार थे, इन इग्यारह पंडितों के चौमालीससै (४४००) विद्यार्थी थे ॥

इनोका संबंध ऐसे है कि—जब भगवंत श्रीमहावीरस्वामीकों-केवलज्ञान हुआ, तिस अवसरमें मध्यपापा नगरीमें, सोमल नामा ब्राह्मणनें यज्ञ करनेंका आरंभ करा था, और सर्व ब्राह्मणोमें श्रेष्ठ विद्वान जानकर इन पूर्वोक्त गौतमादि इग्यारैही उपाध्यायोको बुलाया था ॥ तिस समय तिस यज्ञ पाडाके ईशान कूणमें महासेन नामा उद्यानमें, श्रीमहावीर भगवंतका समवसरण, रत्न सुवर्ण रौप्य-मय क्रमसे तीन गढसंयुक्त देवोनें बनाया तिसके बीचमे बैठके भगवंत श्रीमहावीरस्वामी उपदेश करनें लगे, तब आकाश मार्गके रस्ते सैकडों विमानोमें बैठे हुये चार प्रकारके देवताओ भगवंत श्री-महावीरस्वामीके दर्शनकों और उपदेश सुननेकों आते थे, तब तिनो यज्ञ करनेवाले ब्राह्मणोने जाना कि, यह देव सर्व हमारे करे हुये यज्ञ की आहुतीयों लेनें आये हैं, इतनेमे देवता तो यज्ञ पाडेकों छोडके भगवानके चरणोमे जाकर हाजर हुये, तथा और लोकभी श्रीमहावीर भगवंतका दर्शन करकें और उपदेश सुनकें गौतमादि पंडितोके आगें कहनें लगे, कि—आज इस नगरके बाहिर सर्वज्ञ सर्वदर्शी भगवान आये है, नतो उसके रूपकी कोई तारीफ कर सक्ता है, अरु न कोई उसके उपदेशसे सशय रहता है, और लाखो देवता जिनोके चरणोकी सेवा करते हैं, इससें हमारे बडे भाग्योदय है, जो ऐसे सर्वज्ञ अरिहंत भगवतका हमने दर्शन पाया, ऐसा जब गौतमजीने सुना कि, सर्वज्ञ आया, तब मनमें ईर्षाकी अग्नि भडकी, अरु ऐसें कहने लगाकि—मेरेसें अधिक और सर्वज्ञ कौन है ? मे आज इसका सर्वज्ञपणा उडा देता हुं ?

इत्यादि गर्व संयुक्त भगवान् श्रीमहावीरस्वामीके पास पहुंचा, और भगवानकों चौतीस अतिशय संयुक्त देखा, तथा देवता, इंद्र, मनुष्योंसे परिवृत देखा, तब बोलने की शक्तिसे हीन हुआ, भगवंतके सन्मुख जाके खडा होगया, तब भगवंतने कहा कि— हे गौतम इद्रभूति तूं आया, तब गौतमजीने मनमे विचारा कि, जो मेरा नामभी ये जानते हैं, तोभी मै सर्व जगे प्रसिद्ध हू मुझे कौन नहीं जानताहै इन्हें मेरा नाम लीया इस बातमे कुछ आश्चर्य और सर्वज्ञ इसकों नहीं मानता हूं, किंतु मेरे मनमें जो सशय है तिसकों दूर कर देवे तोमें इसको सर्वज्ञ मानु तब भगवंत नें कहा, हे गौतम । तेरे मनमें यह सशय हैः—जीव है कि नही ? और यह संशय तेरेको वेदोंकी परस्पर विरुद्ध श्रुतियोसे हुवा है वो श्रुतियां यह है, सो कहते हैं ॥

"विज्ञानघनएवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानुविनश्यति न प्रेत्यसज्ञास्तीतीत्यादि" इस्से विरुद्ध यह श्रुति हैं—"सर्वः अयमात्मा ज्ञानमय इत्यादि" इन श्रुतियोका अर्थ जैसा तेरे मनमे भासन होता है, तैसाही प्रथम श्रुतिका अर्थ कहते हैं। नीलादि रूप होनेसें विज्ञानही चैतन्य है चैतन्य विशिष्ट जो नीलादि तिस्मे जो घन सो विज्ञानघन, सो विज्ञानघन इन प्रत्यक्त परि-विद्यमान रूप पृथ्वी, अप्प, तेज, वायु, आकाश, इन पांच भूतो से उत्पन्न होकर फेर तिनके साथही नाश होजाता है अर्थात् भूतो के नाश होनेसे उनके साथ विज्ञानघनकाभी नाश होजाता है, इस हेतुसें प्रेत्यसंज्ञा नही अर्थात् मरके फेर परलोक मे और

कोई नर नारक का जन्म नही होता, इस श्रुतिसें जीवकी नास्ती सिद्ध होती है, और दूसरी श्रुति कहती है कि—यह आत्मा ज्ञान मय अर्थात् ज्ञान स्वरूप है इस्से आत्माकी सिद्धी होती है, अव ये दोनो श्रुतियो परस्पर विरोधी होनेसें प्रमाण नही हो शक्ती है और वहुत परस्पर आत्माके स्वरूपमें विरोधी मत है, कोई कहता है कि—"एतावानेव पुरुपो, यावानिंद्रियगोचरः ॥ भद्रे वृकपद पश्य, यद्वदंत्यवहुश्रुताः" ॥ १ ॥ यहभी एक आगम कहता है तथा "न रूपं भिक्षवः पुद्गलः" अर्थात् आत्मा अमूर्त्ति है, यहभी एक आगम कहता है, तथा "अकर्त्ता निर्गुणो भोक्ता आत्मा, अर्थः– अकर्त्ता सत्व, रज अरु तम, इन तीनों गुणोसें सुख दुःखका भोगनेंवाला आत्मा है, यहभी एक आगम कहता है, अव इनमेसें किसको सचा और किसकों झूठा मानें परस्पर विरोधी होनेसें, सर्व तो कुछ सचे होही नही शक्ते हैं तथा युक्ति प्रमाणसेंभी मरके परलोक जानेवाला आत्मा सिद्ध नहीं होता है ऐसा हे गौतम तेरे मनमे संशय है, अव इसका उत्तर कहता हूं कि, तू वेद पदोंका अर्थ नही जानता है इत्यादि कहके श्रीगौतमजीके संशयकों दूर करा, ये सर्व अधिकार मूलावश्यक और श्रीविशेषावश्यकसे जान लेना, मैंने ग्रन्थके भारी और गहन होजानेके सवबसें यहा नही लिखा क्योंकि सर्व इग्यारह गणधरोंके संशय दूर करनेंका कथनके चार हजार श्लोक है, पीछे जव गौतमजीका संशय दूर होगया, तव गौतमजी पाचसो अपने विद्यार्थियोंके साथ दीक्षा लेके श्रीमहावीर भगवंत का प्रथम शिष्य हुवा ॥

इसीतरे इंद्रभूतिकों दीक्षित सुनके, दूसरा भाई अग्निभूति वडे अभिमानमें भरकर चला और कहने लगाकि, मेरे भाईको इंद्र-जालीयेने छलसें जीतके अपना शिष्यवनालीया, तो मे अभी उस इद्रजालीयेकों जीतके अपने भाईकों पीछा लाता हू इस विचारसें भगवंत श्रीमहावीरजीकेपास पहुंचा, जब भगवानको देखा, तब सर्व आइ बाइ भूल गया मुखसें बोलनेकीभी शक्ति न रही, और मनमे बडा अचभा हूआ, क्योकि ऐसा स्वरूप न उसने कभी सुना था और कभी देखा था, तब भगवाननें उसका नाम लीया, अग्निभूतिने विचारा कि यह मेरा नामभी जानते है, अथवा में प्रसिद्ध हू मुझे कौन नही जानता है, परतु मेरे मनका संशयदूर करे तो मै इसकों सर्वज्ञ मानु, तब भगवतने कहा हे अग्निभूति तेरे मनमे यह संशय है कि कर्म है किवा नहीं यह संशय तेरेको विरुद्ध वेदपदोसें हूआ है क्योंकि तूं वेद पदोका अर्थ नही जानता है, वे वेदपद यह है—"पुरुषएवेदग्नि सर्व यद्भूतं यच्च भाव्यं उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनाऽतिरोहति यदेजति यन्नेजति यद्दूरे यदु-अंतिके यदंतरस्य यदुत सर्वस्यास्य बाह्यत इत्यादि" इस्सें विरुद्ध यह श्रुति है—"पुण्यः पुण्येनेत्यादि" और इनका अर्थ तेरे मनमे ऐसा भासन होता है कि, पुरुष अर्थात् आत्मा, एव शब्द अवधारणके वास्ते है, सो अवधारण कर्म और प्रधानादिकोंके व्यवच्छेद वास्ते है, "इद सर्व" अर्थात् यह सर्व प्रत्यक्ष वर्त्तमान चेतन अचेतन वस्तु "ग्निं" यह वाक्यालकारमें है यद्भूतं अर्थात् जो पीछे हूआ है और आगेकों होवेगा, जो मुक्ति तथा ससार सो सर्व पुरुष

आत्मा ब्रह्मही है तथा उतशब्द अतिशब्दके अर्थमे है, और अपि-शब्द समुच्चय अर्थमें है अमृतत्वस्य अमरणभावका अर्थात् मोक्षका ईसानःप्रभुः अर्थात् स्वामी (मालक) है, यदिति यचेति च शब्दके लोप होनेसें यदिति बना इसका अर्थ जो अन्न करकें वृद्धिकों प्राप्त होता है, "यदेजति" जो चलता है ऐसे पशुआदिक और जो नहीं चलता है ऐसे पर्वतादिक और जो दूर है मेरु आदिक "यत्उअं-तिके" उ शब्दअवधारणार्थमें है, जो समीप अर्थात् नेडे है सो सर्व पूर्वोक्त पदार्थ पुरुष अर्थात् ब्रह्मही है, इस श्रुतिसें कर्मका अभाव होता है अरु दूसरी श्रुतिसे तथा शास्त्रांतरोंसे कर्म सिद्ध होते है, तथा युक्तिसें कर्मसिद्ध होते नहीं क्योकि अमूर्त्त आत्माको मूर्त्ति कर्म लगते नहीं, इसवास्ते मै नही जानता कि कर्म है वा नही यह संशय तेरे मनमें है, ऐसा कह कर भगवाननें वेदश्रुतियोंका अर्थ बराबर करके तिसका पूर्वपक्ष खंडर्न करा, सो विस्तारसें मूला-वश्यक तथा विशेषावश्यकसें जानलेना अग्निभूतिनेंभी गौतमवत् दीक्षा लीनी ॥ २ ॥

अग्निभूतिकी दीक्षा सुनके तीसरा वायुभूति आया, परतु आगे दोनों भाईयोंके दीक्षा लेलेनेंसे इसको विद्याका अभिमान कुछभी न रहा, मनमे विचार करा कि मै जाकर भगवानकों वंदना (नम-स्कार) करुगा ऐसा विचारके आया आकर भगवंतकों वंदना (नमस्कार) करा। तब भगवंतने कहा तेरे मनमे संशयतो है परंतु क्षोभसें तूं पूछ नही शक्ता है, संशय यह है कि जो जीव है सो देहही है और यह संशय तेरेकों विरुद्ध वेदपद श्रुतिसें हूआ है,

और तूं तिन वेदपदोंका अर्थ नही जानता है वे वेदपद ये हैं— "विज्ञानघन इत्यादि" पहिले गणधरकी श्रुति जाननी, इस्सें देहसें जीन (आत्मा) सिद्ध नही होता है, और इस श्रुतिसें विरुद्ध यह श्रुति है, (सत्येव लभ्यस्तपसा ह्येपब्रह्मचर्येण नित्यज्योतिर्मयो हि शुद्धोय पश्यंति धीरायतयः संयतात्मान इत्यादि) इस श्रुतिसें देहसें भिन्न आत्मा सिद्ध होता है, इसवास्ते तुझको संशय है, पीछे भगवान्नें यह सर्व दूर करा, तब तीसरा वायुभूतिनेंभी अपने पांच सौ विद्यार्थीयोंकेसाथ दीक्षा लीनी ॥ ३ ॥

वायुभूतिकी तरे शेष आठ गणधर क्रमसें आये, तिसमे चौथा व्यक्तजी आया, तिनके मनमे यह संशय था कि पांचभूत है कि नही ए संशय विरुद्ध श्रुतियोंसें हुआ, वे परस्पर विरुद्ध यह हैं— "स्वप्नोपम वै सकलमित्येन ब्रह्मविधरजसाविज्ञेयइत्यादीनि" तथा इससें विरुद्ध यह श्रुति है "द्यावापृथिवी जनयन् देवइत्यादि" तथा पृथिवीदेवता, आपोदेवता, इत्यादीनि इनका अर्थ तेरे मनमे ऐसा भासन होता है—अर्थ, स्वप्न सरीखा वैनिपात अवधारणार्थे सपूर्णजगत है "एप ब्रह्मविधि" अर्थात् यह परमार्थ प्रकार है, अजसा सीधेन्यायसे जाननां योग्य है, यह श्रुति पंचभूतका अभाव कहती है, और श्रुतियों पाचभूतकी सत्ताकों कहती है इसवास्ते तेरेकों संशय है, तेरे मनमें यहभी है कि—युक्तिसें पाचभूत सिद्ध नहीं होते है, पीछे भगवानने इमका पूर्वपक्ष खडन करा वेद पदोंका यथार्थ अर्थ कहा, यह अधिकार उक्त ग्रथोंसें

जान लेनां ॥ यह सुनकर चौथा व्यक्तजीनेंभी अपना पांचसै शिष्योंकेसाथ दीक्षा लीनी ॥ ४ ॥

तव पांचमां सुधर्मा नामा पंडित आया, इसकाभी उसीतरे सर्वाधिकार जानलेना यावत् तेरे मनमें यह संशय है कि मनुष्यादि सर्व जैसें इस भवमे है तैसेंही अगले जन्ममें होते है कि, मनुष्य कुछ और पशुआदिभी वन जाते है, यह संशय तेरेको परस्पर विरुद्ध वेद श्रुतियोसें हुआ है सो वेद श्रुतियो यह है—"पुरुषो वै पुरुषत्वमश्नुते पशवः पशुत्वं इत्यादीनि" यह श्रुति जैसा इस जन्ममें पुरुष स्त्री आदि है वे पर जन्ममेंभी ऐसेही होवेंगे, इस्से विरुद्ध यह श्रुति है "शृगालो वै एष जायते यः सपुरीषो दह्यत इत्यादि" इन सर्व श्रुतियोंका भगवानने अर्थ करके संशय दूर करा, तव अपनें पाचसे शिष्योंके साथ दीक्षा लीनी ॥ ५ ॥

तिस पीछे छठा मंडित पुत्र आया तिसके मनमें यह संशय था, कि वंध मोक्ष है, वा नहीं है यह सशयभी विरुद्ध श्रुतियोसे हुवा है, सो श्रुतियो यह है "स एष विगुणोविभुर्न वध्यते, संसरति वा न मुच्यते मोचयति वा ॥ एष वाह्यमभ्यंतरं वा वेदइत्यादीनि" इस श्रुतिका ऐसा अर्थ तेरे मनमे भासन होता है, "एष-अधिकृतजीवः" अर्थात् यह जीव जिसका अधिकार है "विगुण" अर्थात् सत्वादि गुण रहित सर्वगत सर्व व्यापक पुण्य पाप करकें इसको वध नहीं होता है, और संसारमें भ्रमण भी नहीं करता है, और कर्मोसें छूटताभी नहीं है, वंधके अभाव होनेसें दूसरोंको कर्मवंधसे छोडाताभी नहीं है, इस कहनेसे आत्मा अकर्त्ता है, मोक्ष

कहता है, यह पुरुप अपणी आत्मासें वाहिर महत् अहंकारादि और अभ्यंतर स्वरूप अपना जानता नही, क्योंकि जानना ज्ञानसे होता है, और ज्ञानजो है, सो प्रकृतिका धर्म है, और प्रकृति अचेतन है, बंध मोक्ष नही इस श्रुतिसे बंध मोक्षका अभाव सिद्ध होता है। अब इस्से विरुद्ध श्रुति यह है सो कहते है "नही वै शरीरस्य प्रियाप्रिययोरपहतिरस्ति अशरीर वा वसतं प्रियाप्रिये न स्पृशत इत्यादीनि" इसका अर्थ कहते है—सशरीरस्य, अर्थात् शरीर सहितकों सुख दुःखका अभाव कदापि नहीं होता है, तात्पर्य यह है कि संसारी जीव सुख दुःखसें रहित नहीं होता है, और अमूर्त्त आत्माकों कारणके अभावसें सुखदुःखस्पर्शनही कर शक्ते हैं, इस श्रुतिसें बधमोक्षसिद्धहोते है, तथा तेरे मनमे यहभी बात है—कि युक्तिसेभी बधमोक्षसिद्धनहीं होते हैं इत्यादि संशय कहकर भगवान् तिसके पूर्वपक्षको खंडन करके संशय दूर करा, तब मंडितपुत्र साढेतीनसो विद्यार्थियोके साथ दीक्षित भया ॥ ६ ॥

॥ ७ ॥ तिसके पीछे सातमा मोर्यपुत्र आया, तिसके मनमें यह संशय था कि—देवता है किंवा नही है यह सशय परस्पर विरुद्ध श्रुतियोंसें हुआ वो श्रुतियो यह है "सएपयज्ञायुधीयजमानोंजसास्वर्गलोकं गच्छति इत्यादि" श्रुतियो स्वर्ग तथा देवताओंकी सिद्धि करतीयो है, इससे विरुद्ध श्रुति यह है—अपामसोमं अमृता अभूम् अगमामज्योतिर्विंदामदेवान् ॥ किन्नूनमस्मान्तृणवदरातिः किमुधूर्त्तिरमृतमर्त्यस्येत्यादीनि "तथा को जानाति मायोप-

मान् गीर्वाणानि इर्यवरुणकुवेरादीन् इत्यादि"—इनका ऐसा अर्थ तेरे मनमें भासन होता है, कि—पाणीको पीते हुये एतावता सोमलताकारस पीते हूये अमृत (अमरण) धर्मवाले हम हुये हैं ज्योति स्वर्ग और देवताको हम नही जानते हैं तथा देवता हम हूये हैं, यहभी नही जानते देवता तृणेकी तरें हमारा क्या कर शक्ते है, यह श्रुति अभाव प्रतिपादन करती है, और यह भावकी प्रतिपादक है, "धूर्तिजराअमृत मर्त्यस्य" अमृतत्व प्राप्तपुरुषकों क्या कर सक्ती है। इन श्रुतियोंका यथार्थ अर्थ करकें, और तिसका पूर्वपक्ष खंडन करके भगवंतनें इनका संशय दूर करा, तब यहभी साढेतीनसो छात्रोंके साथ दीक्षित भया ॥ ७ ॥

॥ ८ ॥ तिस पीछे आठमाअकंपित आया उसके मनमेभी वेदकी परस्पर विरुद्ध श्रुतियोंके पदोंसें, नरकवासी है कि नही। यह संशय उत्पन्न हूआथा, वो परस्पर विरुद्ध श्रुतियों लिखते हैं— "नारको वै एष जायते यः शूद्रान्नमश्नाति इत्यादि" इसका अर्थ— यह ब्राह्मण नारक होवेगा जो शूद्रका अन्न खाता है। इस श्रुतिसें नरक सिद्ध होता है, तथा "नह वै प्रेत्यनरके नारका संतीत्यादि" सुगमार्थः। इस श्रुतिसें नरकका अभाव सिद्ध होता है। इनका अर्थ करकें और पूर्वपक्ष खंडन करकें भगवाननें तिसका संशय दूर करा तब अकंपितनेंभी तीनसौ छात्रोंके साथ दीक्षा लीनी ॥ ८ ॥

॥ ९ ॥ तिस पीछे नवमा अचलभ्राता आया, तिसकोंभी परस्पर वेदकी विरुद्ध श्रुतियोंके पदोंसें, पुण्य पाप है कि नही। यह संशय था, सो वेद पद यह—"पुरुष एवेदंग्निं सर्वं इत्यादि" दूसरे

गणधरवत्, इस्सें विरुद्धपद है—"पुण्यं पुण्येन कर्मणा भवति, पापं पापेन कर्मणा भवति इत्यादि" इस्सें पुण्यपाप सिद्ध होते है, यह संशयभी भगवानने दूर करा तब यहभी तीनसौ छात्रोंके साथ दीक्षित भया ॥ ९ ॥

॥ १० ॥ तिस पीछे दशमा मेतार्य आया उसकों भी वेदकी परस्पर विरुद्ध श्रुतियोंसें यह संशय हुवा था, कि परलोक है किंवा नही है वो श्रुतियों यह है—विज्ञानघन, इत्यादि प्रथम गणधरवत् अभाव कथन श्रुति जाननी" तथा "सर्वः अयं आत्मा ज्ञानमय इत्यादि" परलोक भाव प्रतिपादक श्रुति जाननी। इनका तात्पर्य भगवाननें कहा, तब मेतार्यजीनें निःशक होकें तीनसौ छात्रोंके साथ दीक्षा लीनी ॥ १० ॥

॥ ११ ॥ तिस पीछे इग्यारहमा प्रभास नामा उपाध्याय आया तिसके मनमेंभी वेद श्रुतियोंके परस्पर विरुद्ध होनेसें यह संशय था कि निर्वाण है कि नही है, वो श्रुतियो यह है—"जरामर्यं वा एतत्सर्वं यदग्निहोत्रं" इस्सें विरुद्ध श्रुति यह है—"द्वेब्रह्मणी वेदितव्ये परमपर च तत्र पर सत्यं ज्ञानमनतब्रह्मेति" इनका यह अर्थ तेरी बुद्धिमे भासन होता है कि-अग्निहोत्र जो है सो जीव हिंसा संयुक्त है, और जरा मरणका कारण है, अरु वेदमे अग्निहोत्र निरंतर करणां कहा है, तब ऐसा कौनसा काल है, कि जिसमें मोक्ष जानेका कर्म करीये, इसवास्ते आत्माको मोक्ष (निर्वाण) कदापि नही हो शक्ता है, अरु दूसरी श्रुति मोक्ष प्राप्तिभी कहती है, इसवास्ते संशय हुआ है, इसका जब भगवाननें उत्तर देके निशंक

करा तब तीनसौ छात्रोंके साथ दीक्षा लीनी ११ ॥ इसीतरे श्रीमहावीर भगवंतके वैशाख शुदि इग्यारसके दिन मध्यपापानगरीके महासेन वनमे (४४००) शिष्य हुये, तिस पीछे राजपुत्र, श्रेष्ठिपुत्रादि, तथा राजपुत्री, श्रेष्टिपुत्री, राजाकी राणीयों आदिकनें दीक्षा लीनी । तथा जब भगवंत श्रीमहावीरजी पावापुरीमें मोक्ष गये, तिसीही रात्रिके प्रभातमे इंद्रभूति, अर्थात् गौतम गणधरकों केवल ज्ञान हुआ । तब इंद्रोनें निर्वाण महोच्छव करके, ग्यानका उच्छव करा, और सुधर्मास्वामीजीकों श्रीमहावीर स्वामीजीका पट्टऊपर बैठाया। श्रीगौतमस्वामीजीको पट्ट इसवास्ते न हुवा कि, केवलज्ञानी पुरुष कोई पाट ऊपर नही बैठता है, क्योंकि केवली तो जो पूछे उसका उत्तर अपनें ज्ञानसेही देता है, परंतु ऐसा नहीं कहता है, कि मैं अमुक तीर्थंकरके कहनेसें कहता हुं, इसवास्ते केवलज्ञानी पाट ऊपर नहीं बैठता है, जेकर बैठे तो तीर्थंकरका शासन दूर हो जावे, यह कभी हो नहि शक्ता, जो अनादि रीतिकों केवली भंग करे, इसवास्ते श्रीगौतमस्वामीजी केवलज्ञानी था, इस्सें पट्टऊपर नही बैठे, और श्रीसुधर्मास्वामी बैठे ॥

श्री सुधर्मास्वामी पचास वर्ष तो गृहस्थावास (घरमे) रहे, और तीस वर्ष श्रीमहावीर भगवंतकी चरण सेवा करी, जब श्रीमहावीरस्वामी निर्वाण हुआ, तिस पीछे बारावर्ष तक छद्मस्थ रहे, और आठ वर्ष केवली रहे, क्योंकि श्रीमहावीरस्वामी मोक्षगयेके पीछे केवली होकर बारावर्ष श्रीगौतमस्वामीजी जीते रहे, और श्रीगौतमस्वामीजीके निर्वाण पीछे, श्रीसुधर्मास्वामीजीकों केवलज्ञान हुआ । केवली होकर

आठ वर्ष जीते रहे, श्रीसुधर्मास्वामीजीका सर्वायु एकसौ (१००) वर्षका था. सो श्रीमहावीरस्वामीजीकेवीशवर्ष पीछे मोक्ष गये ॥१॥ श्रीसुधर्मास्वामीके पाट ऊपर, श्रीजंबूस्वामी वैठे। सो राजगृह नगरकावासी श्रीऋषभदत्त श्रेष्ठकी धारणी नामा स्त्रीनें जन्मेथे, निन्नाणवे क्रोड मोनइये और आठ स्त्रीयोंकों छोडकर दीक्षा लेता भया, शोलेवर्ष गृहस्थ वासमे रहे, वीश वर्ष व्रतपर्याय, और चौमालीस वर्ष केवलपर्याय पालके श्रीमहावीरस्वामीके निर्वाणसे चौशठमे वर्ष पीछे मोक्ष गये ॥

यह श्रीजंबूस्वामीके पीछे भरतक्षेत्रमे दश वाते विच्छेद होगई तिसका नाम लिखते हैः—१ मनःपर्यवज्ञान, २ परमावधि ज्ञान, ३ पुलाकलब्धि ४ आहारकशरीर, ५ क्षपकश्रेणि, ६ उपशमश्रेणि, ७ जिनकल्पिमुनिकी रीति, ८ परिहार विशुद्धिचारित्र, तथा सूक्ष्मसंपराय, और यथाख्यात यह तीन तरेके सयम, ९ केवलज्ञान, १० मोक्ष होना, यह दश वस्तु विच्छेद हो गई, श्रीमहावीर भगवंतके केवली हुये पीछे जब चौदहवर्ष वीतेथे, तब जमाली नामा प्रथम निन्हव हुआ और सोलावर्ष पीछे तिष्य गुप्त नामा दूसरा निन्हव हुवा। श्रीजम्बूस्वामीका आयु असी वर्षका था ॥ २ ॥

॥ ३ ॥ जम्बूस्वामीके पाट ऊपर, प्रभवस्वामी वैठे। तिनकी उत्पत्ति ऐसे है, विंध्याचल पर्वतके पास जयपुर नामा पत्तन था, तिसका विंध्य नामा राजा था, तिसके दो पुत्र थे, एक वडा प्रभव, दूसरा छोटा प्रभु, विंध्यराजाने किसी कारणसें छोटे पुत्र प्रभुको राज तिलक दे दीया, तब वडा वेटा प्रभव गुस्सें होकर

जयपुर पत्तनसें निकलकर, विंध्याचलकी विषम जगामें गाम वसाकर रहने लगा, और खात्रखनन, बंदिग्रहण रस्तेमें लूटनादि, अनेक तरेंकी चोरीयोसें अपनें परिवारकी आजीविका करता था, एक दिन पांचसौ चोरोंकों लेकर राजगृह नगरमें जंबूजीके घरकों लूटनें आया, तहां जंबूस्वामीनें तिसकों प्रतिबोध करा, तब तिसनें पांचसौ चोरोंके साथ दिक्षा श्रीजंबूस्वामीजीके साथ लीनी. इत्यादि जबूस्वामीजीका और प्रभवस्वामीजीका अधिकारजम्बूचरित्र, तथा परिशिष्टपर्वादिग्रंथोंसें जानलेना. प्रभवस्वामी तीसवर्ष गृहस्थ पर्याय, चौमालीश वर्ष व्रतपर्याय, तथा एकादश वर्ष युगप्रधान पदवी, सर्व पंचाशी वर्षकी आयुपूरी करके श्रीमहावीरस्वामीसें पचहत्तर वर्ष पीछे स्वर्ग गया ॥

४ श्रीप्रभवस्वामीके पाट ऊपर, श्रीशय्यंभव स्वामी बैठे, जिनोनें मनक साधुकेवास्ते दशवैकालिक सूत्र बनाया, तिनकी उत्पत्ति ऐसें है एकदा प्रस्तावे प्रभवस्वामीनें रात्रिमें विचार करा कि मेरे पाट ऊपर कौन बैठेगा, पीछे ज्ञान बलसें अपणे सर्वसंघमें पाट योग्य कोई न देखा, तब परदर्शनीयोको ज्ञान बलसें देखनें लगा, तब राजगृह नगरमे शय्यंभवभट्टकों यज्ञकरते हुयेको अपने पाट योग्य देखा, पीछे प्रभवस्वामी विहारकरकें, सपरिवारसें राजगृह नगरमे आये, उहा दो साधुओकों आदेश दीया कि तुम यज्ञपाडेमे जाकर भिक्षाके वास्ते धर्म लाभ कहो, और यज्ञ करने वालोंको ऐसे कहो—"अहोकष्टमहोकष्टं तत्वं विज्ञायते नहि" तब तिन साधुओंनें पूर्वोक्त गुरुका कहना सर्व

कीया। जब ब्राह्मणोनें "अहोकष्ट" इत्यादि सुना, और तिस यज्ञ वाडेमें शय्यभव ब्राह्मणनें यज्ञ दीक्षा लीनी थी, तिसने यज्ञ वाडेके दरवाजेमे खडेथके, अहोकष्टं इत्यादि मुनियोंका कहना सुनके विचार करनें लगा, कि ऐसा उपशम प्रधान साधु होते हैं, इसवास्ते यह असत्य (झूठ) नही बोलते है, इस्से मनमे संशय होगया, तब उपाध्यायको पूछा कि तत्व क्या है, तब उपाध्यायनें कहा कि चार वेदमे जो कथन करा है सो तत्व है, क्योकि वेदोंके शिवाय और कोई तत्त्व नहीं है, तब शय्यभवनें कहा कि तू दक्षिणाके लोभसें मुझकों तत्व नहीं बतलाया है, क्योंकि राग द्वेष रहित, निर्मम, निःपरिग्रह, शांत, दांत, महांत मुनियो का कहना झूठा नही होता है, और तू मेरा गुरु नही तैनें तो जन्मसें इस जगत्कों ठगनाही सीखा है, इस वास्ते तूं शिक्षाके योग्य है, इसवास्ते यातो मुझे तत्व कह दे, नही तो तलवारसें तेरा शिर छेद करूगा, ऐसें कहके जब मियानसे तलवार काढी, तब उपाध्यायनें प्राणात कष्ट देखकें कहा हमारे वेदोंमेंभी ऐसें लिखा है और हमारी आम्नायभी यही है, जब हमारा कोई शिर छेद किया चाहे तब तत्व कहना नही तो नहीं कहना तिस वास्तेमें तुमको तत्त्व कह देता हुं कि इस यज्ञ स्थंभ के हेठे अर्हतकी प्रतिमा स्थापन करी है, और नीचेही तिसकों प्रच्छन्न होकर पूजते हैं, तिसके प्रभावसे यज्ञके सर्व विघ्न दूर हो जाते हैं, जेकर यज्ञस्थंभके नीचे अर्हतकी प्रतिमा न राखें तो महातपा सिद्धपुत्र, और नारद, ये दोनो यज्ञको विध्वस कर देते

हैं, पीछे उपाध्यायने यज्ञस्थंभ उखाडके अर्हतकी प्रतिमा दिखाई और कहा कि यह प्रतिमा जिस देवकी है, तिस अर्हतका कहा हुआ धर्म जीवदया रूप तत्व है, और यह जो वेद प्रतिपाद्य यज्ञ है वे सर्व हिंसात्मक रूप होनेसें विडंबना रूप है, परन्तु क्याकरें जेकर हम ऐसें न करें तो हमारी आजीविका नहीं चलती है, अब तूं तत्व जानले और मुझको छोड दे, अरु तूं परमार्हत होजा, क्योंकि मैनें अपने पेटके वास्ते तुझको वहुत दिन वहकाया है, तब शय्यंभवने नमस्कार करके कहा तूं यथार्थ तत्वके कहनेसें सच्चा उपाध्याय है, ऐसा कह कर शय्यंभवने तुष्टमान होकर यज्ञकी सामग्री जो सुवर्णपात्रादि थे, वे सर्व उपाध्यायको दे दीये, और प्रभवस्वामीके पास जाकर तत्व का स्वरूप पूछकर दीक्षा लेलीनी, शेष इनका वृत्तांत परिशिष्टपर्वादि ग्रंथसे जान लेना शय्यंभवस्वामी अठाईस वर्ष गृहस्थावास में रहे, इग्यारह वर्ष सामान्य साधु व्रतमें रहे, और तेवीस वर्ष युगप्रधानाचार्य पदवीमें रहे, इसीतरें सर्वायु बाशठ वर्ष भोगवके श्रीमहावीर भगवंतके अठानवे वर्ष पीछे स्वर्ग गये ॥

५ श्रीशय्यंभवस्वामीके पाट ऊपर यशोभद्र स्वामी बैठे, सो बावीश वर्ष गृहस्थावासमें रहे, और चौदहवर्ष व्रतपर्यायमें रहे, अरु पचास वर्ष तक युगप्रधान पदवी में रहे, इसीतरें सर्वायु छासी वर्ष का भोगके श्रीमहावीरस्वामीसें (१४८) वर्ष पीछे स्वर्गमें गये ॥

६ श्रीयशोभद्रस्वामीकेपाट ऊपर, श्री संभूतविजय स्वामी बैठे,

सो वैतालीस वर्ष तक गृहस्थ रहे, और चालीश वर्ष व्रत पर्याय में रहे, तथा आठ वर्ष युगप्रधान पदवीमें रहे, सर्वायु नव्वे वर्ष भोगके स्वर्गमें गये, ॥ श्रीसंभूतविजयस्वामीके पाट ऊपर, श्री भद्रबाहुस्वामी बैठे सो भद्रबाहुस्वामीने, १ आवश्यक निर्युक्ति, २ दशवैकालिक निर्युक्ति, ३ उत्तराध्ययन निर्युक्ति, ४ आचारांगकी निर्युक्ति, ५ सूत्रकृदंग निर्युक्ति, ६ सूर्यप्रज्ञप्ति निर्युक्ति, ७ ऋषिभाषित निर्युक्ति, ८ कल्प निर्युक्ति, ९ व्यवहार निर्युक्ति, १० दशा निर्युक्ति, ये दशनिर्युक्तियो, और १ कल्प, २ व्यवहार, ३ दशाश्रुतस्कंध, यह नवमे पूर्वसें उद्धार करके बनाये, और एक बहुत बडा भद्रबाहु नामें संहिता ज्योतिष शास्त्र बनाया, उपसर्गहर स्तोत्र बनाया, जैनमतीयों ऊपर बहुत उपकार करा । इनही भद्रबाहुस्वामीजीका सगाभाई वराहमेहर हूआ, वो पहिले तो जैनमतका साधु हुवा था, फेर साधुपणा छोडके वराही संहिता बनाई और जो वराहमिहर विक्रमादित्यकी सभा का पंडित था, वो दूसरा वराहमिहर था, संहिता कारक वो नही हूआ, इसका सम्पूर्ण वृत्तात परिशिष्टपर्वसे जानलेना, श्रीभद्रबाहुस्वामी गृहस्थावासमें पैंतालीश वर्ष रहे, सत्तरे वर्ष व्रतपर्याय, अरु चौदह वर्ष युगप्रधान, सर्व मिलकर छहत्तर वर्ष का आयु भोगके श्रीमहावीरस्वामीसें एकसौसित्तर (१७०) वर्ष पीछे स्वर्ग गए ॥

भद्रबाहु स्वामीके पाट ऊपर श्रीस्थूलभद्रस्वामी बैठे इनका बहुत वृत्तात है सो परिशिष्टपर्वग्रन्थसें जान लेना, १ श्री

प्रभवस्वामी, २ श्री सय्यंभवस्वामी, ३ श्री यशोभद्रस्वामी, ४ श्री संभूतविजयजी, ५ श्री भद्रबाहुस्वामी, ६ श्रीस्थूलभद्रस्वामी, यह छहों आचार्य चौदह पूर्वकेवेत्ता थे, श्रीस्थूलभद्रस्वामी तीस वर्ष गृहस्थावासमें रहे, चौवीस वर्ष व्रत पर्याय, अरु पैतालीस वर्ष युगप्रधान पदवी, सर्वायु निन्नानवें वर्षका भोगके श्रीमहावीरस्वामीके पीछे (२१५) वर्षे स्वर्ग गये, श्रीमहावीरस्वामीसें दोसौ चौदह वर्ष पीछे आपाढाचार्यके शिष्य तीसरे निन्हव हूये ॥

श्रीस्थूलभद्रस्वामी के वखत में नवनंदों का एकसौ पंचावन (१५५) वर्षका राज्य उछेद करकें चाणिक्य ब्राह्मणनें चंद्रगुप्त राजाकों राजसिंहासनऊपर बैठाया, और चंद्रगुप्तके संतानोनें एकसौ आठ वर्षतक राज्य कीया चंद्रगुप्त मोरपालका बेटा था, इसवास्ते चंद्रगुप्तका मौर्यवंश कहते है, यह चंद्रगुप्त जैनमत का धारक श्रावकराजा था, यह चंद्रगुप्त, तथा नवनंदका वृत्तांत देखना होवे, तदा परिशिष्ट पर्व, उत्तराध्ययनवृत्ति तथा आवश्यक वृत्तिसें देख लेनां ॥

श्री स्थुलभद्रस्वामीके पीछे ऊपरले चार पूर्व, प्रथम संहनन, प्रथम संस्थान व्यवछेद हो गये, तथा श्रीमहावीरस्वामीसें दोसौ वीस (२२०) वर्ष पीछे अश्वमित्र नामा चौथा क्षणिकवादि निन्हव हूआ, और श्रीस्थूलभद्रजी के समय में बारा वर्षका दुर्भिक्ष (काल) पडा, उस समयमें चद्रगुप्तका राज था, तथा श्री महावीरस्वामीके पीछे (२२८) वर्ष व्यतीत हूए तब गंग नामा पांचमा निन्हव हुआ ॥

इति श्रीखरतरगच्छे श्रीजिनकीर्त्तिरत्नसूरिशाखायां क्रमाचत्परंपरायां वरीवृतति श्रीमज्जिनकृपाचन्द्रसूरयस्तेषामंतेवासी ज्येष्ठः समभवत्, विद्वच्छिरोमणिः श्रीमदानंदमुनिः तत् संगृहीते तस्याऽनुजेन उपाध्यायजयसागरेण संस्कारिते श्रीजंगमयुगप्रधानश्रीमज्जिनदत्तसूरीश्वरचरिते श्रीवीरप्रभोर्गणधरश्रुतकेवलि नाम संक्षिप्तचरित्रवर्णनो नाम द्वितीयसर्गः समाप्तः ॥



तिराजाके समयमें वहुत उन्नतिपर था, क्योंकि संप्रतिराजाका राज्य मध्यखंड और गंगापार और सिंधुपारके सर्व देशोंमे था, संप्रतिराजानें अपने नौकरोंको जैनके साधुओंका वेष वनाकर अपनें सेवक राजाओका जो शक, यवन, फारसादि, देशोंथे, तिन देशोंमें भेजे, तिनोंने तिन राजाओंको जैनके साधुओंका आहार-विहार आचारादि सर्व वताया और समझाया पीछेसें साधुओंका विहार तिन देशोंमे कराकर लोकोंको जैन धर्मी करा, और संप्रतिराजानें (९९०००) निनानवें हजार जीर्णयाने जीरण जिनमंदिरोंका उद्धार कराया, अर्थात् पुराना टूटा फूटांकों नया वनाया, और छत्तीस हजार (३६०००) नवीन जिनमंदिर वनवाये, और सोने, चांदी, पीतल, पाषाण, प्रमुखकी सवाक्रोड प्रतिमा वनवाई, तिसके वनवाये मंदिर नाडोल गिरनार शत्रुंजय रतलाम प्रमुख अनेक स्थानोंमें खडे हमनें अपनी आंखोसें देखे हैं। और संप्रतिराजाकी वनवाई जिन प्रतिमा तो हमनें सेंकडो देखी हैं, इस संप्रतिराजाका परिशिष्ट पर्वादि ग्रंथोसें समग्र अधिकार जाण लेंना २

श्रीआर्यसुहस्ती सूरि [illegible] जहां
नीका पुत्र अवंतीसुकुमालकों [illegible]
सुकुमालनें काल करा था, [illegible]
काल [illegible] पुत्रनें जिनमंदिर [illegible]
[illegible]
जोर पाकर
स्थापन

प्रसिद्धकर दीया, पीछे जब राजा विक्रम उज्जयनमें हुआ, तिस अवसरमें कुमुदचंद्र, अर्थात् सिद्धसेनदिवाकर नामा जैनाचार्यने कल्याणमंदिर स्तोत्र बनाया, तब शिवका लिंग फटकर बीचमेंसे पूर्वोक्त श्रीपार्श्वनाथकी मूर्त्ति फिर प्रगट हुइ ॥

इनका संबंध ऐसा है कि, विद्याधर गच्छमें, जब स्कंदिलाचार्यका शिष्य वृद्धवादि आचार्य थे, तिस अवसरमे, उज्जयनका राजा विक्रमादित्य था, तिसका मंत्री कात्यायन गोत्री देवऋषिनामा ब्राह्मण, तिसकी दैवसिका नाम स्त्री, तिनका पुत्र मुकुंद सो, विद्याके अभिमानसें सारे जगतके लोकोको तृणवत् (घासफुसशमान) समजताथा, और ऐसा जानता था कि मेरे समान बुद्धिमान् कोइभी नही, और जो मुझकों वादमें जीतलेवे, तो मैं उसकाही शिष्य बनजाऊं, पीछें तिसने वृद्धवादीकी बहुत कीर्त्ति सुनी उनके सन्मुख जाने वास्ते सुखासन ऊपर बैठके भृगुकच्छ (भरुंच) कीतरफ चला जाता था, तिस अवसरमें वृद्धवादीभी रस्तेमे सन्मुख आता हुआ मिला, तब आपसमें दोनोंका आलाप सलाप हूआ पीछे मुकुंदजीने कहा कि, मेरे साथ तुम वाद करो, तब वृद्धवादीने कहा कि वादतो करु, परतु इस जंगलमें जीते हारेका कहनेवाला कोइ साक्षी नही, तब मुकुंदजीनें कहा कि, यह जो गौ चरानेंवाले गोप हैं, येही मेरे तुमारे साक्षी रहे, ये जिसको कहदेंगे हारा सो हारा, तब वृद्धवादीनें कहा बहुत अच्छा येही साक्षी रहे, अब तुम बोलो, तब मुकुंदजीने बहुत संस्कृत भाषा बोली और चुप करी, तब गोपोने कहा यह तो

कुछभी नहीं जानता केवल उंचा बोलके हमारे कानोंको पीडा देता है, तब गोप कहने लगे, हे वृद्ध तुम बोल! पीछे वृद्धवादी अवसर देखकें कच्छा बांधकर तिन गोपोंकी भाषामें कहनें लगे, और थोडे थोडे कूदनेंभी लगे, जो छंद उचारा सो कहते हैं "नविमारिये नविचोरियें, परदारागमण निवारिये ॥ थोडाथोडादाइयें, सग्गि मटामटजाइयें ॥१॥ फेरभी बोले, और नाचनें लगे ॥ छंद ॥ कालो कंवल नीचोवट्ट, छाछें भरिओ दीवड थट्ट ॥ एवड पडीओ नीले झाड, अवरकिसोछे सग्ग निलाड ॥ २ ॥ यह सुनकर गोप बहुत खुशी हुये और कहनें लगे कि वृद्धवादी सर्वज्ञ है इसनें कैसा मीठा कानोंकों सुखदायी हमारे योग्य उपदेश कहा और मुकुंद तो कुछ नहीं जानता, तब मुकुंदजीने वृद्धवादीकों कहा कि हे भगवन्! तुम मुझकों दीक्षा देकें अपना शिष्य बनावो, क्योंकि मेरी प्रतिज्ञाथी, के जो गोप मुझे हारा कहेंगे, तो में हारा और तुमारा शिष्य बनूंगा, यह सुनकर वृद्धवादीनें कहा, कि भृगुपुरमें राजसभाके वीच तेरा मेरा वाद होवेगा, परंतु यह गोपोंकी सभामें वादही क्या है, तब मुकुंदने कहा, मैं अवसर नहीं जानता आप अवसरके ज्ञाता हो इसवास्ते मै हारा पीछें वृद्धवादीने राजसभामें उसको पराजय करा, तब मुकुदनें दीक्षा लीनी, गुरुनें उनका नाम कुमुदचंद्रजी दीया, पीछे जब आचार्य पदवी दीनी, तब फिर सिद्धसेन दिवाकर नाम रक्खा, पीछे वृद्धवादी तो और कहींकों विहार कर गये, और सिद्धसेन दिवाकरकों सर्वज्ञ पुत्र ऐसा विरुद दीया ऐसा विरुद वोलते हुए अवंती नगरीके

चौकमें लाये, तिस अवसरमें राजा विक्रमादित्य हाथी ऊपर चढा सन्मुख मिला तब राजानें सर्वज्ञ पुत्र ऐसा विरुद सुनके तिनकी परीक्षा वास्ते, हाथी उपर बैठेहीनें मनसें नमस्कार करा तब आचार्यनें धर्मलाभ कहा, राजानें पूछा कि विनाही वंदना करे, आप मेरेको धर्मलाभ क्यो कर कहा, क्या यह धर्मलाभ बहुत सस्ता है, तब आचार्यनें कहा यह धर्मलाभ क्रोडचिंतामणिरत्नोसेभी अधिक है जो कोई हमको वंदना करता है उसको हम धर्मलाभ कहते हैं और ऐसेंभी नही जो तुमने हमकों वंदना नही करी तुमनेंभी अपनें मनसें वदना करी, तो मनही सर्व कार्यमें प्रधान है, इस वास्ते हमनें धर्म लाभ कहा है, और तुमनें मेरी परीक्षा वास्तेही मनमे नमस्कार करा है, तब विक्रमराजा तुष्टमान होकर, हाथीसें नीचें उतरकर सर्वसंघकी समक्ष वंदना करी, और एक क्रौड अशर्फी दीनी, परतु आचार्यनें अशर्फीयो नही लीनी, क्योंकि वे त्यागी थे, और राजाभी पीछा नही लेता, तब आचार्यकी आज्ञासें संघपुरुषोनें जीर्णोद्धारमे लगादीनी, राजाके दफतरमे तो ऐसा लिखा है ॥ श्लोक ॥ धर्मलाभ इति प्रोक्ते, दूरादुच्छ्रितपाणये ॥ सूरये सिद्धसेनाय, ददौ कोटिं धराधिपः ॥ १ ॥ श्री विक्रमराजाके आगें सिद्धसेन दिवाकरने ऐसेंभी कहा था कि ॥ गाथा ॥ पुण्णे वाससहस्से । सयंमि वरिसाण नवनवइगए ॥ होई कुमारनरिंदो, तुहविक्कमराय सारित्थो ॥ १ ॥ अन्यदा सिद्धसेन चित्रकूटमे गये, तहां बहुत पुराने जिनमंदिरमे एक बडा मोटा स्थंभ देखा, तब किसीको पूछा कि यह स्थभ किसतरांका है,

यह सुनकर किसीनें कहा कि यह स्थंभ औषध द्रव्यमय जलादि करकें अभेद्य वज्रवत् है, इस स्थंभमें पूर्वाचार्योंनें बहुत रहस्य विद्याके पुस्तक स्थापन करे है, परंतु किसीसें यह स्थंभ खुलता नहीं यह सुनकर सिद्धसेन आचार्यनें तिस स्थंभकों सूंघा तिसकी गंधसें तिसकी प्रतिपक्षी औषधीयोंका रस, लगाया तिस्सें वो स्थंभ कमलकी तरें खुल गया तब तिसमें पुस्तक देखा, तिसमें सुं एक पुस्तक लेकर वांचा, तिसके प्रथम पत्रमें दो विद्या लिखी पाई, एक सरसों विद्या, और दूसरी सुवर्णविद्या, तिसमें सरसों विद्या उसकों कहते है कि, जो काम पडे तब मंत्रवादी जितने सरसोंके दाने जपके जलाशयमें गेरे, उतनेही अश्वार बैतालीश प्रकार के आयुधों सहित बाहिर निकलके मैदानमें खडे हो जाते हैं तिनोंसें शत्रुकी सेना भंग हो जाती है, पीछे जब वो कार्य पूरा हो जाता है तब अश्वार अदृश्य हो जाते हैं और दूसरी हेमविद्यासें विनामेहनतके जितना चाहे, उतना सुवर्ण हो जाता है तब ये, दो विद्या सिद्धसेननें लेलीनी, पीछे जब आगे वांचने लगा, तब स्थंब मिल गया सर्व पुस्तक बीचमें रह गये, और आकाशमें देववाणी हुई, कि तूं इन पुस्तकोंके वाचने योग्य नहीं आगे मत वांचना, वांचेगा तो तत्काल मर जायगा, तब सिद्धसेननें डरकें विचार करा कि दो विद्या मिली दोही सही, पीछे चित्रोडसें विहार करके पूर्वदेशमें कुमारपुरमें गये, तहां देवपाल राजा था तिसकों प्रतिबोधके पक्का जैन धर्मी करा, तहां वो राजा सिद्धांत श्रवण करता है, जब ऐसें कितनाक काल व्यतीत हुआ, तब एकदा समय राजा छाना

आया, और आंसुसें नेत्र भरकर कहने लगा कि—हे भगवन् हम वडे पापी हैं क्यों कि आपकी ऐसी उत्तम गोष्टिका रस नही पी-सक्ते हैं कारण कि हम वडे संकटमे पडे है, तव आचार्यने कहा तुमको क्या संकट हुआ, राजा कहने लगा कि बहुत मेरे वैरी राजे एकठे होकर मेरा राज्य छीना चाहते है तव फेर आचार्यने कहा, कि हे राजन् तूं आकुल व्याकुल मत हो, जब मैं तेरा सा-हायकहों तो फेर तुझे क्या चिंता है यह वात सुनकर राजा वहुत राजी हुआ, पीछे आचार्यनें राजाको पूर्वोक्त दोनो विद्या-योंसें समर्थ कर दीया, तिन विद्यायोसे परदल भंग हो गया ति-नका डेरा डंडा सर्व राजानें लूंट लीया, तव राजा आचार्यका अत्यत भक्त हो गया, उस्से आचार्य सुखोंसे पडके शिथिलाचारी होगया, यह स्वरूप वृद्धवादीजीनें सुना, पीछे दया करके तिनका उद्धार करने वास्ते तहा आये दरवाजे आगे खडे होकर कहला भेजा कि एक वूढा वादी आया है, तव सिद्धसेननें बुलाकर अपनें आगे बैठाया वृद्धवादीसर्व अपना शरीर वस्त्रसे ढांककर वोले:—"अण फुल्लियफुल्ल मतोडहिं मारोवामोडिहि मणुकुसुमेहि ॥ अच्चिनिरजणं जिण, हिंटहिकाइवणेणवणु ॥ १ ॥" इस गाथाको सुन-कर सिद्धसेननें विचारभी करा परतु अर्थ न पाया तव विचार करा कि क्या यह मेरे गुरु वृद्धवादी हैं जिनके कहेका मैं अर्थ नही जानता हू पीछे जव वार वार देखने लगा तव जाना कि यह मेरा गुरु हैं पीछे नमस्कार करके क्षमापन मागा, और पूर्वोक्त श्लोकका अर्थ पूछा तव वृद्धवादी कहने लगे "अणफुल्लियेत्यादि"

अणफुल्लियफुल्ल प्राकृतके अनंत होनेसें अप्राप्त फूल फलोंकों मत तोड, भावार्थ यह है कि योग जो है, सो कल्पवृक्ष है, किसतरे कि जिस योग रूप वृक्षमें तप नियम तो मूल है, और ध्यान रूप वडा स्कंध है, तथा समतापणां कविपणां वक्तापणां, यश, प्रताप, मारण, उच्चाटन, स्तंभन, वशीकरणादि सिद्धियों कि जो सामर्थ्य सो फूल है, अरु केवलज्ञान फल है, इससें अभी तो योगकल्प-वृक्षके फूलही लगे हैं सो केवल ज्ञानरूप फल करकें आगे फलेंगे, इसवास्ते तिन अप्राप्त फल पुष्पोंकों क्यों तोडता है अर्थात् मत तोड ऐसा भावार्थ है, तथा "मारोवा मोडिहिं" जहां पांच महा-व्रत आरोपा है तिनको मत मरोड "मणुकुसुमेत्यादि" मनरूप फूले करी निरंजनं जिनं पूजय (निरंजन जिनकों पूज) "वनात् वनंकिहिंडसें" राजसेवादि बुरे नीरस फल क्यों करता है इति पद्यार्थ, तव सिद्धसेन सूरिनें गुरु शिक्षाकों अपने शिर ऊपर धरकें और राजाको पूछके वृद्धवादी गुरुके साथ विहार करा, और नि-विड चारित्र धारण करा, अनेक आचार्योंसें पूर्वोका ज्ञान सीखा, एकदा सिद्धसेनजीनें सर्वसंघकों एकठो करकें कहा कि तुम कहोतो सर्वागमोंको मे संस्कृत भाषामें कर देउं, तव श्रीसंघने कहा क्या तीर्थंकर गणधर संस्कृत नही जानते थे, जो तिनहोनें अर्द्धमागधी भाषामें आगम करे ऐसी वात कहनेसें तुमको पाराचिक नाम प्रायश्चित्त लागा हम तुमसें क्या कहें तुम आपही जानते हो, तव सिद्धसेनने गुरुका वचन प्रमाण करकें कहा कि, मैं मौन करकें वारावर्षका पारांचिक नाम प्रायश्चित्त लेके गुप्त मुख वस्त्रिका, रजो-

हरणादि लिंग करकें और अवधूत रूप धारके फिरुंगा, ऐसें कह कर गच्छकों छोडके नगरादिकोंमें पर्यटन् करने लगे, बारा वर्षके पर्यतमें उज्ञयन नगरीमें महाकालके मंदिरमें शेफालिकाके फूलों करकें वस्त्ररगे पहने हुए सिद्धसेनजी जाके बैठा, तब पूजारी प्रमुख लोकोंने कहा तुम महादेवको नमस्कार क्यों नही करता सिद्धसेन तो बोलतेही नहीं हैं ऐसें लोकोंकी परंपरासें सुनकर विक्रमादी त्यनेभी तहां आकर कहा "क्षीरलिलिक्षो भिक्षो किमिति त्वया देवो न वंद्यते" तब सिद्धसेननें कहा मेरे नमस्कारसें तुमारे देवका लिग फट जायगा फेर तुमकों महादुःख होवेगा, मै इस वास्ते नमस्कार नही करता हुं तब राजानें कहा लिंग तो फट जानेदो परतु तुम नमस्कार करो पीछे सिद्धसेनजी पद्मासन बैठके कहने लगा, तथाहि ॥ श्लोक इंद्रवज्रा वृत्त ॥ स्वयंभुवं भूतसहस्रनेत्र, मनेकमेकाक्षरभावलिंगं ॥ अव्यक्तमव्याहतविश्वलोक, मनादिम-ध्यातमपुण्यपापं ॥ १ ॥ इत्यादि प्रथमही श्लोक पढनेसें लिंगमेंसें धूंआ निकला. तबलोक कहने लगे शिवजीका तीसरा नेत्र खुला है, अब इस भिक्षुकों अग्निनेत्रसें भस्मकरेगा, तब तो विजलीके तेजकी तरे तडतडाट करता प्रथम अग्नि निकला, पीछे श्रीपार्श्व-नाथजीका बिंब प्रगट हूआ, तब वादी सिद्धसेननें कल्याणमंदिर नवीन स्तवन करकें क्षमापन मागा तब राजा विक्रमादित्य कहने लगा कि हे भगवन् यह क्या अदृश्यपूर्व देखनेमे आया यह कौं-नसा नवीन देव है और यह प्रगट क्यों कर हुआ, तब सिद्धसेन-जीनें कहा, अवतीसुकुमालका पुत्र महाकालनें पिताके नामसें

अवंती पार्श्वनाथका मंदिर और मूर्त्ति बनाय स्थापन करी थी, तिसकी कितनेक वर्ष लोकोनें पूजा करी, अवसर पाकर ब्राह्मणोंने ज़िनप्रतिमाकों जमीनमें दाटके ऊपर यह शिवलिंग स्थापनकरा इत्यादि सर्व वृत्तांत कहा, और हे राजन् इस मेरी स्तुतिसे शासन-देवताने शिवलिंग फाडके बीचमेंसें यह प्रतिमा प्रगट कर दीनी, अब तूं सत्यासत्यका निर्णय कर ले, तब विक्रमादित्यनें एकसौ-गाम मंदिरके खरच वास्ते दीये और देवके समक्ष गुरुमुखसे बाराव्रत ग्रहण करे, और सिद्धसेनकी बहुत महिमा करी अपने स्थानमे गया और वांदीद्र (सिद्धसेनदिवाकरकों) गुरुने जिनधर्मकी प्रभावनासें तुष्टमान होकर संयमें लीया, अरु पूर्ववत् आचार्य बनाया ॥

एकदा प्रस्तावे सिद्धसेन दिवाकर विहार करते हुये मालवेके देशमें जो ओंकारनामें नगर है, तहां गये तिस नगरके भक्त श्रावकोनें आचार्यकों विनती करी, जैसें हे भगवन् इसी नगरके समीप एक गाम था, तिसमें सुंदर नामा राजपुत्र ग्रामणी था, तिसकी दो स्त्रीया थी, एक स्त्रीके प्रथम पुत्री जन्मी वो स्त्री मनमें खीजी तिस अवसरमे उसकी सौकभी प्रसूत होनेवाली थी, तब तिस बेटीवालीनें विचारा कि इसके पुत्र न होवे तो ठीक है, क्यो कि नही तो यह पतिकों वल्लभ हो जावेगी, तब दाईसें मिलके उस्से पैदा हुआ पुत्रकों बाहिर गिरा दीया, और तत्कालका मरा हुआ लडका उसके आगें रख दीया, पीछे जो लडका बाहिर गेरा गया था, उसकों कुलदेवीनें गौकारूप करकें पाला ,जब आठ

वर्षका हुआ तब इस ओंकार नगरके शिवभवनके अधिकारी भरटनें देखा और,अपना चेला बना लीया, एकदा प्रस्तावे कान्यकुब्ज देशका आंखोंसे आंधा राजाने दिग् विजय कार्यसें ,तहां पडाव करा तब रात्रिमें उस छोटे चेलेको शिवभक्त व्यंतर देवतानें कहा कि शेषभोग राजाकों देना उसकी आंख अच्छी हो जावेगी तैसेंही करा तिस्सें राजाकी आख अच्छी होगई तब राजाने सो गाम मंदिरके खरच वास्ते दीये और यह बडा ऊंचा जो शिव का मंदिर है सोभी उसीनें बनवाया, और हम इस नगरमे रहते हैं परतु मिथ्या दृष्टियोंके बलवान् होनेंसे हम जिनमंदिर बनाने नही पाते हे इस वास्ते आपसें वीनती करते है, कि इस मदिरसे अधिक हमारा मंदिर यहां बने तो ठीक है, और आप सर्वतरेंसें समर्थ हो तिनका वचन सुनकर वादींद्रनें अवंतीमे आकर चार श्लोक हाथमे लेकर विक्रमादित्यके द्वार पास आये, दरवाजे दारके मुखसे राजाकों कहाया "दिदृक्षुर्भिक्षुरायात । स्तिष्ठति द्वारवारितः । हस्तन्यस्तचतुःश्लोकः । उतागच्छतु गच्छतु ॥ १ ॥" तिस श्लोकको सुनकर विक्रमादित्यनें बदलेका श्लोक लिखकर भेजा "दत्तानिदशलक्षाणि, शासनानिचतुर्दश ॥ हस्तन्यस्तचतुःश्लोकः ॥ उतागच्छतु गच्छतु ॥ २ ॥" तिस श्लोकको सुनकर आचार्यनें कहा भेजा कि, भिक्षु तुमकों मिला चाहता है, परतु धन नहीं लेता, तब राजाने सन्मुख बुलवाये और पिछानके कहने लगा, कि गुरुजी बहुत दिनों सें दर्शन दीया, तब आचार्य कहने लगे धर्मकार्यके कारणेसे बहुत दिन हुये चिरसें आना हुआ,

अव चार श्लोक तुम सुनो ॥ "अपूर्वेयं धनुर्विद्या, भवता शिक्षिता कुतः ॥ मार्गणौघः समभ्येति, गुणो याति दिगंतरे ॥ १ ॥ सरस्वती स्थिता वक्त्रे, लक्ष्मीः करसरोरुहे ॥ कीर्त्तिः किं कुपिता राजन् येन देशांतरे गता ॥ २ ॥ कीर्त्तिस्ते जातजाड्येव, चतुरंभोधिमज्जनात् । आतपाय धरानाथ, गता मार्तंडमंडलं ॥ ३ ॥ सर्वदासर्वदोसीति, मिथ्या संस्तूयसे जनैः ॥ नारयो लेभिरे पृष्ठं न वक्षः परयोषितः ॥ ४ ॥" तव यह चारों श्लोक सुनके राजा वहुत खुश हुआ, और आचार्यकों कहने लगा, जो मेरा राज्यमें सार है, सो मांगो तो देदेउं, तव आचार्यनें कहा मुझेतो कुछभी नही चाहता, परंतु ओंकार नगरमे चतुर्द्वार जैनमंदिर शिवमंदिरसें उंचा वनाओ, और प्रतिष्ठाभी कराओ, तव राजानें वैसेंही करा तव जिनमत प्रभावना देखकें संघ तुष्टमान हुआ, इत्यादि प्रकारसें जैनधर्मकी प्रभावना करते हुए दक्षिणदेशमे प्रतिष्ठानपुरमे जाकर अनशन करके देवलोक गये, तन तहासे संघने एक भट्टको सिद्धसेनकी गच्छपास खबर करनेंको भेजा तिस भट्टनें सूरियोंकी सभामे आधाश्लोक पढा और वार वार पढताही रहा, वो आधाश्लोक यह हैः—स्फुरंति वादिखद्योताः साम्प्रतं दक्षिणापथे ॥ जव वार वार यह अर्द्ध श्लोक सुना तव सिद्धसेनकी वहिन साधवीनें सिद्ध सारखत मंत्रसें अर्द्ध श्लोक पूरा करा । नूनमस्तंगतो वादी सिद्धसेनो दिवाकरः ॥ १ ॥ पीछे भट्टनें सर्व वृत्तांत सुनाया, तव संघकों वडा शोक हुआ ॥ इति सिद्धसेन दिवाकरका प्रसंगसें संवंध कथन करा ॥

यह श्रीआर्य सुहस्ति आचार्य तीस वर्ष गृहस्थावासमें रहे, और

चौवीसवर्ष व्रत पर्याय तथा छैयालीश वर्ष युगप्रधान पदवी सर्व मिलकर एकसौ वर्षकी आयु भोगकें श्रीमहावीरस्वामीसें दोसौ एकानवे (२९१) वर्ष पीछे स्वर्ग गये, ॥ ११ ॥

॥ १२ ॥ श्रीआर्य सुहस्तिसूरिके पाटऊपर, श्रीसुस्थित सूरि हुवा तिनोनें क्रोडोंवार सूरिमंत्रका जापकरा, इसवास्ते गच्छका कोटिक, ऐसा दूसरा नाम श्रीसंघनें रक्खा, क्योंकि श्री सुधर्मास्वामीसे लेकर दशपाटतक तो अणगार निग्रंथगच्छ नाम था-पीछे दूसरा कोटिक गच्छनाम हुवा ॥

॥१३॥ श्री सुस्थितसूरिके पाट ऊपर श्री इंद्रदिन्नसूरि हुआ, इस अवसरमें श्री महावीरस्वामीसे चारसौ त्रेपन (४५३) वर्ष पीछे गर्द-भिल्लराजाके उच्छेद करणेवाला, दूसरा कालिकाचार्य हुआ, इस-की कथा कल्प सूत्रमें प्रसिद्ध है, और श्रीमहावीरस्वामीसें (४५३) वर्ष पीछे भृगुकच्छ (भडोंचमें) श्रीआर्य खपुटाचार्य विद्याचक्र-वर्त्ती हुआ, इनका प्रबंध श्रीप्रबंधचिंतामणिग्रंथ, तथा हारिभद्री आ-वश्यककी टीकासें जान लेना, और (४६०) वर्ष पीछे आर्यमंगु, वृद्धवादी, पादलिप्त तथा कल्याण मंदिरका कर्त्ता ऊपर जिसका प्रबंध लिख आये सो सिद्धसेन दिवाकर हुआ, जिनोने विक्रमादि-त्यको जैनधर्मी करा सो विक्रमादित्य श्री महावीरस्वामीसे (४७०) वर्ष पीछे हुआ, सो (४७०) वर्ष ऐसें हुए है—जिस रात्रिमे श्रीमहावीरस्वामीजी निर्वाण हुए, उस दिन अवंति नगरीमे पालक नामा राजाको राज्याभिषेक हुआ, यह पालक चंद्रप्रद्योतनका पोता था

१० दत्तसूरि०

तिसका राज्य (६०) वर्ष रहा, तिसके पीछे श्रेणिकका बेटा कोणिक और कोणिकका बेटा उदायी जब विना पुत्रके मरा, तब तिसकी गद्दी उपर नंद नामा नाइ बैठा, तिसकी गद्दीमें सर्व नंदनामा नव राजा हुए, तिनका राज्य (१५५) वर्ष तक रहा, नवमें नंदकी गद्दी ऊपर मौर्यवंशी चंद्रगुप्त राजा हुआ, तिसका बेटा बिंदुसार, तिसका बेटा अशोक, तिसका बेटा कुणाल तिसका बेटा संप्रति महाराजादि हुए, इन मौर्यवंशीयोंका सर्व राज (१०८) वर्ष तक रहा, यह पूर्वोक्त सर्व राजा प्रायें जैनमतवाले थे, तिनके पीछे तीस वर्ष तक पुष्पमित्र राजाका राज्य रहा, तिस पीछे बलमित्र भानुमित्र, यह दोनों राजाका राज्य (६०) वर्ष तक रहा, तिस पीछे नभवाहन राजाका राज्य (४०) वर्ष-तक रहा, तिस पीछे तेरा वर्ष गर्दभिल्लका राज्य रहा, और चार वर्ष साखीराजावोंका राज्य रहा, पीछे विक्रमादित्यनें साखीरा जावोंकों जीतके अपना राज्य जमाया, यह सर्व (४७०) वर्ष हुए॥

॥ १४ ॥ श्री इंद्रदिन्न सूरिके पाट ऊपर श्रीदिन्नसूरि हुये ॥

॥ १५ ॥ श्रीदिन्न सूरिके पाट ऊपर, श्री सिंहगिरी सूरि हुये ॥

॥ १६ ॥ श्रीसिंहगिरिजीके पाट ऊपर श्री वज्रस्वामी हूये, जिनकों बाल्यावस्थामें जातिसरणज्ञान था, और आकाशगामनी विद्यामी थी, जिनोंने दूसरे बारा वर्षी कालमें संघकी रक्षा करी, तथा जिनोनें दक्षिणपंथमें बौद्धोंके राज्यमें श्रीजिनेंद्रपूजा वास्ते फूल लाके दीये, बौद्धराजाकों जैनमती करा, यह आचार्य

पिछला दशपूर्वका पाठक हुआ, जिनोसें हमारी वज्र शाखा उत्पन्न हुई, इनका प्रबंध आवश्यक वृत्तिसें जान लेना, सो वज्र-स्वामी श्रीमहावीरस्वामीसें पीछे चार सौ छनवे और विक्रमादित्यके संवत छवीसमें जन्मे, और आठ वर्ष घरमें रहे, चौमालीस वर्ष सामान्य साधुव्रतमें रहे, और छत्तीस वर्ष युगप्रधान पदवी मे रहे, सर्वायु अट्ठाशी वर्षकी भोगी, तथा इन आचार्यके समयमें जावड शाह सेठनें श्री शत्रुंजय तीर्थका विक्रम संवत् (१०८) मे तेरहमा बडा उद्धार करा, तिसकी श्रीवज्रस्वामीनें प्रतिष्ठा करी, यह श्रीवज्रस्वामी श्रीमहावीरस्वामीसें (५८४) वर्ष पीछे स्वर्ग गये, इन श्री वज्रस्वामीके समयमे दशमा पूर्व, और चौथा संहनन, और संस्थान, विच्छेद होगये, यहां श्री सुहस्ती सूरि से लेकें श्रीवज्रस्वामी तक अपर पट्टावलियोंमें १ श्रीगुणसुंदरसूरि, २ श्रीकालिकाचार्य, ३ श्रीस्कंधलाचार्य, ४ श्रीरेवतीमित्र,सूरि, ५ श्रीधर्मसूरि, ६ श्रीभद्रगुप्ताचार्य, ७ श्रीगुप्ताचार्य, यह सात क्रमसें युगप्रधान आचार्य हुये, तथा श्रीमहावीरस्वामीसें पांचसौ तेतीस (५३३) वर्ष पीछे श्रीआर्यरक्षितसूरिनें सर्व शास्त्रोंके अनुयोग पृथग् कर दीये ये प्रबध आवश्यक वृत्तीसें जान लेना, तथा श्रीम-हावीरस्वामीसें (५४८) में वर्षे त्रैराशिकके जीतनेवाले श्रीगुप्तसूरि हुये, तिनका प्रबंध उत्तराध्ययनकी वृत्ति, तथा श्रीविशेषावश्यकसें जान लेना, जिसनें त्रैराशिक मत निकाला तिसका नाम रोहगुप्त था, वो श्रीगुप्तसूरिका चेला था, जिसका उलूक गोत्र था जब रोह-गुप्त गुरुके आगे हारा, और मत कदाग्रह न छोडा तब अंतरजिका

नगरीके बलश्रीराजानें अपने राज्यसें बाहिर निकाल दीया, तब तिस रोहगुप्तनें कणाद नामा शिष्य करा, उस्कों १ द्रव्य, २ गुण, ३ कर्म, ४ सामान्य, ५ विशेष, ६ समवाय, इन षट् पदार्थोंका स्वरूप बतलाया, तब तिस कणादनें वैशेषिक सूत्र बनाये तहांसें वैशेषिक मत चला ॥

१७ श्रीवज्र स्वामीके पाट ऊपर श्रीवज्रसेन सूरि बैठे, वे दुर्भिक्षमे श्रीवज्रस्वामीके वचनसें सोपारक पत्तनमे गये, तहां जिनदत्तके घरमें ईश्वरी नामा तिसकी भार्यानें लाख रूपकके खरचनेसें एक हांडी अन्नकी रांधी, जिसमें विष (जहर) डालने लगी, क्योंकि उनोंनें विचारा था कि अन्न तो मिलता नहीं तिसवास्ते जहर खाके सर्व घरके आदमी मरजायेंगे तिस अवसरमें श्रीवज्रसेनसूरि तहां आये, वो उनको कहनें लगे कि तुम जहर मत खाओ कलकों सुगाल हो जावेगा तैसेंही हुआ तब तिन शेठके चार पुत्रोंनें दीक्षा लीनी तिनके नाम लिखते हैः—१ नागेंद्र, २ चंद्र, ३ निर्वृति, ४ विद्याधर, तिन चारोंसे स्वस्व नामके चार कुल बने यह वज्रसेनसूरि नववर्ष तक गृहस्थावासमें रहे और (११६) वर्ष समान साधुव्रतमें रहे, तथा तीन वर्ष युग प्रधान पदवीमें रहे सर्वायु (१२८) वर्षकी भोगके श्री महावीरस्वामीसें (६२०) वर्ष पीछे स्वर्ग गये, तथा श्री वज्रस्वामी और वज्रसेन सूरिके बीचमें, आर्य रक्षित सूरि तथा श्रीदुर्बलिकापुष्पसूरि, यह दोनों युग प्रधान हुये, श्रीमहावीरस्वामीसें (५८४) वर्ष पीछे गोष्टा माहिल सा-

तमा निन्हव हुवा, तथा श्रीमहावीरस्वामीसें (६०९) वर्ष पीछे श्रीकृष्णसूरिका शिष्य शिवभूति नामे था, तिसने दिगंबर मत प्रवृत्त करा, सो अधिकार विशेषावश्यकादिकोसें जान लेना ॥

१८ श्रीवज्रसेन सूरिके पाट ऊपर श्रीचंद्रसूरि बैठा, तिनके नामसें गच्छका तीसरा नाम चंद्रगच्छ हुआ ॥

१९ श्रीचंद्रसूरिके पाट ऊपर श्री सामंतभद्रसूरि हुये, सो पूर्व गत श्रुतके जानकार थे ॥

२० श्रीसामंतभद्रसूरिके पाट ऊपर, श्रीदेव सूरि हुये, तथा श्रीमहावीरस्वामीसें (५९६) वर्ष पीछे कोरट नगरमें तथा सत्यपुरमें नाहडमंत्रीनें मंदिर बनवाया, प्रतिमाकी प्रतिष्ठा जज्जक सूरिनें करी, प्रतिमा श्रीमहावीरस्वामीकी स्थापन करी जिसकों "जयउ वीरसच्चउरिमंडण कहते हैं ॥

२१ श्रीवृद्धदेवसूरिके पाट ऊपर श्रीप्रद्योतनसूरि हुये ॥

२२ श्री प्रद्योतन सूरिके पाट ऊपर, श्रीमानदेवसूरि हुये, इनके सूरिपद स्थापनावसरमे दोनों स्कंधोंपर सरस्वती और लक्ष्मी साक्षात् देख कें यह चारित्रसे भ्रष्ट हो जावेगा ऐसा विचार करकें खिन्न चित्त गुरुको जानके गुरुके आगे ऐसा नियम करा कि-भक्तिवाले घरकी भिक्षा और दूध, दही, घृत, मीठा, तेल, अरु सर्व पकान्नका त्याग कीया, तब तिनके तपके प्रभावसें नाडोल पुर (जो पालीके पास है) तिसमें १ पद्मा, २ जया, ३ विजया, ४ अपराजिता, ए चार नामकी चार देवी सेवा करती देखी,

कोइ मूर्ख कहने लगा कि ए आचार्य स्त्रीयोंका संग क्यों करता है तब तिन देवीयोंनें तिसकों सिक्षा दीनी, तथा तिसके समयमें तिक्षिला नगरीमें बहुत श्रावक थे तिनमें मरीका उपद्रव हुआ तिसकी शांतिकेवास्ते श्री मानदेव सूरिनें नाडोल नगरीसें शांतिस्तोत्र बनाकर भेजा ॥

२३ श्री मानदेवसूरिके पाट ऊपर श्री मानतुंगसूरि हुये, जिनोंनें भक्तामर स्तवन करकें, बाण अरु मयूर पंडितोंकी विद्या करकें चमत्कृत हुआ जो वृद्ध भोजराजा तिनकों प्रतिबोधा, और भयहर स्तवन करकें नागराजाकों वश करा, तथा भक्तिभरेत्यादि स्तवन जिनोंनें करे है ॥

२४ श्रीमानतुंगसूरिके पाट ऊपर श्री वीरसूरि बैठे सो वीरसूरिनें श्री महावीरस्वामीसें (७७०) वर्षमें तथा विक्रम संवतके तीनसौ वर्ष पीछे नागपुरमे श्रीनमिअर्हतकी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करी, यदुक्तं ॥ आर्या ॥ "नागपुरे नमिभवन, प्रतिष्ठयामहितपाणिसौभाग्यः ॥ अभवद्वीराचार्य, स्त्रिभिः शतैः साधिकैः राज्ञः ॥ १ ॥"

२५ श्री वीरसूरिके पाट ऊपर श्री जयदेवसूरि बैठे, ॥

२६ श्रीजयदेवसूरिके पाट ऊपर श्री देवानंदसूरि बैठे, इस अवसरमें श्रीमहावीरस्वामीसें (८४५) वर्ष पीछे वल्लभी नगरी भंग हुइ, तथा (८८२) वर्ष पीछे चैत्येस्थिति, तथा (८८६) वर्ष पीछे ब्रह्मद्वीपिका शाखा हुई ॥

२७ श्रीदेवानंदसूरिके पाट ऊपर श्री विक्रमसूरि बैठे ॥

२८ श्रीविक्रमसूरिके पाट ऊपर श्री नरसिंहसूरि बैठे, यतः ॥ "नरसिंहसूरिरासी, दतोऽखिलग्रंथपारगोयेन ॥ यक्षोनरसिंहपुरे, मांसरतिस्त्याजिता स्वगिरा ॥ १ ॥"

२९ श्रीनरसिंहसूरिके पाट ऊपर श्रीसमुद्रसूरि हुए ॥ श्लोकः ॥ वसंततिलकावृत्तम् ॥ "खोमीणराज कुलजोऽपि समुद्रसूरि, र्गच्छं शशास किल यः प्रवणः प्रमाणी ॥ जित्वा तदा क्षपणकान् स्ववशं वितेने नागहृदेभुजगनाथनमस्यतीर्थम् ॥ १ ॥"

३० श्रीसमुद्रसूरिके पाट ऊपर श्रीमानदेवसूरि हुए ॥ श्लोकः ॥ वसंततिलकावृत्तम् ॥ "विद्यासमुद्रहरिभद्रमुनींद्रमित्रं, सूरिर्बभूव पुनरेवहि मानदेवः ॥ मांद्यात्प्रयातमपियोनघसूरिमंत्रं लेभेंबिकामुखगिरा तपसोज्जयंते ॥ १ ॥" श्रीमहावीरस्वामीसें एक हजार वर्ष पीछे सत्यमित्र आचार्यके साथ पूर्वोंका व्यवच्छेद हुआ, यहां १ श्री नागहस्ति, २ रेवतीमित्र, ३ ब्रह्मद्वीप, ४ नागार्जुन, ५ भूतदिन्न, ६ श्री कालकसूरि, ये छे युगप्रधान यथाक्रमसें श्रीवज्रसेनसूरि और सत्यमित्रके बीचमें हुए, इन पूर्वोक्त छे युगप्रधानोंमेंसें शक्राभिवंदित श्रीकालिकाचार्य श्रीमहावीरस्वामीसें (९९३) वर्ष पीछे पंचमीसें चौथकी संवत्सरी करी, तथा श्री महावीरात् (९८०) वर्ष पीछे एक पूर्व विद्या धारक युगप्रधान श्री देवर्द्धिगणिः क्षमाश्रमण हुए जिणोंनें शाशन देवके सहायसें सर्व साधुवोंको इकट्ठा करके सर्व सिद्धात पुस्तकोंमें लिखाया इससें यह वडे प्रवचन प्रभावीक हुए, तथा श्री महावीरात् (१०५५) वर्ष पीछे, और विक्रमादित्यसें

(५८५) वर्ष पीछे, याकिनी साधवीका धर्मपुत्र श्रीहरिभद्रसूरि स्वर्गवास हुए, ये आवश्यकजी मूलसूत्रादिककी वडी टीकाकों, तथा चवदसोचमालीस (१४४४) प्रकरणोंका कर्त्ता हुए तथा इग्यारेसोपन्नर (१११५) वर्ष पीछे श्रीजिनभद्रगणि क्षमाश्रमण युगप्रधान हुआ ॥

३१ श्रीमानदेवसूरिके पाटऊपर श्रीविबुधप्रभसूरि हुआ ॥

३२ श्रीविबुधप्रभसूरिके पाट ऊपर श्रीजयानंदसूरि हूआ ॥

३३ श्रीजयानंदसूरिके पाट ऊपर श्रीरविप्रभसूरि हुआ सो श्रीमहावीरस्वामिसें पीछे इग्यारेसेसित्तर (११७०) वर्ष औ) विक्रम संवत्सें सातसो (७००) वर्ष पीछे नाडोल नगरमें श्री-नेमिनाथस्वामिके प्रासादकी प्रतिष्ठा करी तथा श्रीवीरात् इग्या-रसो नेवु (११९०) वर्ष पीछे श्रीऊमास्वातिनामक युगप्रधान हुआ ॥

३४ श्रीरविप्रभसूरिके पाट ऊपर श्रीयशोभद्रसूरि अपरनाम श्रीयशोदेवसूरि वैठे, यहां श्रीमहावीरस्वामिसें वारसोवहुत्तर (१२७२) वर्ष पीछे, और विक्रम संवत्सें आठसें दो (८०२) के सालमें अणहलपुर पट्टण वनराज नामक राजानें वसाया, वनराज जैनी राजा था, तथा श्रीवीरात् वारसेसित्तर (१२७०) और विक्रमसंवत् आठसो (८००) के सालमें भादवासुदि ३ के दिन बप्पभट्ट आचार्यका जन्म हुआ जिसनें गवालियरके आम नामा राजाकों जैनी वनाया, इनोंका विशेष चरित्र प्रबंध चिंता-मणि ग्रंथसें जाणलेना ॥

३५ श्रीयशोभद्रसूरिपट्टे, श्रीविमलचन्द्रसूरि हूआ ॥

३६ श्रीविमलचंद्रसूरिपट्टे श्रीदेवचन्द्रसूरि अपरनाम लघुदेवसूरि हूवा ये उपधान वाच्य ग्रंथका कर्त्ता और तिसकाल आश्रय सिथलाचार मार्गकों त्याग करके शुद्धमार्ग धारन करनेंवाले थे, इ इससें सुविहित पक्ष प्रसिद्ध हूवा ॥

३७ श्रीलघुदेवसूरि पट्टे, श्रीनेमिचन्द्र सूरि हुवे ॥

इति श्रीखरतरगच्छे श्रीजिनकीर्त्तिरत्नसूरिशाखायां क्रमात्, श्रीजिनकृपाचन्द्रसूरीश्वरस्य प्रधानशिष्येण श्रीमदानंदमुनिना संकलिते उ० जयसागरेण संस्कारितेच, श्रीमज्जिनदत्तसूरीश्वरचरिते श्री आचार्यमहागिर्यादि श्रीनेमिचन्द्रसूरिपर्यवसानं पट्टानुगताचार्यसंक्षिप्तचरित्र वर्णनो नाम तृतीयसर्गः समाप्तः



अथ चतुर्थसर्गः ।



नमः श्रीवर्द्धमानाय, श्रीमते च सुधर्मणे,
सर्वाऽनुयोगवृद्धेभ्यो, वाण्यै सर्वविदस्तथा ॥ १ ॥
अज्ञानतिमिरांधानां, ज्ञानांजनशलाकया,
नेत्रमुन्मीलितं येन, तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ २ ॥
सूरिमुद्योतनं वन्दे, वर्द्धमानं जिनेश्वरं,
जिनचंद्रप्रभुं भक्त्याऽभयदेवमहं स्तुवे ॥ ३ ॥

३८ श्रीनेमिचंद्रसूरिजीके पट्टपर, श्रीमान् उद्योतनसूरिजी हुवे, इणोंसें ८४ गच्छकी स्थापना हुइ, इहांपर ८४ गच्छोंका किंचित्स्वरूप लिखते है, वाचनाचार्य श्रीमान् पूर्णदेवगणि प्रमुखका वृद्धसंप्रदाय यह है कि श्रीमान् उद्योतनसूरिजी महाराजकुं शुद्ध क्रियापात्र बडे प्रतापिक विद्वान् जाणके और ८२ साधुवोंका शिष्य आयके महाराजकेपास पढने लगे, और तिस अवसरमें एक अंभोहरनामा देशमें जिनचंद्रनामें आचार्य शिथलाचारी चैत्यवासी ८४ चैत्योका मालिकथा, उसके व्याकरण तर्क छंद अलंकार प्रमुखमें अत्यंत विचक्षण, शरदऋतुका चंद्रमाके प्रकाश समान उज्वल यशवाला, और अत्यंत निर्मल मनवाला, वर्द्धमान नामें प्रधान शिष्य था, उसके प्रवचन सारोद्धारादि आगम वाचतां जिनचैत्यकी ८४ आशातना आइ, वे आशातना यह है—

इदानीं, दसआसायणत्ति, सप्तत्रिंशत्तमं द्वारमाह ॥

अत्र दशआशातनाका सैंतीसमा (३७) द्वार कहते हैं ॥

तत्र मूलम् यथा-तंबोल १ पाण २ भोयण, ३ पाणह ४, त्थीभोग ५ सुयण ६ निठ्ठिवणं, ७ मुत्तु ८ च्चार ९ जूयं १०, वज्जेजिणमंदिरस्संतो ॥ ३७ ॥ व्याख्या-तांबूल १ पानीपीणा २ भोजन ३ उपानत ४ (जूती) स्त्रीभोग ५ (मैथुन) स्वपन निद्रा करना ६ निष्ठीवन थूक ७ मूत्र, लघुनीत ८ पुरीष, वडनीत ९ द्यूतमदिरादिवर्जयेत्, जूआमदिरादियत्नसें वर्जे १० विवेकी पुरुष जिनमंदिरके अंदर श्रीतीर्थंकर भगवानकी आशातनाका हेतु होणेसें यह १० मोटी आशातनाका सुश्रावकोंकुं विशेपकरके त्याग करना उचित है, अन्यथा अनंत भवभ्रमण करना होगा यह निस्संदेह है, इति ३७ सप्तत्रिंशत्तमद्वारः ॥

आसायणा उच्चुलसी, इति अष्टात्रिंशत्तम द्वारमाह, खेलंकेलिमित्यादि शार्दूलवृत्त चतुष्टयमिदं यथा विदित व्याख्यायते ॥

अत्र चौरासी आशातनाका अडतीसमा द्वार कहतें हैं ॥

तत्र मूलम् यथा-खेलं १ केलि २ कलिं ३ कला ४ कुललयं ५ तंबोल ६ मुग्गालयं, ७ गाली ८ कंगुलिया ९ सरीरधुवणं १० केसे ११ नहे १२ लोहियं, १३, भत्तोसं १४ तय १५ पित्त १६ वत १७ दसणे १८ विस्सामणं १९ दामण, २०, दंत २१ च्छी २२ नह २३ गंड २४ नासिय २५ सिरो २६ सोत्त २७ छवीण मलं, २८ ॥ ४३८ ॥ १ ॥ मंतं २९ मीलण ३० लेख्कयं ३१ विभजणं ३२ भडार ३३ दुट्ठासण, ३४, छाणी ३५ कप्पड

३६ दालि ३७ पप्पड ३८ वडी ३९ विस्सारणं नासणं, ४०, अकंदं ४१ विकहं ४२ सरिच्छुघडणं ४३ तेरिच्छसंठावणं, ४४, अग्गीसेवण ४५ रंधणं ४६ परिक्कणं ४७ निस्सीहियाभंजणं, ४८ ॥ ४३९ ॥ २ ॥ छत्तो ४९ वाणह ५० सत्थ ५१ चामर ५२ मणोणेगत्त, ५३ मब्भंगणं, ५४ सचित्ताणमचाय ५५ चायमजिए ५६ दिट्ठीइनो अंजली, ५७ साडेगुत्तरसंग भंग ५८ मउडं ५९ मउलिं ६० सिरोसेहर, ६१ हुड्डा ६२ जिड्डुहग्गेड्डियाइरमण ६३ जोहार ६४ भंडकियं, ६५ ४४० ॥ ३ ॥ रेकार ६६ धरणं ६७ रणं ६८ विवरणं वालाण ६९ पल्हट्ठियं, ७०, पाउ ७१ पायपसारणं ७२ पुडपुडी ७३ पंकं ७४ रओ ७५ मेहुणं, ७६ जूया ७७ जेमण ७८ गुझ ७९ विज्ज ८० वणिजं ८१ सेज्जं ८२ जलं ८३ मझणं, ८४, एवमाईय मवज्जकज्जमुज्जुओवज्जेजिणिंदालए, ४४१ ॥

॥ ४ ॥ व्याख्या तत्र जिनभवने एतच्च कुर्वन् आशातनां करोति इति फलितार्थः आयं लाभं ज्ञानादीनां निःशेपकल्याणसंपन्नतावितानाविकलवीजानांशातयति विनाशयति इति आशातना शब्दार्थः तत्र खेलं मुखश्लेष्माणं जिनमंदिरे त्यजति, १ तथा केलिं क्रीडां २ करोति, तथा कलिं वाक्कलहं विधत्ते, ३ तथा कलां धनुर्वेदादिकां तत्र शिक्षते, ४ तथा कुललयं गंडूपं विधत्ते, ५ तथा तांबूलं तत्र चर्वयति, ६ तथा तांबूलसंबंधिनमुद्गालमाविलं तत्र मुंचति, ७ तथा गालीर्नकारमकारचकारजकारादिकास्तत्र ददाति, ८ तथा कंगुलिकां लघ्वीं महतीं

सरछे, तु पाठे शराणां अस्त्राणां च धनुःशरादीनां घटनं, तथा तिरश्चामश्वगवादीनां संस्थापनं, ४४ तथा अग्निसेवनं शीतादौ सति, ४५ तथा रंधनं पचनमन्नादीनां, ४६ तथा परीक्षणं द्रम्मादीनां, ४७ तथा नैषधिकी भजनमवश्यमेव हि चैत्यादौ प्रविशद्भिः सामाचारीचतुरैर्नैषेधिकीकरणीया, ततस्तस्या अकरणं भंजनमाशातना ४८ ॥ ४३९ ॥ इति द्वितीयवृत्तार्थः ॥

तथा छत्रस्य ४९।५० तथा उपानहस्तथा शस्त्राणां खड्गादीनां ५१ तथा चामरयोश्च ५२ देवगृहात् बहिरमोचनं, मध्येवा धारणं तथा मनसोऽनेकांततानैकाग्र्यं नानाविकल्पकल्पनमित्यर्थः, ५३ तथाभ्यंजनं तैलादिना ५४ तथा सचित्तानां पुष्पतांबूलपत्रादीनामत्यागो बहिरमोचनं, ५५ तथा त्यागः परिहरणं, अजिए, इति अजीवानां हारमुद्रिकादीनां, बहिस्तनमोचने हि अहो भिक्षाचराणामयं धर्मः इत्यवर्णवादो दुष्टलोकैर्विधीयते, ५६ तथा सर्वज्ञप्रतिमानां दृष्टौ दृग्गोचरतायां नो नैवाजलिकरणमंजलिविरचनं, ५७ तथा एकशाटकेन एकोपरितनवस्त्रेण उत्तरासंगभंग उत्तरासंगस्याकरणं, ५८ तथा मुकुटं किरीटं मस्तके धरति, ५९ तथा मौलिं शिरोवेष्टन विशेषरूपां करोति, ६० तथा शिरःशेखरं कुसुमादिमयं धत्ते, ६१ तथा हुड्डापारापतनालिकेरादिसंबंधिनीं विधत्ते, ६२ तथा जिड्डहत्ति, कंदुकगेड्डिका तत् क्षेपणी वक्रयष्टिका ताभ्यां, आदिशब्दात् गोलिका कपर्दिकाभिश्च रमणं क्रीडनं, ६३ तथा ज्योत्कारकरणं पित्रादीनां, ६४ तथा भांडाना विटानां क्रिया कक्षा वादनादिका, ६५ ॥ ४४० ॥ इति तृतीयवृत्तार्थः ॥

तथारेकार तिरस्कारप्रकाशकं रेरे रुद्रदत्तेत्यादि वक्ति, ६६ तथा धरणकं रोधनमपकारिणामधमर्णादीनां च ६७ तथा रणं संग्रामकरणं ६८ तथा विवरणं वालानां केशाना विजटीकरणं, ६९ तथा पर्यस्तिकाकरणं, ७० तथा पादुका काष्ठादिमयं चरणरक्षणोपकरणं ७१ तथा पादयोः प्रसारणं स्वैर निराकुलतायां, ७२ तथा पुटपुटिकादापनं, ७३ तथा पकं कर्दमं करोति, निजदेहावयवप्रक्षालनादिना, ७४ तथा रजो धूलिःतां तत्र पादविलग्नां ताडयति ७५ तथा मैथुनं मैथुनस्य कर्म, ७६ तथा यूकामस्तकादिभ्यः क्षिपति वीक्षयति वा ७७ तथा जेमनं भोजनं, ७८ तथा गुह्यं लिंगं तस्या संवृत्तस्य करणं, ७९ जुझमिति तु पाठे युद्धं दृग्युद्धबाहुयुद्धादि, तथा विज्ञप्ति, वैद्यकं, ८० तथा वाणिज्य क्रयविक्रयत्वलक्षण, ८१ तथा शय्यां कृत्वा तत्र स्वपिति, ८२ तथा जल तत् स्नानाद्यर्थ तत्र मुंचति पिबति वा, ८३ तथा मज्जनं स्नानं तत्र करोति, ८४ एवमादिकमवद्यं सदोषं कार्य उत्सुकः प्राजलचेता उद्यतो वर्जयेत् जिनेंद्रालये जिनमंदिरे ॥ एवमादिकमित्यनेनेदमाह ॥ न केवलं एतावत्य एवाशातनाः, किंत्वन्यदपि यदनुचित हसनवल्गनादिकं जिनालये तदप्याशातनास्वरूपं ज्ञेयं ॥ नन्वेवं, तंबोलपाण इत्यादि, गाथया मेव आशातनादशकस्य प्रतिपादितत्वात्, शेषाशातनाना च एतत् दशकोपलक्षितत्वेनैव ज्ञास्यमानत्वात्, अयुक्तं इदं द्वारांतरम्, इति चेन्न, सामान्याभिधानेऽपि बालादिबोधनार्थं विभिन्नं विशेषाभिधानं क्रियत एव, यथा ब्राह्मणा समागताः वशिष्ठोऽपि समागतः

इति न्यायात् सर्वमनवद्यं, ॥ नन्वेता आशातना जिनालये क्रिय माणा गृहिणां कंचनदोषमावहंति, उत एवं एवं न करणीयाः, तत्र ब्रूमः समाधानम्, न केवलं गृहिणां सर्वसावद्यकरणोद्यतानां भवभ्रमणादिकदोषमावहंति, किंतु निरवद्याचाररतानां मुनीना मपि दोषमावहंति, इत्याह, ॥ आसायणाउ भवभमण कारणा- इइ विभाविउं, जइणो मलिणत्ति न जिण मंदिरंमि, निवसंति इइ समए ॥ ४२ ॥ ५ ॥ एता आशातनाः परिस्फुरत् विविधदुःख- परपराप्रभवभवभ्रमणकारणमिति विभाव्य परिभाव्य यतयोऽस्ना नकारित्वेन मलमलिनदेहत्वात्, न जिनमंदिरे निवसंति, इति समयः सिद्धांतः, आह च व्यवहारभाष्यकारोपि ॥ दुब्भिगंधमल- स्सावि, तणुरप्पेसण्हाणिया ॥ दुहावायवहावाड, तेणच्चिट्ठंति न चेइए ॥ ४३ ॥ ६ ॥ व्याख्या एषा तनुः स्नापितापि दुरभिगंध- मलप्रस्वेदस्राविणी, तथाद्विधा वायुपथः उर्द्धाधोवायुनिर्गमश्च, यद्वा द्विधा मुखेन अपानेन च वायुवहो वापि वातवहनं च तेन कारणेन न तिष्ठंति यतयश्चैत्ये जिनमंदिरे, ॥ यद्येवं व्रतिभिश्चैत्येषु, आशातनाभीरुभिः कदाचिदपि न गंतव्यं, तत्राह सेनूणं भंते संज- याणं विरया विरयाणं जिणहरे गच्छेज्जा, गोयमा, दिनेदिने गछेज्जा, जइप्पमायं पडुच्च नगच्छेज्जा, तो छट्ठं वा दुवालसं वा पाय- च्छित्तं लभेज्जा ॥ इति महाकल्पे ॥ अथ जिनचैत्ये मुनीनामवस्थि- तिप्रमाण विभणिपुराह ॥ तिन्नि वा कड्ढइ जाव, थुइओ तिसलोइया ॥ तावच्च अणुन्नाय, कारणेण परेणओ ॥ ४४ ॥ ७ ॥ व्याख्या तिस्रः स्तुतयः कायोत्सर्गानंतरं या दीयते ता यावत्कर्पति भणति इत्यर्थः,

किंविशिष्टाः, तत्राह, त्रिश्लोकिकास्त्रयः श्लोकाः छंदोविशेषरूपा अधिका न यासु ताः, तथा सिद्धाणं बुद्धाणं, इत्येकः श्लोकः, जो देवाणवि, इति द्वितीयः, एक्को वि नमुक्कारो, इति तृतीयः, अग्रेतन-गाथाद्वयं, स्तुतिश्चतुर्थी गीतार्थाचरणेनैव क्रियते, गीतार्थाचरणं तु मूलगणधरभणितमिव सर्वं विधेयमेव सर्वैरपि मुमुक्षुभिरिति, तावत्कालमेव तत्र जिनमंदिरेऽनुज्ञातमवस्थानं यतीनां, कारणेन पुनर्धर्मश्रवणाद्यर्थमुपस्थितभविकजनोपकारादिना परतोऽपि चैत्यवंदनाया अग्रतोऽपि यतीनामवस्थानमनुज्ञातं, शेषकाले तु साधूनां जिनाशातनादिभयात् नानुज्ञातमवस्थानं तीर्थंकरगणधारिभिः, ततो व्रतिभिरप्येवमाशातनाः परिह्रीयंते, गृहस्थैस्तु सुतरा परिहरणीया। इति, इयं च तीर्थंकृतामाज्ञा, आज्ञाभंगश्च महतेऽनर्थाय संपद्यते, यदाहुः, 'आणाइचिय चरणं, आणाइतवो आणाइ-संजमो, तहदाणमाणाइं, आणारहियो धम्मो पलासपुलुवनायव्वो' ॥ १ ॥ और भाषाके स्थानमें प्राचीन सुकविकृत ८४ आशातना स्वरूपप्रतिपादकभाषापद्यबंधस्तवनहि रखनेमें आता है ॥

अथ ८४ आशातनास्तवन ॥

विलसेरिद्धिनी देशी ॥ जय जय जिणपास जगत्र धणी, सो भाताहरी संसार सुणी, आयो हुं पिणधर आसघणी, करिवा सेवा तुम चरण तणी ॥ १ ॥ धन धन जे न पडे जंजाले, उपयोग सुं पैसे जिन आले, आशातना चउरासी टाले, सासता सुखतेहि ज संभाले ॥ २ ॥ जे नाखे श्लेखम जिनहरमे, कलह करे गाली जूयरमे, धनूषादि कला सीखण टूके, कुरलो तंबोल भखे

॥ ३ ॥ सुरे वायवडी लघुनीत तणी, संज्ञा कुंगुलिया दोपसुणी, नख केस समारण रुधिर क्रिया, चांदीनी नांखे चांवडिया ॥ ४ ॥ दांतणनें वमन पीये कावो, खावे धांणी फुली खावो, सुवे वेसामण विसरावे, अज गज पशुनें दामण दावे ॥ ५ ॥ सिरनासा कान दसन आखे, नख गालवपुपना मल नांखे, मिलणो लेखो करे मंत्रणो, विहचण अपणो करि धन धरणो, ॥ ६ ॥ वेसे पग ऊपरि पग चढियां, थापे छाणा छडे हुंढणीयां, सूकवे कप्पड वप्पड वडियां, नासीय छिये नृप भय पडियां ॥ ७ ॥ शोके रोवे विकथाज कहे, इहां संख्या बेंतालीस लहै, हथियार घडेनें पशु वांधे, तापे नाणो परखे रांधे ॥ ८ ॥ भाजी निसही जिनगृह पैसे, धरे छत्रनें मंडपमें वेसे, पहिरे वस्त्र अनें पनही, चामर वींझे मनठाम नहीं ॥९॥ तनु तेल सचित्त फल फूल लीये, भूपण तजि आप कुरूप थीये, दरसणथी सिर अजली न धरे, डग साडे उत्तरा संग न करे ॥ १० ॥ छोगो सिरपेच मोड जोडे, दडिये रमनें वैसे होडै, सयणां सुं जुहार करे मुजरो, करे भंड चेष्टा कहे वचन बुरो ॥ ११ ॥ धरे धरणो झगडे उल्लठी, सिर गुंथे बांधे पालंटि, पसारे पग पहरे चाखडियां, पगझटक दिरावे दुरवडीयां ॥ १२ ॥ करदमलहे मैथुनमंडे, जूआं वलि अंठतिहां छंडे, उघाडे गुह्यकरे वायदां, काढे व्यापार तणाकायदां ॥ १३ ॥ जिनहर परनालनो नीरधरे, अंघोले पीवाठाम भरे, दूपण जिन भवनमें एदाख्या, देववंदन भाप्यमें जे भाष्या ॥ १४ ॥ सुज्ञानी श्रावक सगति छतां, आसातन टाले वारसतां, परमाद वसे कोई थाये, आलोयां

पाप सहू जाये ॥ १५ ॥ तंबोलनें भोजन पान जूआ, मल मूत्र सयन स्त्रीभोग हुआ, भूपण पनही ए जघन्यदसे, वरज्या जिन मंदिरमां हि वसे ॥ १६ ॥ द्रव्यतनें भावतदोय पूजा, एहनाहिज भेद कह्या दूजा, सेवा प्रभुनी मन सुद्ध करे, चंछित सुखलीलाते हेचरे ॥ १७ ॥ कलश ॥ इम भव्यप्राणी भावआणी विवेकी शुभवातना, जिनबिंबअरचे परिवरजे चोरासी आसातना, ते गोत्र-तीर्थंकर उपार्जनमे जेहनें केवली, उवज्झाय श्री धर्मसींह वंदे जैन शासन ते वली ॥१८॥ इति श्री चौरासी आसातना स्तवनं संपूर्णम् इण आशातनाओंका अछीतरे विचार करणेसें, उस पुण्यात्माके मनमे, यह भावना उत्पन्न हूइ, के जो यह आशातनाकों किसी प्रकारसें टाली जावे, तब हि संसारवनसें निस्तारा होवे, अन्यथा अगाध इस संसारसमुद्रके वीचमे पडे हुवे मेरेकुं अनंतिवार जन्म जरा मरण दरिद्र दौरभाग्य रोग शोकादि संतापका भाजनहि होना होगा, और अपणे दोपसें इस अपणे आत्माकुं अनन्त भव भ्रमण और दुर्गतिका भागी अपणे आपहि करणा होगा, ओर यह कहा है कि आसायण मिछत्तं, आसायणवज्जणाय सम्मत्तं, आसायण निमित्तं, कुव्वइ दीहंच संसार १ आसातनासे मिथ्यात्व होता है आशातना वर्जनैसें सम्यक्त होता है आशातनासे भव भमण होता है जो मेरा शुभ अध्यवसाय है इसलिये वर्द्धमाननामा मुनिनें अपणे गुरुकुं निवेदन किया वाद उस चैत्यवासी जिनचद्र नामक गुरुनें अपणे मनमे विचारा कि अहो इसका यह आशय है सो अछा नहि है इसवास्ते इसकुं आचार्यपदमे वेठायके मंदिर

आराम वगेरे प्रतिबंध करके वशमे करुं तो मेरे कल्याण है एसा विचारके उस गुरुने वैसाहि किया तथापि उस पुण्यात्माका चैत्यवासस्थितिमे मन नहिं लगा, यह संगत है और कहा है कि- दुर्गंध और कादेवाला भरेहुवे कालेवरों करके सहित सैंकडो बगलों की पंक्तिसहित और बगलोंका कुंटुंब करके सहित उत्तम जातिवाले पक्षियोंके आगमनसें रहित एसे कुत्सित सरोवरमें क्या हंस पगमात्र रख सक्ता है अर्थात् नहिं रख सक्ता है, इसलिये उस पुण्यवान् जीवकूं चैत्यवाससें विमुख जाणकर वर्द्धमान मुनिकूं सर्व अपणा अधिकार देकर इसतरे बोला कि हे वत्स यह सर्व देवमंदिर मठ आरामवाडी वगेरे तेरे आधीन है तुं अपनी इच्छा करके विलस तेरे सर्वोत्कृष्ट माननीय है सो हमकूं छोडणा नहीं इत्यादिक अनेक कोमल वचन कहेने पूर्वक नीवारण करणेसे किया है वांछितार्थका दृढनिश्चय मनमें जिसने एसा वह वर्द्धमान मुनिः कमल जलकादेसें अलग रहेता है इस न्यायकरके जैसें तैसें कोई-पण सुविहित गुरुकूं अंगीकार करके मेरेकुं अपणा हित करणा है एसा दृढसंकल्प करके अपणा आचार्यकी आज्ञा लेकर कितनेक यतियोंसें परवरा हुवा दिल्ली वादलीप्रमुख स्थानोंमे आया तिस समे श्री उद्योतनसूरिजी नामके सुविहित आचार्य महाराज याने उनके पुण्यसें प्रेरित होकर आवे उसमाफक प्रथमहि विहारक्रमसें आये हुवे थे, तिसके अनंतर शुद्ध मार्गके तत्त्वका आकर श्री उद्योतन सूरिजी महाराजके चरणकमलोंमे श्रीवर्द्धमान सूरिजीने श्रेष्ठ निर्णयपूर्वक स्वपरहित वढानेवाली उपसंपत् विधिपूर्वक अंगीकार

करी तव श्रीगुरुमहाराज योग उपधान वहायके सर्वसिद्धांत पढाए, अनुक्रमसें योग्य जाणके आचार्यपद दीया तिसके अनंतर श्रीवर्धमानसूरिजीको यह विचारणा उत्पन्न हुई जो यह सूरिमंत्र हैं इसका अधिष्ठायक कौन हैं यह जाननेवास्ते तीन उपवास कीये उतने तीसरे उपवासमें धरणेंद्र आया उस धरणेंद्रने कहाकि इस सूरिमंत्रका अधिष्ठायक में हूं सर्व सूरिमंत्रके पदोंका अलगअलग फल कहा तिसके बाद विशेष प्रभावसहित वह सूरिमंत्र फुरणे लगा अर्थात् अपना प्रभाव विशेषकर देखानेवाला हूवा शुद्ध होनेसें ॥ तिस सूरिमंत्रके सरणसें विशेष तेजप्रताप परिवारसहित श्रीवर्द्धमानसूरिजी हूवे बाद गच्छलाभादि जाणके उत्तराखंडके विषे विहार करनेंको आज्ञा दीवी, तव श्रीवर्द्धमानसूरि श्रीउद्योतनसूरिजीकी आज्ञा पायके उत्तराखंडमे विहार करने लगे, और श्रीउद्योतनसूरिजीमहाराज ८३ तयांसी साधुवोका शिष्यादिकके साथ विहार करता थका मालवदेशका संघके साथ श्रीसिद्धगिरितीर्थकी यात्रा करनेको आये ॥ सिद्धाचल ऊपर श्रीऋषभादि सर्व चैत्यगत बिंबोंको वंदन करके पिछाडी पाजसे उतरके सिद्धवड नीचे रात्रिको रहे, तव उहां आधी रात्रिके समय गाडेका आकार ऐसा रोहिणी नक्षत्रमें बृहस्पतिका प्रवेश देखके गुरुमहाराज कहने लगे, कि यह समय ऐसा उत्तम है जिसके मस्तकपर हाथ रक्खै सो वडा प्रतापीकहोवै, तव ८३ तयांशी शिष्य बोले कि हमारे मस्तकपर वास चूर्ण करो, हम सव आपसें पढे हैं, इससे आपकेहीशिष्य हैं तव आचार्यजीने कहा कि वासचूर्ण लावो, तव शिष्य उतावलसें

सूके छाणेका चूर्ण करके गुरुमहाराजको दिया, तब गुरुमहाराजने तिस चूर्णको मंत्र तयांशी ८३ शिष्योंके मस्तकपर करके आचार्य-पद दिया, और अपना अल्प आऊखा जाणके उसी सिद्धवड नीचे अणसण करके देवलोक गये, और तयांसी ८३शिष्य आचार्यपदकों पायके जूदे जूदे देशोंमें साधुवोंके साथ विचरनें लगे, इसीतरे १ निजशिष्य, और तयांसी ओर साधुवोंका शिष्य आचार्यपदको प्राप्त हूवा इससें इहांसें चौरासीगच्छ प्रसिद्ध हूवा उणोंका नाम मात्र इहांपर लिखतें है यह ८४ चौरासी आचार्य वडे प्रतापीक हूवे ॥ ३८ ॥

अथ ८४ गच्छ नामानिलि० १ प्रथमबृहत्खरतर गच्छ २ ओसवाल गच्छ श्रीरत्नप्रभसूरि ३ जीरावल गच्छ ४ वडगच्छ ५ गंगेसरा गच्छ ६ झंझेरडि गच्छ ७ आनपूरा गच्छ ८ भरुवचा गच्छ ९ उढविया गच्छ १० गुदाउवा गच्छ ११ डेकाउवा गच्छ १२ भीममाली गच्छ १३ मुहडासिया गच्छ १४ दासरूवा गच्छ १५ पाल गच्छ १६ घोषवाला गच्छ १७ मगओडा गच्छ १८ ब्रह्माणिया गच्छ १९ जालोरा गच्छ २० चोकडिया गच्छ २१ मूझाहडा गच्छ २२ चीतोडा गच्छ २३ साचोरा गच्छ २४ कुचडिया गच्छ २५ सिद्धांतिया गच्छ २६ मसेणिया गच्छ २७ नागेंद्र गच्छ २८ मलधारी गच्छ २९ भावराजिया गच्छ ३० पल्लिवाल गच्छ ३१ कोरंडवाल गच्छ ३२ मागदिक गच्छ ३३ धर्मघोष गच्छ ३४ नागोरी गच्छ ३५ उच्छितवाल गच्छ ३६ नाणावाल गच्छ ३७ संडेरवाल गच्छ ३८ मंडारा गच्छ ३९

प्रभाकर गामानुगाम अप्रतिबंध विहार करके विचरते हूवे श्रीआबुगिरि शिखर की तलहटीमे, कासद्रहनामकगाममें आये, तिसके अनंतर श्रीविमलदंडनायकपोरवाडवंशकामंडन देशभागकुं अवगाहन करता हूवा याने साधता हूवा वो भि वहांपर आया, आबुगिरि शिखर पर चढा, सर्व दिशाओंमे पर्वतकुं मनोहर शोभासहित देखके बहुत खुशी हूवा, मननें विचारणे लगा कि, इहांपर देरासर कराउं, उतने अचलेश्वर गुफावासी योगी जंगम तापस संन्यासी ब्राह्मण प्रमुख मिलके विमलसाहदंडनायक के पासमे आय के इसतरे कहनें लगे, हे विमलमंत्रिन् तुमारा इहांपर तीर्थ नहिं है यह हमारा कुलपरंपराकरके तीर्थ वर्त्तेहैं, इसवास्ते इहांपर तुमकुं हम जिनप्रासाद करणें देवे नहिं तब विमलसाह मंत्री पूर्वोक्त वचन सुणके उदासीन हूवा, आबुगिरिशिखरकी तलहटीमें कासद्रहगाममें आया, जिसगाममें सर्वसंपदादायकश्रीवर्द्धमान सूरिजी समवसरे है,

उसी गाममें श्रीगुरुमहाराजकुं विधिपूर्वक वंदना नमस्कार करके इसतरेसे विनयसहित वीनती करी, हेभगवन् इस पर्वतपर हमारा तीर्थ जिन प्रतिमारूप वर्त्ते है अथवा नहिं, तब श्रीगुरुमहाराजनें कहा हे वत्स देवता आराधन करणेसे सर्व जाननेमें आवे, अन्यथा छद्मस्थकेसे जाणे, तब विमलसाह मंत्रीनें प्रार्थना करी, किंबहुना सुज्ञेषु, तब श्रीवर्द्धमान सूरिजीनें छमामी तप करा तब श्रीधरणेंद्र नागराज आया, श्रीगुरुमहाराजनें कहा हे धरणेंद्र सूरिमंत्रकी अधिष्ठायक ६४ देविया है, उणोंके अंदरसें एक

देवताभी नहिं आई, और उणदेवताओंने कुछभि नहिं कहा उसका क्या कारण है तब धरणेंद्र नागराजनें कहा हे भगवन् तुमारे सूरिमंत्रका एक अक्षर कम है याने गिरता है तिस अशुद्धताके कारणसें देवता नहिं आवे मे आपके तपके बलसे आयाहू, तब श्रीगुरुमहाराजनें कहा हे महाभाग पहिले सूरिमंत्र शुद्धकर पीछे दूसरा कार्य कहुंगा एसा सुनकर धरणेंद्रनें कहा हे भगवन् सूरिमंत्रके अक्षरकी अशुद्धिकी शुद्धि करणेकुं तीर्थंकरविना किसीकीभि शक्ति नहिं है, तब सूरिजीनें सूरिमंत्रका गोला यानें डब्बा दिया तब धरणेंद्रनें महाविदेहक्षेत्रमे श्रीसीमंधरस्वामिकु वह गोला दिया श्रीसीमंधरस्वामिनें तिस सूरिमंत्रकु शुद्धकरके धरणेंद्रकुं दिया तब वह सूरिमंत्रका गोला श्रीवर्द्धमानसूरिजीकु पीछा धरणेंद्रनें दिया, तब तीनवार तिस सूरिमंत्रका स्मरण करणे करके सर्व अधिष्ठायक देव प्रत्यक्ष हूवे तब श्रीगुरुमहाराजनें पूछा कि हमकुं विमलदंडनायक पूछे है, आबुगिरि शिखरपर जिनप्रतिमारूप तीर्थ है अथवा नहिं तब अधिष्ठायक देवोंने कहा आबुदेवीके पास डावे तरफश्रीअर्बुदआदिनाथ स्वामीकी प्रतिमा हैं और जहा अखड अक्षतका स्वस्तिक उसपर चारलडी पुष्पोंकी माला देखणेमे आवे वहांपर खोदणा एसा देवताका वचन सुणके श्रीगुरुमहाराजने विमलश्रावकके आगे सर्व हाल कहा तिस विमलसाहने उसी प्रमाणे कीया प्रतिमा निकली तब विमलश्रावकने सर्व पापडियोंकु बुलाये देखी जिनप्रतिमा कालामुख हूवा तब विमलसाहने देरासर कराणा शरु किया, पापडियोंने विमल-

साहकुं कहा कि यह जमीन हमारी है इसलिये हमारी भूमिकी किमत हमकुं देवो तब विमलसाहनें भूमिपर मोहोरां विछायके जमीन लिवी प्रासाद कराया यानें देरासर कराया श्रीवर्द्धमान सूरिजी तिस प्रतिमा देरासरकी प्रतिष्ठा करी वादसांतिस्नात्र पूजा वगेरे सर्व धर्मकार्य किया उसके बाद अनागतमें धीरे धीरे सर्व मिथ्यात्वी लोक उस विमलसाह मंत्रीके आधीन हूवे तब विमल-साहने ५२ देहरीसहित सोनेका कलस धजासहित तिस देरा-सरकुं सोभित कीया तिस देरासरमें अढारे कोड तेमन लाख प्रमाणे धन लगा वह देरासर अखंडपणे अवीभि विद्यमान है सो सर्व लोक देखतें है और दर्शन तथा पूजन करते हैं यह श्रीवर्द्धमान सूरिजीका उपगार है ॥

और यह श्रीवर्द्धमानसूरिजी श्रीमदुद्योतनसूरिजीके प्रथम सु-शिष्यथे और श्रीजिनेश्वरसूरिजी श्रीबुद्धिसागरसूरिजीके यह गुरु-महाराज होतेथे और विमलसाहमंत्रीका विशेष अधिकारचरित्र तथा रासमें जाणना यह प्रसंगसें संबंध कहा पीछे उहांसें विहार करके सरसापत्तनपधारे, तिस अवसरमें सोमनामा एक ब्राह्मणके शिवदास बुद्धिदास, नाम दोय पुत्रथे, और सरस्वतीनाम एक पुत्री थी, यह तीनों सोमेश्वर महादेवका बहुत ध्यान किया इमसें सोमेश्वर महादेवका अधिष्ठाता आयके हाजर हुवा, कहा वर मांगो तब तीनों बोले हमकुं वैकुंठ देवो, तब देव कहनें लगा कि अभी मुझको वैकुंठ नहिं मिला है तो तुमकों कहासें देवुं, परतु जो तु-मकों वैकुंठकी इच्छा होय तो इहांपर श्रीवर्द्धमानसूरिजीमहाराज

ये हैं उण्होंके पास जावो, तुमको वैकुंठ जानेका मार्ग बतावेगा, मा,कहकर देवता अदृश्य होगया, तब दोनोंजणों स्नानकरके पासरं आके श्रीगुरुमहाराजसें वैकुंठका मार्ग पूछा, तब उस खत एक मांटके मन्तरपर चोटिसें छोटि मछली स्नान करते हणद्धयी सो देखारके विनय दयामूल जिनधर्मका उपदेश दिया, त तिनोंवणें प्रतिबोध पायके दीक्षा लीवी तब श्रीगुरुमहाराज योगादिक बहायके सर्व सिद्धांत पढायके शिवदासका श्रीजिनेश्वर-थरि बुद्धिदासका बुद्धिसागर ऐसा नाम करा,

एकदा श्रीजिनेश्वरसूरिजीनें कहा कि हे स्वामिन् जो आपकी आज्ञा होय तो गुजरातदेशमें जावें, उहां जाणेंसें बहुत लाभ होगा तब श्रीवर्द्धमानसूरिजी बोले कि गुजरातमें अभी हीनाचारि चैत्य-वासीयोंका बहोत प्रचार बध गया है इसमें वे लोक अनेक प्रका-रसें उपद्रव करेंगे, तब श्रीजिनेश्वरसूरिजी बोले कि जूंवांके भयसें क्या वस्त्र डाल देना उचितहै इसमें आप प्रसन्न चित्तसें आज्ञा देवो, तब गुरुमहाराज श्रीबुद्धिसागरजीको आचार्यपद देके गुर्ज-रदेशमें विहार करनेंकी आज्ञा दिनी तब श्रीजिनेश्वरसूरिजी श्री-बुद्धिसागरसूरिजी दोनों गुजरातदेशमें विचरणे लगे और कल्याणवती साध्वीकों महत्तरापद देकर साध्वीयोंके साथ विहारकरनें की आज्ञादी ॥ अब कोइ एक दिनके अवसरमें श्रीमान् पंडितजिनेश्वरसूरिजी स्वपरसिद्धांतपारंगामी होके गुर्ज-रदेश और अणहिलपाटणसहर में विशेष लाभादिकजाणके विनयपूर्वक श्रीगुरुमहाराजसें इस प्रकारसें बोले कि हे भगवन्

मुनेरपि वनस्थस्य, स्वानि कर्माणि कुर्वतः ।
उत्पद्यन्ते त्रयः पक्षाः, मित्रोदासीनशत्रवः ॥ १ ॥

व्याख्या—वनमें रहे हूवे और अपणे धर्मकार्य करनेवाले ऐसे मुनियोंकेभी मित्र उदासीन शत्रु यह तीन पक्ष उत्पन्न होतें है ॥ १ ॥ पुरोहित कहने लगा यह घणी खेदकी बात है जो कि चंदन सदृश सीतल ऐसे आप जैसौकाभि पापीलोकों अहित करतें है इस प्रमाणे पुरोहित थोडी वखत सोचके और कहनें लगा कि, वह कौनसे दुर्विनीत है, उनुकुं मैं जाणना चाहताहु पंडित श्रीजिनेश्वरसूरिजीनें कहा हे महात्माजी उणोंके कल्याण होवो, उणोंकी वार्ता करणे कर हमारे क्या प्रयोजन है इसतरे सुणके पुरोहित अपणे मनमें विचारणे लगा कि ॥

त एते सुकृतात्मानः, परदोषपराङ्मुखाः,
परोपतापनिर्मुक्ताः, कीर्त्यते यत्र साधवः ॥ १ ॥

व्याख्या—जो परदोषसें विमुख है और परको संताप देणेसें विरक्त है वेहि पुण्यात्मा और साधु होतें है ॥ १ ॥ तो यह महात्मा किसवासते अपणे प्रतिपक्षियोंका नाम कहै और मेरेभि दुरात्माओंका नाम सुनना अकल्याणकारी है इसलिये नाम नहीं लेना अच्छा है दूसरा पूछु इसतरे विचारके प्रगटपणे पुरोहितने पूछा कि आपश्री इतनेहि हो या दूसरे भी कोई मुनियों है पंडित श्रीजिनेश्वरगणि, बोले कि जिनके हम शिष्य है वे अपणी बुद्धिसें बृहस्पतिकुं जीतनेवाले सब जीवके रक्षक और हमारे,, गुरु तथा सर्व परिग्रह स्त्री धन धान्य स्वजन स्नेह संबंध

त्याग करणेवाले . और श्रेष्ठ है नाम जिणोंका ऐसें श्रीवर्द्धमान सूरीश्वरजी है सो हमारे गुरु महाराज है वहभि पधारे है, पुरोहित–बोला आपश्री सर्व मिलके कितने हो ऐसा विसयपूर्वक पूछणेसें पंडित जिनेश्वरगणिः बोले कि १८ पाप स्थानकसें रहित हम १८ साधु है पुरोहित अपणे मनमें विचारे है अहो

त्यक्तदाराः सदाचारा मुक्तभोगा जितेन्द्रियाः ।
गुरवो यतयो नित्यं, सर्वजीवाऽभयप्रदाः ॥ १ ॥

व्याख्या–स्त्रीका त्याग करनेवाले श्रेष्ठ आचारवाले भोगरहित इंद्रियोंकुं जीतणेवाले और नित्य सर्वजीवोंकु अभयदेनेवाले जो यति है सो गुरु हैं इसतरे दमाध्यायमे कहा हैं वेसाहि यह आत्मा सद्गुरु हैं इणोंकुं अपणे घरमेहि लाके, पापरहित इणोंके चरणकी पवित्र धूलिसे मेरे घरका आगण पवित्र करू ओर प्रगट पुण्यराशिरूप इणोका निरंतर दर्शन करनेसे मेरा जन्म सफल होगा इसतरे विचारके और बोला कि हे महासात्तिकमुनिवर्यो च्यार शालावाले विस्तीर्ण मेरे घरमे एक दरवाजेसे प्रवेश कर एक शालामे पडदा कर आप सर्वमुनिसुखपूर्वकरहो ओर भिक्षाके अवसरमें मेरा आदमी आपश्रीके साथमे होणेसें ब्राह्मणोंके घरोंमे सुखसें भिक्षा मिलेगी और आपको भिक्षामेभि कुछ हरकत होगी नहीं इसके बाद पंडित जिनेश्वरगणिजीने कहा कि तुमारे जैसे उचित अवसर जाणणेमे मनोहर चित्तवाले दूसरे कोण हैं इसतरे कहते हुवे बोले कि

प्रेक्षन्ते स्म न च स्नेहं, न पात्रं न दशान्तरं ।
सदा लोकहितासक्ता, रत्नदीपा इवोत्तमाः ॥ १ ॥

व्याख्या-जैसें रत्नका दीपक तेल बत्ती पात्र कि अपेक्षा विनाहि प्रकाश करता है तैसें हि उत्तम मनुष्य निरंतर लोकोंके हितमे तत्पर होते है इसतरे कहते हूवे श्रीजिनेश्वरगणिजी अपणे गुरु पास गये और सर्ववृत्तान्तकहा, वृन्तान्तसुणके श्रीगुरुमहाराजनेंभि शुभायति विचारके कहा कि इसीतरे करणा उचित अवसर है ऐसा कहेके वहां पर रहे. अपणी धार्मिक क्रियाकरणेमें तत्पर ऐसे मुनियोंकी वार्ता नगरमें फेलीके शुद्धवसतीमें रहेणेवाले मुनियों इहांपर आयेहैं, पुनः साध्वाभास साधु नहिं पण साधुके नामसें ओलखाणेवाले ऐसे चैत्यवासी मुनियोंने सुणाके शुद्धवसती वासी इहांपर मुनि आये हैं ऐसा सुणनेके अनंतर हि एकठे होकर सर्व उण चैत्यवासी मुनियोंने विचार करणा सरु किया कि अहो जो शुद्धवसतीवासी मुनि इहांपर आये है सो अच्छा नहिं है कारणके यह मुनि तो सुविहित हैं और निरतर आगममें कहेमुजब क्रिया करणेवाले हैं और चैत्यवासका निषेधकरणेवाले हैं और अपणे लोक स्वच्छंदाचारि है सिद्धांतसे विरुद्ध चारगतिरूपसंसारमे गिरानेवाले देवद्रव्यके लेनेवाले हैं निरतरएकठिकाणे रहेनेवालेहैं कामकूं उन्मत्त करणेवाले तांबूलकूं निरतरखानेवालेहैं चित्रसहितविचित्र प्रकारका हिंडोला खाट पलंग गादी तकिया गालमसूरिया इत्यादि शृगारकी चेष्टाओं प्रगटकरणेकरके नटविटकीतरे महा विलासकरणेवालेहै इत्यादि कहणेपूर्वक यह मुनि अपणे आत्माकूं बगवृत्तिकरके लोकोंमें सर्वोत्कृष्टधर्मिपणे देखावेंगे और अपणेकूं

पंडित पुरुष लिंगकुं नमस्कार करते हैं और काग उसकुं आसन बनाकर ऊपर बेठता है ॥ २ ॥ इस वास्ते हे राजन् मेरे घरमें जो कोई मुनि रहे हैं वे मूर्तिमान् धर्मके पिंड सरीखे हैं और क्षमा दम सरलता कोमलता तप शील सत्य शौच निष्परिग्रहपणा वगेरे गुणोंरूपी रतका करडीया सरीखे कोई जीवकुंभी संताप देवे नहिं तो फिर इसलोक परलोकमे विरुद्ध अकार्य वे मुनि किसतरह करेंगे, वास्ते उणोंमे दूषण लेशमात्रभी नहिं है, परतु यह दुश्चेष्टित कोई पापी पुरुषोंका किया हुवा है, बाद राजाके चित्तमें यह कथन रुचा और कहाके हे पुरोहित तुम जिसतरह कहे हैं उसि तरह सर्व संभवे है बाद राजा और पुरोहितका विचार सुणके सर्व सूराचार्य वगेरेने विचार किया जो इण परदेशी मुनियोकुं वादमें जीतके निकाल देवें तब ठीक होवेगा ऐसा विचारके अनतर सूराचार्य वगेरेंने पुरोहितकु बुलायके कहा हे पुरोहित तुमारे घरमें रहेनेवाले मुनियोंके साथ हम वादविषयि विचार करना चाहते हैं तब पुरोहितने कहा श्वेताम्बरवसतिवासी मुनियोकुं पूछके तुमकुं मे कहुंगा बाद पुरोहित अपणे घरजाके श्रीवर्द्धमानसूरिजी पडित श्रीजिनेश्वरगणि भगवानको कहाकि आप श्रीके प्रतिपक्षी श्रीपूज्योंके साथ विचार वाद विषयी करणा चाहतें हैं तब पुरोहितकुं प्रत्युत्तर में कहा कि हे पुरोहित क्या अयुक्त है जो प्रतिपक्षियोंकी इच्छा है तो हम भी इसीहि प्रयोजन वास्ते यहां पर आयें हैं परतु हे पुरोहित सूराचार्य प्रमुखकुं कहेणा–जो आप-लोक सुविहित मुनियोंके साथ वाद करना चाहते हो तो श्रीदुर्लभ

चर पुरुष इहांपर आये हैं उणोकों रहेणे वास्ते मकान क्या तुमने दीया है ऐसा राजाका वचन सुनके पुरोहितनें कहा कि किसनें यह दूपण उत्पन्न किया है जो वे मुनि लोक परदेशी चर पुरुष हैं तो किं वहुना वहुतकहणेसें क्या प्रयोजन है, जो वे श्वेताम्बर मुनियोंपर यहदूपणसत्य है तो उणोंके तरफसे में जमानत में एकलाख द्रव्यकी किंमतवाली पटी याने वस्त्र देताहुं ऐसा राजसभामे सर्वलोकोंके सामने कहके अपणे पासका १ लाख किमत वाला वस्त्र राजसभामे सर्व लोकोंके सन्मुख डाला परंतु किसिकी हिंमत न हुइके उस वस्त्र कुं लेवे और जो मैरे घरमें रहे हुवे मुनियोमें दूपणका गंधभि होवे तो दोपारोपणकरणेवाले या कहेणेवाले इस पटीकुं उठावो ऐसा कहकर पुरोहित चुपका हूवा उसके वाद वहां राजसभामें वहुतचैत्यवासियोके भक्त मंत्री श्रेष्ठि प्रमुख प्रधान पुरुष वैठेथे परंतु किसीने भि उस पटीकुं उठाही नहि उसकेवाद राजाके आगे पुरोहितने कहाके हेदेव

न विनापरवादेन, रमते दुर्जनो जनः,
श्वेव सर्वरसान् भुक्त्वा विनाऽमेध्यं न तृप्यति ॥ १ ॥
महतां यदेव मूर्धनि तदेव नीचाश्रयाय मन्यन्ते ॥
लिंगं प्रणमंति वुधाः, काकः पुनरासनी कुरुते ॥ २ ॥

व्याख्या–जेसे कुत्ता सर्व रसका भोजनकरकेभि विष्ठा विना धाये नहिं इसीतरह दुर्जन मनुष्यभी निंदा किये विना संतोष पावे नहिं ॥ १ ॥ मोटा पुरुषोंके जो वस्तु मस्तक उपर धारण लायक होती है उसकुं नीच पुरुष अपणा नीच आश्रय माने है जैसे

वाद विचार न्यायवादी राजाके सन्मुख किया हूवा शोभे है इस कारणसें युक्त अयुक्त विचारमे चतुर ऐसे आपको प्रसन्न होकर उस सद्धर्म विषयि वाद विचार अवसरमे सभापति पणे होणा होगा यह पुरोहितका वचन सुणके श्रीदुर्लभ राजाने कहा कि इसमे क्या अयुक्त हे अर्थात् यह कहणा तो अच्छा है, यह तो हमारा कर्त्तव्यही हे इसलिये कुछभी अनिष्ट नही है और सद्धर्मविषयी-वादविचार अवश्य होणा हि चाहिये सद्धर्मविषयि वादविचारमे सभापति होणा और सद्धर्मका निर्णय कराके उसका अच्छीतरह संरक्षण करणा और कराणा यह हमारा मुख्य कर्त्तव्य और धर्म है वास्ते इस सद्धर्मविषयिवादविचारमे समदृष्टिपूर्वक सभापति-पणे हाजर होवुगा इसतरे श्रीदुर्लभराजाने पुरोहितका वचन अगीकारकरा तब उस पंचासर सज्ञक बडे देहरासरमे-सिंहा-सन गादी गोलआसणवगेरेकि बिछायत भई बाद चैत्यवासी सूराचार्य वगेरे नानादेशोद्भव उज्वल श्लक्ष्ण चाकचिक्य वस्त्र पहरे हूवे रजोहरणसहित केसोमे तैल लगाया है ऐसे लंबमान मुहपत्ति सहित तैलसें ओपित डंडयुक्त तांबूल खाते हुवे लाल मुख जिणुंका पालखियोमे बैठे ऐसे भंडारी मंत्री सेठ प्रमुख धनवान श्रावक भक्तिसे साथमें है जिणोंके सधवश्राविका अपणाआपणा आचार्योंका गुणगातिभई भक्तिसहितधवलमंगल गीत ध्वनिसें रंजित किया है सबलोकोंको जिणोने, भट्ट विरुद बोलते हैं लोक नमस्कार करते हैं मार्गमे जिणोंको, पंडितप-णेका अभिमानसहित हाथमें वादपुस्तिका धारणकियाहै ऐसे बडे आडंबर सहित

राजाके सन्मुख जिस स्थानमें आपलोक कहेंगे वहां पर वाद विषयी विचार करणेकुं तयार हैं सुविहित मुनियो शोभन धर्ममार्ग प्रगट करणेवास्तेहि विशेष कष्टयुक्त ग्राम नगरादिकोंमें विहार करते हैं सर्वत्र देश परदेशमें विचरतें हैं और श्रेष्ठ धर्ममार्ग प्रगट करणेका मुख्य कार्य है इसलिये परिश्रम करते हैं सो राजाके सामने आपलोकोंके साथ वै सुविहितमुनियों वादविषयीविचार करणेमें अत्यंत उत्कंठा सहित हैं इसवास्ते आपलोकोकुं विलंब करणा नहीं शूराचार्यप्रमुखोंके सन्मुख पूर्वोक्त प्रमाणे पुरोहितके कहेणेके अनंतर हि अपणे पंडितपणेका गर्वकरके उण सर्व शूराचार्य प्रमुख चैत्यवासी मुनियोंने आपणे मनमे विचारा कि सर्व राजाधिकारी लोक जबतक हमारे वसमें हैं तबतक उण परदेशी मुनियोंसें हमकुं क्या भय है अर्थात् किसितरेका भय नहि है

एसा विचारके चैत्यवासी आचार्योंने पीछा प्रत्युत्तरमें पुरोहितकुं कहाकि हे पुरोहित राजाके सन्मुख सुविहित मुनियोंके साथ वाद विषयि हमारा विचार होवो अर्थात् सद्धर्म विषयिवाद हमलोक करेंगें उसके अनंतर पुरोहितने चैत्यवासी शूराचार्य प्रमुखके वचन अंगीकार किये और शूराचार्य प्रमुख प्रतिपक्षियोंने कहाकि अमुक दिनमें पंचासरा संज्ञक वडे देहरासरमें सद्धर्म विषयी वाद विचार होगा एसा निश्चयकरके सर्वलोकोके आगे कहा और पुरोहितनेभि एकांतमे राजाकुं कहा हे राजन् इहांके रहेनेवाले मुनियो परदेशसें आये हुवे सुविहित मुनियोंके साथ सद्धर्मविषयि वादविचार करणा चाहते हैं वह सद्धर्मविषयि

वाद विचार न्यायवादी राजाके सन्मुख किया हूवा शोभे है इस कारणसें युक्त अयुक्त विचारमे चतुर ऐसे आपको प्रसन्न होकर उस सद्धर्म विषयि वाद विचार अवसरमे सभापति पणे होणा होगा यह पुरोहितका वचन सुणके श्रीदुर्लभ राजानें कहा कि इसमे क्या अयुक्त है अर्थात् यह कहणा तो अच्छा है, यह तो हमारा कर्त्तव्यही है इसलिये कुछभी अनिष्ट नही है और सद्धर्मविषयी-वादविचार अवश्य होणा हि चाहिये सद्धर्मविषयि वादविचारमे सभापति होणा और सद्धर्मका निर्णय कराके उसका अच्छीतरह संरक्षण करणा और कराणा यह हमारा मुख्य कर्त्तव्य और धर्म है वास्ते इस सद्धर्मविषयिवादविचारमे समदृष्टिपूर्वक सभापति-पणे हाजर होवुंगा इसतरे श्रीदुर्लभराजाने पुरोहितका वचन अंगीकारकरा तब उस पंचासर संज्ञक वडे देहरासरमे-सिंहा-सन गादी गोलआसणवगेरेकि विछायत भई बाद चैत्यवासी सूराचार्य वगेरे नानादेशोद्भव उज्वल श्लक्ष्ण चाकचिक्य वस्त्र पहरे हूवे रजोहरणसहित केसोमे तैल लगाया है ऐसे लंबमान मुहपत्ति सहित तैलसें ओपित डंडयुक्त तांबूल खाते हुवे लाल मुख जिणुका पालखियोमे वैठे ऐसे भंडारी मंत्री सेठ प्रमुख धनवान श्रावक भक्तिसे साथमें हैं जिणोंके सधवश्राविका अपणाआपणा आचार्योंका गुणगातिभई भक्तिसहितधवलमंगल गीत ध्वनिसे रंजित किया है सवलोकोंको जिणोने, भट्ट विरुद बोलते है लोक नमस्कार करते हैं मार्गमे जिणोंको, पंडितप-णेका अभिमानसहित हाथमें वादपुस्तिका धारणकियाहै ऐसे वडे आडंवर सहित

श्रीसूराचार्य प्रमुख (८४) चोरासी आचार्यो सूर्योदयमेंहि आयके अपणे अपणे आसनों पर बैठे, और राजाके प्रधानपुरुषोंने श्रीदुर्लभमहाराजाकोंभि बुलाये तब श्रीदुर्लभराजाभि बहुत पुत्र और सेवकादिकके परिवार सहित आयके वहां सभामें बैठे उसके बाद पुरोहितकुं राजाने कहा हे पुरोहित ! मान्यवर देशान्तरसें आये सुविहित आचार्यकों जलदि बोलावो अनंतर पुरोहित शीघ्र जाकर श्रीवर्द्धमानसूरिजीकों वीनति करी हे भगवन् ! पंचासरसंज्ञक चैत्यमें सर्वचैत्यवासी आचार्य परिवारसहित आयके बैठे हैं श्रीदुर्लभमहाराजाभि आयेहैं और श्रीदुर्लभराजाने सर्व आचार्योंकुं नमस्कार करके और ताम्बूल देके सत्कार किया है और अब आपके आगमनकी राह देखतें हैं

यह वृत्तांत पुरोहितके मुखसें सुणके पूज्यपाद श्रीवर्द्धमान सूरिजी श्रीसुधर्मस्वामि श्रीजंबुस्वामिप्रमुखचवदपूर्वधारियोंकुं युग प्रधानोकुं दूसरे सर्वसुविहित आचार्योंकुं हृदय कमलके बीचमे विचारके अर्थात् स्मरण करके, पंडितजिनेश्वरगणि प्रमुख कितनेक गीतार्थ श्रेष्ठ साधुवोंकों साथ लेके चले पंचासरसंज्ञक चैत्यके सन्मुख, कन्या गाय शंख भेरी दही फल पुष्पमाला वगेरे सन्मुख आते हुवे मंगलरूप अनुकूल श्रेष्ठ सकुन देखनेसें संभावित है सिद्ध प्रयोजनजिनके ऐसे श्रीवर्धमानसूरिजी वगेरह वहां सभामें पोहोचे और पंडित श्रीजिनेश्वरगणिजीका बिछाया कंबल पर और श्रीदुर्लभ राजानें देखाया जो योग्य स्थान वहां बैठे. बाद पंडित श्रीजिनेश्वरगणिजीभि श्रीगुरुमहाराजकी आज्ञासें

श्रीगुरुमहाराजकुं नमस्कार करके श्रीगुरुमहाराजकेचरणकमलोंके पासही बैठे गुर्वाज्ञा पालनेके लिये, इसअवसरमे राजा ताम्बूल देनेके वास्ते प्रवर्तमान हुवा तब सर्व सभासमक्ष श्रीवर्धमान सूरिजी बोले हे महाराज! जैन सिद्धांतमे मुनियोंको ताम्बूल भक्षण स्नान करणा पुष्पमाला पहेरना सुगंध पदार्थलगाना नख केश दांतका संस्कार करना मना किया है. याद–संजमे सुट्ठि अप्पाणं० लहुभूय विहारिणं० ॥ १० ॥ दशवैकालिक सूत्रके तीसरे अध्ययनसें ५२ अनाचीर्ण सुनाये तब राजा बोला ताम्बूल खानेमे क्या दोष है आचार्यने कहा कामराग बढानेवाला ताम्बूल है यह जगत् प्रसिद्ध है कहाभी है श्लोक–ताम्बूलं कटु तिक्तमुष्णमधुर क्षारं कषायान्वितं। वातघ्नं कफनाशन कृमिहर दौर्गंध्यनिर्नाशनम्। वक्रस्याऽभरणं विशुद्धिकरणं कामाग्निसंदीपनं। ताम्बूलस्य सखे! त्रयोदश गुणाः स्वर्गेऽपि ते दुर्लभाः ॥ १ ॥

अर्थ ॥ हे मित्र! तांबूलके १३ गुण है कडवा १ तीखा २ मधुर ३ उष्ण ४ क्षार ५ और कषाय रससहित ६ वायु ७ कफका नाशक ८ कृमिमिटानेवाला ९ दुर्गंधनाशक १० मुखका आभरण ११ शुद्धिकारक १२ कामाग्निका दीपक १३ इसलिये ब्रह्मचारियोंकुं तांबूल खाणा रागवृद्धिका हेतु होणेसै सम्यक् नही है स्मृतिमेभि कहा है ॥ ब्रह्मचारियतीनां च, विधवानां च योपिताम्। तांम्बूलभक्षणं विप्र! गोमासान्न विशिष्यते ॥ १ ॥ स्नानमुद्वर्त्तनाभ्यंगं, नखकेशादिसंस्क्रियाम्। धूपं माल्य च गंधं च, त्यजंति ब्रह्मचारिणः ॥ २ ॥ अर्थ हे ब्राह्मण! ब्रह्मचारी १ यति २ विध-

वाली ३ इणोंकुं तांबूल खाणा गौमांसवत् है ॥ १ ॥ स्नान १ पीठी २ तैलकामर्द्दन ३ नखकेशादिकका संस्कार ४ धूप ५ माला ६ सुगंध ७ इत्यादि ब्रह्मचारि छोडते हैं ॥ २ ऐसा वचन आचार्यका सुनके विचक्षण लोकोंके हृदयमें हर्षउत्पन्न हुवा और श्रीवर्द्ध-मानसूरिजीपर बहुमान भया बाद श्रीवर्द्धमानसूरि बोले आचार्योंके साथ विचार होणेमे हमारा शिष्य सूरिजिनेश्वर जो उत्तर प्रत्युत्तर देवेगा वो हमारे प्रमाण है तब सब सभासदोंने कहा ऐसा होवो तदनतर चौराशी आचार्योंमें प्रधान चैत्यवासी सूराचार्य बोले अहो राजा मंत्रि प्रमुख सर्वलोको जो हम कहते है सो सुनो तब मंत्रिवगेरे चैत्यावासियोके पक्षपाति कहने लगे आप कहिये हमलोक साव-धान होके सुनते हैं बाद दुर्लभ राजा उस वक्तमें सब चैत्यवासी आचार्य साध्वाभास चकचकायमान समारा हुवा मस्तकमें केश जिणुके ताम्बूल रससे रंगा भया होठ ऐसे उद्भट वेषवाले सुगंध पुष्पोकी माला जिणोने पहरी ऐसे धूपित शुभ्र रेशमी वस्त्रपहरे हैं, ऐसोंको देखके विचार किया अहो विलास सहित चेष्टावाले यह लोक त्रिटप्राय अपणे कल्पसे च्युत है और देखो ये विदेशि महानुभाव उत्तम स्वभाववाले नीचे आसनपर बैठे भये लोच कियाहुवा मस्तकमें जिणुने मलीन वस्त्र पहरे हैं, जिणोंके दर्शन-मात्रसेंहि मालूम होता है शांततायुक्त तपनिष्ठमूर्त्ति निश्चय जो कोई गुणयुक्त शरीरी तीन जगतमें पूजनीय महाशीलव्रतपात्र कहे जाते हैं, वे येही महाव्रती है ऐसा राजा विचारते हैं उतने सूराचार्यने पूर्वपक्षकहा जैसे 'अहो वसतिनिवासी श्रमणो!

सावधान होके सुनो इसवक्तके मुनियोकुं जिनभवनमे रहना ही योग्य है जिनगृहमे रहणेसे निरपवाद ब्रह्मव्रतका संभव है यतियोके ब्रह्मचर्य ही प्रधान है और व्रतोंके सदृश अपवाद इसमें नही है, सिद्धांतमे ब्रह्मव्रतको सर्वव्रतोमे निरपवाद कहा है 'न वि किंचि अणुन्नायं, पडिसिद्धं वा वि जिणवरिंदेहिं'

अर्थ ॥ तीर्थंकरदेवने कुछ आज्ञा नही दीया है वैसा मनाभि नही किया है मैथुनकुं छोडके

उपाश्रयमे रहणेसे स्त्रीयोका, मनोहरशब्दसुणनेवगेरेसे ब्रह्म व्रत सर्वथा नही पालशके मानसिक विकारादि संभवसे स्त्रीजनका मधुरशब्दसुणना रूपदेखना कोकिलादिकका मधुरबोलना इत्यादि कारणोसे भुक्तभोगि यतियोकु पूर्वानुभूत संभोग स्मरणमे आवे अभुक्त भोगियोंकु कुतूहल प्रगट होवे और साधुवोंका किया भया निरतर कानोको अमृत सरीखा स्वाध्याय ध्वनि सुणके कितनेक साधुओका शरीरका लावन्यदेखके प्रोषितपतिवाली वनितावोकी रमणेका इच्छा वगेरे प्रगट होवे इसतरह परस्पर निरतररूपका देखना गीत श्रवणादिकसै दुर्जयमन्मथके जोरमे चारित्रनाशादि अनेक दोषोकि पुष्टि होती है कहा है ॥ गाथा ॥

थीवज्जिअं वियाणह, इत्थीणं जत्थठाण रूवाणि ।
सद्दाय न सुचंती तापियतेसिं न पिच्छंति ॥ १ ॥
बंभवयस्सअगुत्ती, लज्जानासोय पीइवुड्ढीअ ।
साहु तवोधणनासो, निवारणा तित्थपरिहाणी ॥ २ ॥

अर्थ ॥ साधुओकों स्त्रीयोका वेठणा रूपदेखणा शब्दका

चास्त्री ३ इणोंकुं तांबूल खाणा गौमांसवत् है ॥ १ ॥ स्नान १ पीठी २ तैलकामर्दन ३ नखकेशादिकका संस्कार ४ धूप ५ माला ६ सुगंध ७ इत्यादि ब्रह्मचारि छोडते है ॥ २ ऐसा वचन आचार्यका सुनके विचक्षण लोकोंके हृदयमें हर्षउत्पन्न हुवा और श्रीवर्द्धमानसूरिजीपर बहुमान भया बाद श्रीवर्द्धमानसूरि बोले आचार्योंके साथ विचार होणेमे हमारा शिष्य सूरिजिनेश्वर जो उत्तर प्रत्युत्तर देवेगा वो हमारे प्रमाण है तब सब सभासदोंने कहा ऐसा होवो तदनंतर चौराशी आचार्योंमें प्रधान चैत्यवासी सूराचार्य बोले अहो राजा मंत्रि प्रमुख सर्वलोको जो हम कहते है सो सुनो तब मंत्रिवगेरे चैत्यावासियोंके पक्षपाति कहने लगे आप कहिये हमलोक सावधान होके सुनते हैं बाद दुर्लभ राजा उस वक्तमें सब चैत्यवासी आचार्य साध्वाभास चकचकायमान समारा हुवा मस्तकमें केश जिणुके ताम्बूल रससे रंगा भया होठ ऐसे उद्भट वेषवाले सुगंध पुष्पोंकी माला जिणोने पहरी ऐसे धूपित शुभ्र रेशमी वस्त्रपहरे हैं, ऐसोंको देखके विचार किया अहो विलास सहित चेष्टावाले यह लोक विटप्राय अपणे कल्पसे च्युत हैं और देखो ये विदेशि महानुभाव उत्तम स्वभाववाले नीचे आसनपर बैठे भये लोच कियाहुवा मस्तकमें जिणुने मलीन वस्त्र पहरे है, जिणोंके दर्शनमात्रसेंहि मालूम होता है शांततायुक्त तपनिष्ठमूर्त्ति निश्चय जो कोई गुणयुक्त शरीरी तीन जगतमें पूजनीय महाशीलव्रतपात्र कहे जाते है, वे येही महाव्रती है ऐसा राजा विचारते है उतने सूराचार्यने पूर्वपक्षकहा जैसे 'अहो' वसतिनिवासी श्रमणो!

सावधान होके सुनो इसवक्तके मुनियोंकुं जिनभवनमे रहना ही योग्य है जिनगृहमे रहणेसे निरपवाद ब्रह्मव्रतका संभव है यतियोंके ब्रह्मचर्य ही प्रधान है और व्रतोंके सदृश अपवाद इसमें नही है, सिद्धांतमे ब्रह्मव्रतको सर्वव्रतोंमे निरपवाद कहा है 'न वि किंचि अणुन्नायं, पडिसिद्धं वा वि जिणवरिंदेहिं'

अर्थ ॥ तीर्थंकरदेवने कुछ आज्ञा नही दीया है वैसा मनाभि नही किया है मैथुनकु छोडके

उपाश्रयमें रहणेसे स्त्रीयोका, मनोहरशब्दसुणनेवगेरेसै ब्रह्म व्रत सर्वथा नही पालशके मानसिक विकारादि संभवसे स्त्रीजनका मधुरशब्दसुणना रूपदेखना कोकिलादिकका मधुरबोलना इत्यादि कारणोंसे भुक्तभोगि यतियोकु पूर्वानुभूत संभोग स्मरणमे आवे अभुक्त भोगियोंकु कुतूहल प्रगट होवे और साधुवोंका किया भया निरतर कानोको अमृत सरीखा स्वाध्याय ध्वनि सुणके कितनेक साधुवोंका शरीरका लावन्यदेखके प्रोषितपतिवाली वनितावोंकी रमणेका इच्छा वगेरे प्रगट होवे इसतरह परस्पर निरतररूपका देखना गीत श्रवणादिकसै दुर्जयमन्मथके जोरसै चारित्रनाशादि अनेक दोषोंकि पुष्टि होती है कहा है ॥ गाथा ॥

थीवज्जिअं वियाणह, इत्थीणं जत्थठाण रूवाणि ।
सद्दाय न सुचंती तापियतेसिं न पिच्छंति ॥ १ ॥
बंभवयस्सअगुत्ती, लज्जानासोय पीइवुड्ढीअ ।
साहु तवोधणनासो, निवारणा तित्थपरिहाणी ॥ २ ॥

अर्थ ॥ साधुवोंकों स्त्रीयोंका वेठणा रूपदेखणा शब्दका

चाखी ३ इणोंकुं तांबूल खाणा गौमांसवत् है ॥ १ ॥ स्नान १ पीठी २ तैलकामर्दन ३ नखकेशादिकका संस्कार ४ धूप ५ माला ६ सुगंध ७ इत्यादि ब्रह्मचारि छोडते हैं ॥ २ ऐसा वचन आचार्यका सुनके विचक्षण लोकोंके हृदयमे हर्षउत्पन्न हुवा ओर श्रीवर्द्धमानसूरिजीपर बहुमान भया बाद श्रीवर्द्धमानसूरि बोले आचार्योंके साथ विचार होंणेमे हमारा शिष्य सूरिजिनेश्वर जो उत्तर प्रत्युत्तर देवेगा वो हमारे प्रमाण है तब सब सभासदोंने कहा ऐसा होवो तदनंतर चौराशी आचार्योंमें प्रधान चैत्यवासी सूराचार्य बोले अहो राजा मंत्रि प्रमुख सर्वलोको जो हम कहते हैं सो सुनो तब मंत्रिवगेरे चैत्यावासियोके पक्षपाति कहने लगे आप कहिये हमलोक सावधान होके सुनते हैं बाद दुर्लभ राजा उस वक्तमें सब चैत्यवासी आचार्य साध्वाभास चकचकायमान समारा हुवा मस्तकमें केश जिणुके ताम्बूल रससे रंगा भया होठ ऐसे उद्भट वेषवाले सुगंध पुष्पोंकी माला जिणोने पहरी ऐसे धूपित शुभ्र रेशमी वस्त्रपहरे हैं, ऐसोंको देखके विचार किया अहो विलास सहित चेष्टावाले यह लोक विटप्राय अपणे कल्पसे च्युत हैं और देखो ये विदेशि महानुभाव उत्तम स्वभाववाले नीचे आसनपर बैठे भये लोच कियाहुवा मस्तकमें जिणुने मलीन वस्त्र पहरे हैं, जिणोंके दर्शनमात्रसैंहि मालूम होता है शांततायुक्त तपनिष्टमूर्त्ति निश्चय जो कोई गुणयुक्त शरीरी तीन जगतमें पूजनीय महाशीलव्रतपात्र कहे जाते हैं, वे येही महाव्रती हैं ऐसा राजा विचारते हैं उतने सूराचार्यने पूर्वपक्षकहा जैसे 'अहो' वसतिनिवासी श्रमणो!

सावधान होके सुनो इसवक्तके मुनियोकुं जिनभवनमे रहना ही योग्य है जिनगृहमे रहणेसे निरपवाद ब्रह्मव्रतका संभव है यतियोंके ब्रह्मचर्य ही प्रधान है और व्रतोंके सदृश अपवाद इसमें नही है, सिद्धांतमे ब्रह्मव्रतको सर्वव्रतोंमे निरपवाद कहा है 'न वि किंचि अणुन्नायं, पडिसिद्धं वा वि जिणवरिंदेहिं'

अर्थ ॥ तीर्थंकरदेवने कुछ आज्ञा नही दीया है वैसा मनाभि नही किया है मैथुनकु छोडके

उपाश्रयमें रहणेसे स्त्रीयोका, मनोहरशब्दसुणनेवगेरेसैं ब्रह्म व्रत सर्वथा नही पालशके मानसिक विकारादि संभवसे स्त्रीजनका मधुरशब्दसुणना रूपदेखना कोकिलादिकका मधुरबोलना इत्यादि कारणोंसे भुक्तभोगि यतियोंकु पूर्वानुभूत संभोग स्मरणमें आवे अभुक्त भोगियोंकु कुतूहल प्रगट होवे और साधुवोंका किया भया निरंतर कानोंको अमृत सरीखा स्वाध्याय ध्वनि सुणके कितनेक साधुवोंका शरीरका लावन्यदेखके प्रोषितपतिवाली वनितावोंकी रमणेका इच्छा वगेरे प्रगट होवे इसतरह परस्पर निरंतररूपका देखना गीत श्रवणादिकसैं दुर्जयमन्मथके जोरसें चारित्रनाशादि अनेक दोषोंकि पुष्टि होती है कहा है ॥ गाथा ॥

थीवज्जिअं वियाणह, इत्थीणं जत्थठाण रूवाणि ।
सद्दाय न सुचंती तापियतेसिं न पिच्छंति ॥ १ ॥
बंभवयस्सअगुत्ती, लज्जानासोय पीइवुड्ढीअ ।
साहु तवोधणनासो, निवारणा तित्थपरिहाणी ॥ २ ॥

अर्थ ॥ साधुवोंकों स्त्रीयोका वेठणा रूपदेखणा शब्दका

चाखी ३ इणोंकुं तांबूल खाणा गौमांसवत् है ॥ १ ॥ स्नान १ पीठी २ तैलकामर्द्दन ३ नखकेशादिकका संस्कार ४ धूप ५ माला ६ सुगंध ७ इत्यादि ब्रह्मचारि छोडते हैं ॥ २ ऐसा वचन आचार्यका सुनके विचक्षण लोकोंके हृदयमे हर्षउत्पन्न हुवा और श्रीवर्द्ध-मानसूरिजीपर वहुमान भया वाद श्रीवर्द्धमानसूरि वोले आचार्योंके साथ विचार होणेमे हमारा शिष्य सूरिजिनेश्वर जो उत्तर प्रत्युत्तर देवेगा वो हमारे प्रमाण है तब सब सभासदोंने कहा ऐसा होनो तदनंतर चौराशी आचार्योंमे प्रधान चैत्यवासी सूराचार्य वोले अहो राजा मंत्रि प्रमुख सर्वलोको जो हम कहते हैं सो सुनो तब मंत्रिवगेरे चैत्यावासियोंके पक्षपाति कहने लगे आप कहिये हमलोक साव-धान होके सुनते हैं वाद दुर्लभ राजा उस वक्तमे सब चैत्यवासी आचार्य साध्वाभास चकचकायमान समारा हुवा मस्तकमें केश जिणुके ताम्बूल रससे रंगा भया होठ ऐसे उद्भट वेपवाले सुगंध पुष्पोंकी माला जिणोने पहरी ऐसे धूपित शुभ्र रेशमी वस्त्रपहरे हैं, ऐसोंको देखके विचार किया अहो विलास सहित चेष्टावाले यह लोक विटप्राय अपणे कल्पसे च्युत है और देखो ये विदेशि महानुभाव उत्तम स्वभाववाले नीचे आसनपर वैठे भये लोच कियाहुवा मस्तकमें जिणुने मलीन वस्त्र पहरे हैं, जिणोंके दर्शन-मात्रसेंहि मालूम होता है शांततायुक्त तपनिष्टमूर्त्ति निश्चय जो कोई गुणयुक्त शरीरी तीन जगतमें पूजनीय महाशीलव्रतपात्र कहे जाते हैं, वे येही महाव्रती हैं ऐसा राजा विचारते हैं उतने सूराचार्यने पूर्वपक्षकहा जैसे 'अहो ' वसतिनिवासी श्रमणो !

सावधान होके सुनो इसवक्तके मुनियोकुं जिनभवनमे रहना ही योग्य हैं जिनगृहमे रहणेसे निरपवाद ब्रह्मव्रतका संभव हैं यतियोके ब्रह्मचर्य ही प्रधान है और व्रतोके सदृश अपवाद इसमें नही है, सिद्धांतमे ब्रह्मव्रतकों सर्वव्रतोंमे निरपवाद कहा है 'न वि किंचि अणुन्नायं, पडिसिद्धं वा वि जिणवरिंदेहिं'

अर्थ ॥ तीर्थंकरदेवने कुछ आज्ञा नही दीया है वैसा मनाभि नही किया है मैथुनकु छोडके

उपाश्रयमें रहणेसे स्त्रीयोका, मनोहरशब्दसुणनेवगेरेसें ब्रह्म व्रत सर्वथा नही पालशके मानसिक विकारादि संभवसे स्त्रीजनका मधुरशब्दसुणना रूपदेखना कोकिलादिकका मधुरबोलना इत्यादि कारणोंसे भुक्तभोगि यतियोकु पूर्वानुभूत संभोग सरणमे आवे अभुक्त भोगियोंकु कुतूहल प्रगट होवे और साधुवोंका किया भया निरंतर कानोको अमृत सरीखा स्वाध्याय ध्वनि सुणके कितनेक साधुवोका शरीरका लावन्यदेखके प्रोपितपतिवाली वनितावोकी रमणेका इच्छा वगेरे प्रगट होवे इसतरह परस्पर निरतररूपका देखना गीत श्रवणादिकसें दुर्जेयमन्मथके जोरसें चारित्रनाशादि अनेक दोषोंकि पुष्टि होती है कहा है ॥ गाथा ॥

थीवज्जिअं वियाणह, इत्थीणं जत्थठाण रूवाणि ।
सद्दाय न सुचंती तापियतेसिं न पिच्छंति ॥ १ ॥
बंभवयस्सअगुत्ती, लज्जानासोय पीइवुड्ढीअ ।
साहु तवोधणनासो, निवारणा तित्थपरिहाणी ॥ २ ॥

अर्थ ॥ साधुवोको स्त्रीयोका वेठणा रूपदेखणा शब्दका

सुणना यह नही करणा स्त्रीयोंभी साधुवोंकों हरवक्त नही देखे स्त्री रहित स्थानमे रहणा जाणो ॥ १ ॥ स्त्रीसाथरहणेसे ब्रह्मव्रतकी अगुप्ति लज्जाका नाश प्रीतिकी वृद्धि साधुके तपरूप धनका नाश धर्मसे दूर होणा तीर्थकी हानि इत्यादि दोष होते है ॥ २ ॥ इसलिये वसति वास यतिकुं युक्त नही है

लोकमेभी कहते हैं

"शृणु हृदयरहस्यं यत्प्रशस्यं मुनीनां,
न खलु योषित्सन्निधिः संविधेयः ॥
हरति हि हरिणाक्षीक्षिप्तमक्षिक्षुरप्र
प्रहतशमतनुत्रं चित्तमप्युन्नतानाम्" ॥ १ ॥

मुनियोंके हृदयका रहस्य प्रशंसनीय सुनो स्त्रीकी सोबत नही करणी स्त्रीयोंका डालाहुवा नेत्ररूपशस्त्रोंसे शमतनुत्राणरूप चित्त वृद्धमुनियोंका हरति हे १ जिन मंदिरमे रहणेसे सदा स्त्रीयोंका संभव नहि होता हैं कदाचित् चैत्यवंदनके लिये क्षणमात्र आणे जाणे वालीयोंके साथ वैसाप्रसंग नही प्राप्त होता है इसलिये प्राणातिपातादिकके जैसा अनेक दोष दुष्ट होनेसे परघरमे रहना ठीकनही होनेसे मंदिरमे रहनाहि इसवक्तके मुनिजनोंकुं संगत है, वहहि कहते है, इस वक्तके मुनियोंकुं जिनमंदिरमें निवासविना- उद्यानमे रहना या परघरमे निवास करना यह दो विकल्पमें द्वितीय विकल्प तो दासी पुत्रवत् नहीवनता है कारण परघरमें स्त्री संसर्ग हरवक्त रहता है प्रथम उद्यानपक्ष तो सपक्ष सदृश हमारे पक्षकुं नहीहठाता है स्त्रीपरिचयादि और आधाकर्मादि दोष

समुहसे भक्षितहोणेसे दिखाते है उद्यानमे रहते भये यतीयों नवीन आंवेकीमंजरीकेस्वादसै पचमस्वरउच्चारण करते कोइल का शब्दसुणनेसै और मालती वगेरे पुष्पोंका सुगंध लेणेसैं समाधियुक्तचित्तवालोकाभि चित्तविक्षेपहोता है कोइलका बोलना सुगंधग्रहणादि भदनोद्दीपनविभावमै भारतादिशास्त्रोमें कहा है, और क्रीडा करणेकुं आये कामीजनोंके आणेसे स्त्रीपरिचयादिकमें क्या कहणा है अथवा निरतरनवीन नवीन शास्त्राभ्यास करणेवाले मुनियोको स्त्रीपरिचयादि दोप न होवे तथापि लोकोंके संचार विना उद्यानमे रहते मुनियोका चोर वगेरेसै वस्त्रादिलेणेका संभव है शरीरओरसंयमविराधनाका प्रसंगहोवै, 'वादि कहते हैं युगंधराचार्य ओरवज्रस्वामी वगेरह उद्यानमे समनसरे है ऐसा आगमप्रमाण है, इसपर पूर्वपक्षी कहता है यहकथनसत्यहै परतु अनापात असंलोकगुप्त एक द्वार उद्यान विषय है ऐसा इसवक्त प्रायें राजा चोर वगेरेसे वाधित होणेसे मिलना दुर्लभ है सो केसे इस समयके मुनिजनोको कल्पे इसलिये इस अवसरमे जिनमदिरमें हि साधुवोकुं निवास ठीक मालुमहोता है कारण जिनमदिरमें आधाकर्मादिदोपनहीहोता है प्रयोग देते है इदानींतन मुनियोंके रहने योग्य जिनमदिर है, आधाकर्मादिदोपरहितहोणेसे, निर्दोप आहारवत्, इहां असिद्ध हेतु नही है जिनप्रतिमाके लिये बनाया मंदिरमे आधाकर्मादि दोपका अवकास नही है यतिकेवास्ते मकान वणावेतो आधाकर्मी होवेहे और सुनो मुनि जिनमदिरमें नहीं रहे तब इसवक्त जिनमदिरोकी हानी होवे कारण पहले

कालानुभावसे श्रीमंतलोकसावधानहोके देवतत्वगुरुतत्वकुं मानणे-वाले श्रावक उत्कृष्टआदरसे चैत्योंकी संभालकरतेथे सांप्रततो दुषम-कालका दोषसे निरंतर कुटुंबकी प्रबलचितासंतापसे पीडितचित्त होनेसै इदरउदर चलते हुवे प्रायै निस्वश्रावकोंकों अपणेघरभी-वक्त पर आना मुस्किल होता है जिनमंदिरआना तो कहांसै होवे उसका संभालना यहतो कैसेबने और श्रीमंत तो विषय सुखमें लीनभयें राजसेवादिकृत्यमें तत्पररहते जिनमंदिरकादर्शनाभि नही करशक्तेहै संभालकरना कैसे बनशके, जिनमंदिरकी संभाल न होनेसे जिन चैत्यका नाशहोवे तीर्थविछेदका संभवहोवे और यति मंदिरमे रहते होवेंतो बहुतकालतक जिनघरबना रहै तीर्थ-व्यवच्छेद न होवे तीर्थरखणेकेवास्ते किंचित् अपवादभी सेवना आगममें कहा है

जो जेणगुणेण हिओ, जेणविणा वा न सिझए जंतु

जो जिस गुणसे अधिक होवे जिसविना जो सिद्धकार्य न होवे तब अपवाद सेवे इत्यादि सूक्ष्म दृष्टिसे विचारणेसै विद्वानोंके चित्तमे इस कालमें मुनियोकुं मंदिरमें रहनाठीकमालुम होताहै यह सूराचार्यने कहा. पूर्वपक्ष समस्त हृदयमें धारके उत्कटवादीपंडितरूपहाथीयोंमै मृगेंद्रसदृश श्रीजिनेश्वरसूरि बोले अहो सभासदो ! निरतर सर्वत्र निर्मलहृदयसे युक्तायुक्तविचार विषय बुद्धि पूर्वक कार्यकरणेवालेलोको ! मात्सर्यछोडके मध्य-स्थता धारके सावधान होके सुनो. पूर्वपक्षिने जिनभवनमे रहना इसवक्तके मुनियोकु उचित है निरपवादब्रह्मचर्यव्रतका संभव

होणेसे इत्यादिक कहके बंभवयस्स अगुत्ती इहां तक यतियोंकु परघरमे रहणेसे दोषकहा सो अब विकल्पपूर्वक विचारते हैं ॥ सुनो ॥ जो यहपरगृहवसतिदूषणकहा तुमने वो क्या सर्वदा है या इसवक्तहीहै प्रथमपक्ष सर्वदा तब उद्यानादिकमे रहते यतिजनोकुं चौरादिउपद्रवका कैसे प्रतिकारहोय इसपर ऐसा न कहना उससमयमें काल सुखकारीथा सो चौरादिउपसर्ग नहीहोताथा इस्से उद्यानमेनिवाससुनतेहै, परघरमे रहना नहीहै इति । उत्तरकहते है उसवक्तभि तस्करादि उपद्रव अनेकधा सुणनेसै और उसकालमेंभि मुनियोंकुं परगृहका आश्रय आगममे कहाहैं सो कहते हैं ॥

नयराइएसु घिप्पइ, वसही पुव्वामुहं ठवियवसहं

इत्यादि २ वृषभ कल्पनासे स्थापित नगरादिकमे यतियोको वसतिकी गवेषणा करणा नगर वगेरे विना ऐसी वसति नही संभवे और उद्यानमे रहनाही उसवक्त मान्यथा तब ठिकाने ठिकाने नगर गाममे रहणेका पाठ नहि बने इसलिये प्रथमवि उपाश्रय परघरमे रहना यतियोंकाथा सो पहला पक्ष नहि बना, अब दूसरा मक्ष अगीकारकरोगे तो हम पूछते हैं किस कारणसे साधुवोकुं परघरमे रहना नहि कल्पे जो स्त्री संसक्तादिकसे न कल्पे ऐसा कहोगे तो यह तो पहलेभि बनाथा उसवक्तभि स्त्रीरहित वसतिमिलनेसे या नहि मिलनेसे कथित यतना सिवाय और समाधिनहीं है वैसा इसवक्तभि आश्रय करलेणा न्याय सदृशहै कहा हैं यतना करणेवाले स्त्र्यादिसंसक्तस्थानमें इसवक्तभि ब्रह्मचर्य अगुप्ति

कालानुभावसे श्रीमंतलोकसावधानहोके देवतत्वगुरुतत्वकुं मानणे-वाले श्रावक उत्कृष्टआदरसे चैत्योंकी संभालकरतेथे सांप्रततो दुषम-कालका दोपसे निरतर कुटुंबकी प्रबलचिंतासंतापसे पीडितचित्त होनेसै इदरउदर चलते हुवे प्राये निस्वश्रावकोंकों अपणेघरभी-वक्त पर आना मुस्किल होता हे जिनमंदिरआना तो कहांसे होवे उसका संभालना यहतो कैसेबने और श्रीमंत तो विषय सुखमे लीनभयें राजसेवादिकृत्यमें तत्पररहते जिनमंदिरकादर्शनभि नही करशक्तेहे संभालकरना कैसे बनशके, जिनमंदिरकी संभाल न होनेसे जिन चैत्यका नाशहोवे तीर्थविछेदका संभवहोवे और यति मंदिरमे रहते होवेंतो बहुतकालतक जिनघरबना रहे तीर्थ-व्यवच्छेद न होवे तीर्थरखणेकेवास्ते किंचित् अपवादभी सेवना आगममें कहा है

जो जेणगुणेण ह्अिो, जेणविणा वा न सिझए जंतु

जो जिस गुणसे अधिक होवे जिसविना जो सिद्धकार्य न होवे तब अपवाद सेवे इत्यादि सूक्ष्म दृष्टिसे विचारणेसै विद्वानोंके चित्तमे इस कालमें मुनियोकुं मंदिरमें रहनाठीकमालुम होताहै यह सूराचार्यने कहा. पूर्वपक्ष समस्त हृदयमें धारके उत्कटवादीपंडितरूपहाथीयोंमे मृगेंद्रसदृश श्रीजिनेश्वरसूरि बोले अहो सभासदो ! निरतर सर्वत्र निर्मलहृदयसे युक्तायुक्तविचार विषय बुद्धि पूर्वक कार्यकरणेवालेलोको ! मात्सर्यछोडके मध्य-स्थता धारके सावधान होके सुनो. पूर्वपक्षिने जिनभवनमे रहना इसवक्तके मुनियोंकु उचित है निरपवादब्रह्मचर्यव्रतका संभव

- निच्छयओपमाणजुत्ता खुड्डलिआए वसंति जयणाए -

इत्यादि प्रमाणयुक्त छोटे उपाश्रयमेंभी जयणासे मुनि निश्चयसै रहै और भी सुनो, जिनमंदिरमे रहनेका समर्थन आत्माको वहुतअनर्थकारिहोनेसे योग नही सिद्धांतमें चैत्यमें रहना अत्यंतआशातनाका कारणहोनेसे मुनियोंकुं मनाकियाहै आशातना थोडीभी भवभ्रमणवृद्धिकाकारणहोणेसे अपथ्यसेवनवत् होतीहै ऐसा आगम है दुभिगंधमल० १ जइविन अहाकम्मं० २ आसायणमिच्छत्तं० ३, इत्यादि साधुका शरीर मेलसहितहोवे इसलिये मंदिरमेंरहणेसै आशातनाहोवे यद्यपि चैत्य आधाकर्मी न होवे तथापि रहणेका निषेधहै, कारण आशातना करणेसे मिथ्यात्व होता है, इसवास्ते कथंचित् आधाकर्मी उपाश्रयमे निवासभि सिद्धांतमे कहा है, जिनघरनिवासतो अत्यंत निषेध होनेसे नहि करणा उचितहै, इसकारणसे उपाश्रयमें रहणा प्राप्तहुवा वैसा प्रयोग है—यतियोंकुं परघरमे निवास करणा निःसंगता प्रगट होणेसे संयमशुद्धिहेतुत्वात् शुद्धआहारग्रहणवत् ऐसा, यद्यपि पूर्वपक्षिने चैत्यमें रहे सिवाय रक्षा होवे नहि तथा तीर्थविच्छेद होवे इत्यादि कहके चैत्यमें रहना स्थापा वोभि विचार नहि सहसक्ता है, केवल लोकोंकुं ठगना प्राय है, यतः तीर्थ अव्यवच्छेद किसकु कहते है क्या यतियोकुं मंदिरमे रहणेसे भगवानका मदिर प्रतिमा वनेरहै १ अथवा शिष्यप्रशिष्यादिपरपराका विच्छेद न होना सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रकीप्रवृत्तिरहना कहते है २ प्रथम पक्ष नहि वनता है चैत्यवासविनाभि तीर्थंकरोंके विंवादिककी अनुवृत्ति देखणेसे जैसे पूर्वदेशमे जिनप्रतिमाकु कुलदेव-

वगेरे दोष नहि लगते है, उसकारणसे पूर्वपक्षिने कहा इदानीं जिनगृहवास ही साधुवोंके संगत मालुम होता है इत्यादि, यत्यर्थ-क्रियमाणउपाश्रयमें आधाकर्मादि दोष होता है इहां तक सोवि अधिकतर दोष कवलित होणेसे चोरादि त्रास पिशाचादिभय-कल्पनाकरे सो कहते है, परघरमें (उपाश्रय) कदाचित् अधाकर्म अंगनासंसर्ग वगेरे दोष देखनेसे उपाश्रयका त्यागकरके जिनमंदि-रमेरहते सीलवान साधुवोंके जिनमंदिरमे शृंगारवती स्त्रीयोंके आनेसे गीतध्वनी करणेसे वैस्यादिकका नाटकहोनेसे वनिताकारूपादि-देखनेसे मन्मथका उद्दीपन होता है इसलिये यह उपस्थित भया ॥

यत्रोभयोः समो दोषः, परिहारश्च तादृशः ।
नैकपर्यनुयोज्यः स्यात्, तादृशार्थविचारणे ॥ १ ॥

जहां दोनुमें सदृश दोषहोता है, समाधानभि वैसाहि होता है वैसा अर्थ विचारणमें एक उत्तर न होता है ॥ १ ॥ हमारे पक्षमे स्त्रीसंसक्तपरघरमें कभि रहते उक्त दोष यतना करणेसे नहि होता और तुमारे पक्षमे तो जिनमंदिरमें रहणा सर्वथा वर्जित होनेसे कहां भि यतना नहि कहणेसे उक्तदोषकी पुष्टी कोण मनाकर सके, ऐसा नहि कहना गृहस्थोंका घर सांकडाहोवे यतना करणेसेंवि कथितदोषसे मुक्त होना मुस्किल है, प्रमाण युक्त घरमें यतिका आश्रयकहा है उहां उक्त दोष नहि होता है गृहस्थ सपूर्णघरसमर्पणकरे तथापि यति मितअवग्रहमेंहि रहै ऐसा सूत्रमे कहा है,

प्रमाण युक्त परघरके लाभमे तो संकीर्णमे भि यतनासे रहते दोष नहि है, कहा है

निच्छयओपमाणजुत्ता खुड्डलिआए वसंति जयणाए .

इत्यादि प्रमाणयुक्त छोटे उपाश्रयमेभी जयणासे मुनि निश्चयसे रहै और भी सुनो, जिनमंदिरमें रहनेका समर्थन आत्माको बहुतअनर्थकारिहोनेसे योग नही सिद्धांतमे चैत्यमें रहना अत्यंतआशातनाका कारणहोनेसे मुनियोंकुं मनाकियाहै आशातना थोडीभी भवभ्रमणवृद्धिकाकारणहोणेसे अपथ्यसेवनवत् होतीहै ऐसा आगम है दुभिगंधमल० १ जइविन अहाकम्मं० २ आसायणमिच्छत्तं० ३, इत्यादि साधुका शरीर मेलसहितहोवे इसलिये मंदिरमेंरहणेसे आशातनाहोवे यद्यपि चैत्य आधाकर्मी न होवे तथापि रहणेका निषेधहै, कारण आशातना करणेसे मिथ्यात्व होता है, इसवास्ते कथंचित् आधाकर्मी उपाश्रयमे निवासभि सिद्धांतमे कहा है, जिनघरनिवासतो अत्यंत निषेध होनेसे नहि करणा उचितहै, इसकारणसे उपाश्रयमे रहणा प्राप्तहुवा वैसा प्रयोग है—यतियोंकुं परघरमे निवास करणा निःसंगता प्रगट होणेसे संयमशुद्धिहेतुत्वात् शुद्धआहारग्रहणवत् ऐसा, यद्यपि पूर्वपक्षिने चैत्यमें रहे सिवाय रक्षा होवे नहि तथा तीर्थविच्छेद होवे इत्यादि कहके चैत्यमे रहना स्थापा वोभि विचार नहिं सहसक्ता है, केवल लोकोंकुं ठगना प्राय है, यतः तीर्थ अव्यवच्छेद किसकु कहते है क्या यतियोकुं मंदिरमे रहणेसे भगवानका मंदिर प्रतिमा वनेरहे १ अथवा शिष्यप्रशिष्यादिपरंपराका विच्छेद न होना सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रकीप्रवृत्तिरहना कहते है-२ प्रथम पक्ष नहि -वनता है चैत्यवासविनाभि तीर्थंकरोंके विंबादिककी अनुवृत्ति देखणेसे जैसे वंदे ` जिनप्रतिमाकुं कुलदेव-

ताकी बुद्धिसे पूजते है अन्यतीर्थीयोंके ग्रहणकरणेसै जिनप्रतिमा-वनी है तीर्थ विच्छेद नही होता है तब व्यर्थ चैत्यवासमें रहणेसै क्या प्रयोजन है इसवास्ते तीर्थअव्यवच्छेदकार्यसे मोक्षादि फल-सिद्धी नहीहै क्यों कि मिथ्यादृष्टिपरिग्रहीत जिनबिंबोंकुं मोक्षमार्गका अंग नही कहा है

मिच्छदिट्ठि परिग्गहिआ ओ पडिमा ओ भावगामो न हुंति

मिथ्यादृष्टिपरिगृहीत जिनप्रतिमा भावशुद्धिका कारण न होवे इति ॥ अब दूसरा विकल्प कहते है वोहि तीर्थअव्यवच्छेद अंगीकारकरो मोक्षमार्गहोनेसे चैत्यवास अंगीकारसै क्या प्रयोजन है सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रकी अनुवृत्तिविना जिनघर बिंबके सद्भावसेभि तीर्थोच्छेदहोता है, इसी कारणसे तीर्थंकरोंके कितनेक आंतरोंमे रत्नत्रयी न रहणेसे कहांभी जिनप्रतिमाके संभवमेंभी तीर्थविच्छेदकहा है, स्वयं कल्पिततीर्थअव्यवच्छित्ति आगममें विसंवादि होनेसे व्यर्थही है, और सुनो जिनगृहादि अनुवृत्ति तीर्थअव्यवच्छित्ति होवे तोभि यतियोंका चैत्यमें रहना और जिनगृहादि अनुवृत्ति इनदोनुंका श्यामलमैत्रतनयत्वसदृश प्रयोज्यप्रयोजकभाव नहि वनताहै सो देखातेहै श्यामदेवदत्तहैं मैत्रतनय होनेसै इहां श्यामत्वमें मैत्रतनयत्व प्रयोजक नहीं है, किंतु साकादिआहारपरिणतिलक्षणउपाधि श्यामत्वमें है परतु यतियोंका चैत्यमें रहणाप्रयुक्तअनुवृत्ति नहि है कारण जिन घरमें रहतेभि साताशील होनेसे जीर्णचैत्यकी जीर्णोद्धारकी चिंता न करणेसै चैत्यअनुवृत्ति नहि रहे, किंतु चैत्यचिंताप्रयुक्त

चैत्यअनुवृत्ति श्रावकभि करते हैं, तो चैत्यकी अनुवृत्ति कैसै नहोवै, निस्ओरश्रीमंतश्रावक इसवक्त मंदिरकी देखरेख करते है यद्यपि दुःषमकालके माहात्म्यसै कितनेक प्रमादि होवे तोभी और सुद्धश्रद्धालुश्रावकचैत्यकी संभाल करे हैं, देखते है इस वक्त कितनेक पुन्यवान् श्रावक अपणा कुटंवका भार समर्थ पुत्रपर रखके जिनमंदिरकी संभालहि निरतरकरते है इसकारणसै श्रावक कृत संभालसै चैत्य अनुवृत्ति सिद्ध है, इस वक्तके तुमारे जैसे आचार्य चैत्यके उपदेशसै अनेक आरंभ करते हुवे व्यर्थहि क्युं तकलीफ करते हैं, ओर तीर्थ अव्यवच्छेदका कारण अपवाद सेवनकर चैत्यवासका स्थापनकीया सोमि सिद्धांतका नहि जाणना तुमारा प्रगट करे है, इसका और अर्थ होनेसै, जो कोइयति ज्ञानादिगुणसै अधिकहोवे जिसविना संघादिक केनडे कार्य नहि सिद्धहोतेहोवे तव वो गुणाधिक मुनि स्वगुणमे वीर्य फोरै यह अर्थ कहनेवाला जो जेण० इस गाथाका उत्तरार्ध है ॥

सो तेणतम्मिकज्जे सव्वत्थामं न हावेइ

इति अर्थ वो ज्ञानादि गुणाधिक संघादि कार्यमे सर्वशक्ति वल न घटावे इस्सै तुमारि इष्टसिद्धि न होवै इसप्रकारसै सर्व वादिने कही युक्ति निराकरणसै यतियोंका जिनभवनमे निवासका निषेध सिद्ध होनेसै अपने पक्षमे समाधान कहते है. जिनगृहनिवास मुनियोंकु अयोग्य हे देवद्रव्यउपभोगादिवाला होनेसें जिनप्रतिमाके आगे चढाया हुवा नैवेद्यवत् । यह देवद्रव्यउपभोगादिमत्त्वहेतु

असिद्धनही है, जिनगृहमें रहते देवद्रव्यका उपभोग होता है सोने बैठने भोजनवगेरे करणेंसै अनेक भवमे भयंकरफलअवश्य होता है ॥ १ ॥ विरुद्ध हेतुभी नहि है मुनियोग्यता कर व्याप्यत्वमें विरुद्ध हेतु होता है ऐसा इहां नही है ॥

देवस्सपरीभोगो, अणंत जम्मेसु दारुणविवागो ।
जं देवभोगभूमी, वुढ्ढी न हु वट्टइ चरित्ते ॥ १ ॥

देवद्रव्यका परिभोग अनंतभवमे दारुण विपाकवाला होता है, जो देवभोगभूमी (जिनमंदिरकी भूमी) में रहै उसके चारित्रकी वृद्धि नहि होवै अर्थात् चारित्री न होवै ऐसा सिद्धांतमें कहा है देव भूमीमें रहते यतिके चारित्रके अभावसै भयंकर फल कहा है ॥ २ ॥ सत्प्रतिपक्षभी नही है आगमोक्तत्वात् यह वादीके प्रतिबल अनुमानको पहलेहि खंडन किया है ॥ ३ ॥ बाधित विषयभी हेतु नहि है प्रत्यक्षादिकसै अपहृत विषय न होनेसै "प्रत्यक्षसै हि इसवक्त जिनगृहमे रहना देखणेमे चैत्यवासके धर्मी मुनिअयोग्यता साध्यधर्महेतुविषयको बाधित होनेकर विषयापहारसै कैसै हेतुबाधितविषय नहि है ? ऐसा नहि कहना" इसवक्तमे मुन्याभासोका जिनगृहमे रहना देखणेसैंभि चैत्यवासको मुनि अयोग्यता बाधितपणा नहि है इसकारणसै हेतुकु विषयापहारके अभावसै बाधित विषयता नही है ॥ ४ ॥ इसलियै चैत्य मुनियोंके उपभोग योग्य है आधाकर्मादि दोषरहित होनेसै ऐसा तुमारा हेतु उक्तन्यायसै मुनियोंको चैत्योपभोगभोग्यता देवद्रव्य उपभोगादि दोषों करके आगममे बाधित होनेसै कालात्ययापदिष्ट

हेतु नहि है ॥ ५ ॥ पांच हेत्वाभास रहित होनेसे देवद्रव्य उपभोगादिमत्वहेतु शुद्ध है इसलियै भगवान्का गुण गान स्त्रीयोंका मंदिरमे नाचना, शंख पटह मेरी मृदंगादि वादित्र वादन, मालती वगेरह पुष्पोंका सुगंध जिन भवनमाला पूजा मंडप रचनादि भक्तिसे चैत्यनिवासमे देवद्रव्यका उपभोग होता है, लोकमेभी कहते है ॥

यदीच्छेन्नरकं गंतुं, सपुत्रपशुबांधवः ।
देवेष्वधिकृतिं कुर्याद्गोषु च ब्राह्मणेषु च ॥ १ ॥
नरकाय मतिस्ते चेत्पौरोहित्यं समाचर ।
वर्षं यावत्किमन्येन, माठपत्य दिनत्रयम् ॥ २ ॥

अर्थ जो पुत्रपशुबांधवसहित नरक जाणेकी इच्छा करे सो देवगृहमे निवासकरे, गोशालामे और ब्राह्मणोंके घरोंमे ॥ १ ॥ नरक जाणेकी बुद्धि होवे तो पुरोहितपणा एकवरसतककरो, जादा कहणेमै क्या तीन दिन मठपतिपणा करो ॥ २ ॥ इत्यादि लौकिक लोकोत्तरनिंदनीय होनेसै मठपतिपणेमै दीर्घसंसारकार्य आशातनामै कंपमानसाधु जिनधर्ममे पूर्णबुद्धिश्रद्धावालेभि जिन-गृहमे नहि रहतेहे लिखाहै (सामीवासावासे उवागए) इत्यादि आवश्यक चूर्ण्यादि शास्त्रोमे बहुत पाठ-देखणेसै साक्षा-तीर्थंकर गणधरोंसे सेवित (संविग्गं सण्णिभद्दं) इत्यादि तीर्थंकरादिकोने अनेक प्रकारसै कहा तथा—

धन्या अमी महात्मानो, निःसगा मुनिपुंगवाः ।
अपि क्वापि स्वकं नास्ति, येषां तृणकुटीरकं ॥ १ ॥

अर्थ यह महात्मा धन्यहै संगरहितश्रेष्ठ मुनि है जिणुंके तृणकी कुटीया वगेरे परभी स्वत्व नही है ॥ १ ॥ इत्यादि वचन समूहसै लोक प्रशस्य धन कनक पुत्र स्त्री स्वजन परिजन त्यागरूप, अपरिग्रहताका मुख्यास्पदभूत, सिझातर उपाश्रयका देनेवाला कहीयै उपाश्रयका मालिक जो होवै वो सिझातर होता है, इत्यादि बहुत तरेका सिद्धांत अक्षर देखनेसै भया है तात्विक बोध ऐसै पंडितजनबहुमत उपाश्रयमेंहि सत्यअनगारनाम धारणेवाले साधु अवस्थान कहते हैं, अपवादस्थानसैभी जिनगृहमे रहणा नहि कहते है इतने कहणेसै जिनमंदिरमे नहि रहणा सिद्ध हुवा, तब सूराचार्यकुं निरुत्तरकरके ऊर्ध्वभुजा करके श्रीजिनेश्वरसूरि बोले सो कहते है श्लोक ॥

एवं सिद्धांतवाक्यैर्बहुविधघटनाहेतुदृष्टांतयुक्तै-
रुक्तैरस्माभिरेतैरवितथसुयथोद्भासनोष्णांशुकल्पैः ।
कुग्राहग्रस्तचेताः परगृहवसतिं द्वेष्टि योऽसौ निकृष्टो,
दुर्भाषी बद्धवैरः कथमपि न सतां स्यान्मतो नष्टकर्णः॥१॥

भावार्थ, सिद्धांत अक्षरोंसै बहुत प्रकारका वचन हेतु दृष्टांत सहित हमने सत्य शोभन यथोद्भासन सूर्यकल्प वचन कहै सो कुत्सित आग्रहमे ग्रस्तचित्त यह वादी परघरवसतिका निषेध करता है और दुर्भाषी बद्धवैर द्वेष करे सो सज्जनोंके कैसै मान्य होवै ॥ १ ॥ इति ऐसा सभाके लोकोंको आनंदित करके राजादिकको प्रतीतिके लिये औरभी जिनेश्वरसूरि बोले हे महाराज! आपके लोकमे क्या 'पूर्वपुरुषप्रदर्शित नीति प्रवर्त्ते है, अथवा

आधुनिक पुरुष प्रवर्त्तित नीति प्रवर्चे है, राजा बोले हमारे सब दे-
शमेंभि हमारा पूर्वज वनराजचावडाकी नीति प्रवर्चे है और
नहि, तब जिनेश्वरसूरि बोले हेमहाराज! हमारे सिद्धांतमे श्रीतीर्थं-
कर और गणधर और चवदे पूर्वधारि वगेरेने जो मार्ग देखाया
वो प्रमाण करते है और नहि, राजा बोले इसी तरहहि पूर्वपुरुष
व्यवस्थापितहि मार्ग सर्वत्र प्रमाण होता है, जिनेश्वरसूरिने कहा
हेमहाराज! हम दूर देशसै आयेहैं सिद्धातपुस्तक साथमे नहि
लायेहैं इसलिये इणोंके मठोंसे पुस्तक मंगवावै सो आपको
प्रतीतिके लिये सन्मार्गनिश्चयके अक्षर देखावै, तब राजा बोले
बहुत युक्त कहते है अहो श्वेताम्बराचार्यों! जैन पुस्तक मेरे पुरुषकुं
साथमे लेजाके लावो, तव पुस्तकलाये जो पहले हाथमे आया
सो खोला, वो श्रीदेवगुरुके प्रसादसै चउदे पूर्व धारिका रचाभ-
या दशवैकालिक निकला उहा पहले यह श्लोक निकला यथा

अन्नट्ठंपगडंलयणं, भएज्ज

सयणासणं, उच्चारभूमिसंपन्नं, इत्थिपसु विवज्जियं ॥ १॥

. इत्यादि राजा बोले वांचो. जिनेश्वरसूरि बोले चैत्यवासी वांचै
तब राजाने चैत्यवासीयोंसै कहा आपवांचौ. चैत्यवासीयोंने यह
पाठ वांचते छोड दीया जिनेश्वरसूरि बोले हे महाराज! अन्यत्र
रात्रिमे चौरि होवे है राजसभामे दिनको चोरि होति है, राजा
बोले आप वाचो जिनेश्वरसूरि बोले पुरोहित वाचै तब राजाकी
आज्ञासै पुरोहितने (अन्नट्ठंपगडलयणं) इत्यादि पाठ वांचा अर्थ॥
गृहस्थने अपणेवास्ते अर्थात् साधुसै अन्यार्थं किया घर सय्या

संथारा आसण उच्चार प्रश्रवण भूमी सहित स्त्री पशु वर्जित ऐसै उपाश्रयमें साधु रहै जिनमंदिरमें नहि रहै यह वचन श्रीदुर्लभ राजाके मनमे वहुत रोचक हुवै, राजा बोले अहो ये जो कहते है सो सर्व सत्य है तव सब अधिकारियोने जाना अपणे गुरु सर्वथा निरुत्तर होगये है, वाद दिवान वगेरे बोले महाराज! चैत्यवासी हमारे गुरु है आप मानते है न्यायवादी राजा यावत् न बोले उतने जिनेश्वरसूरि बोले हे महाराज! कोइ मंत्रिका गुरु है कोइ भंडारिका गुरु है कोइ माडंविकका गुरु है सबके स्वामी आप है हमारा इहां कोण भक्त है, राजा बोले में आपका भक्तहुं, मैने आपकुं गुरु किये, वाद और राजा बोले सर्व गुरुवोंके सात सात गद्दी और हमारे गुरु नीचै बैठे यह कैसा, जिनेश्वरसूरि बोले हे महाराज! हमकुं गद्दीपर बैठना नहि कल्पै राजा बोले क्युंन कल्पै आचार्य बोले महाराज! गद्दीपर बैठणेसै असंयम होवै है भवति नियतमत्रासंयम इत्यादि श्लोकार्थका व्याख्यान किया, राजा बोले आप कहां रहते है? आचार्य बोले, महाराज विरोधियोंने स्थान रोका है सो कहांसे स्थान मिले, राजा बोले हे अमात्य बजारमे वहुत वडा अपुत्रियेका घर है वो इणुंकुं रहणेकों देवो, वाद राजा बोले भोजन कैसै होता है तव पुरोहित बोला हे देव इण महापुरुषोंके लिये क्या कहँ

लभ्यते लभ्यते साधुः, साधुश्चैव न लभ्यते।
अलब्धे तपसो वृद्धि, र्लब्धे देहस्य धारणा ॥ १ ॥

अर्थ आहार मिलेतो ठीक नहि मिलेतोभी अच्छा कारण नहि

मिलेतो तपकी वृद्धि होवै मिलेतो देहका रक्षण होवै ॥ १ ॥ इसलियै कभी आधा भोजन मिले कदाचित् उपवासभी होता हैं तव राजा आनंद और विषाद सहित बोले आप कितने साधु हैं पुरोहित बोला हे देव ! सर्व अष्टादश (१८) साधु है राजा बोले एक हाथीका भोजन पिंडसै तृप्त होवेंगें जिनेश्वरसूरि बोले हे महाराज ! पिंड मुनियोंकों नहि कल्पे, यह प्रथमहि कहा हैं सिद्धात पठनपूर्वक आपके आगे, तब राजा 'अहो अत्यंत निस्पृही है ऐसा जाणके, प्रीतियुक्त बोले मेरा पुरुष आगे चलेगा सुलभ भिक्षा होगी जादा कहनेसै क्या, इसप्रकारसै वाद करके चैत्यवासियोंको जीतके राजा मत्रवी सेठ सार्थवाह वगेरे नगरके प्रधान पुरुष सहित भट्टजनवसतिमार्गप्रसाधन यशके काव्य कहते हुवै पाया खरतरविरुद जिणनें ऐसै श्रीवर्द्धमानसूरिसहित जिनेश्वरसूरि वसतिमे प्रवेश कीया ऐसे गुर्जरदेशमे प्रथम चैत्यवासीयोंका पक्ष निराकरण करके भगवत् प्रोक्त वसतिमार्ग प्रवर्त्तन प्रथम जिनेश्वरसूरिने कीया ॥ खरतर विरुदका अर्थ लिखते है

॥ अथ खरतरशब्दस्य व्युत्पत्तिर्लिख्यते ॥

॥ १ अतिशयेन खरा अनर्मच्छद्मधर्मव्यवहारपटवो ये ते खरतराः

॥ २ 'अतिशयेन खरा सत्यप्रतिज्ञा ये ते खरतराः'

॥ ३ खः सूर्यः तद्वत् राजन्ते निःप्रतिमप्रतिभा प्राग्भारप्रभाभिः प्रतिवादिविद्वज्जनसंसदि ये ते खराः, अत एव तरन्ति भवाब्धिमिति तराः,-खराश्च ते तराश्च खरतराः,

॥ ४ खानि इंद्रियाणि, रः कामः तौ त्रस्यंति वशं नयन्ति ये ते खरताः साधुजनास्तेषां मध्ये राजन्ते शोभन्ते ये ते खरतराः,

॥ ५ खः सुखं, भावसमाधिलक्षणं कचिड्ड, इति डप्रत्ययः तस्य रो रक्षणं तच्चरन्ति कुर्वन्ति ये धातूनामनेकार्थत्वादिति खरतराः

॥ ६ खादीनां ये जनास्तेषां रो भयं तत् विध्वंसयति, यः सः खरतः, ताद्दृग् विधौ रोध्वनि सिद्ध शुद्ध प्रसिद्ध विशुद्ध सिद्धान्तवचननिर्वचनलक्षणो येषां ते खरतराः

॥ ७ यद्वा खं संविद् तत्र रतास्तत् पराः खरताः मुनिजनास्तान् राति (अर्थात्) सम्यग् ज्ञानादि ददति ये ते खरतराः

॥ ८ खः खड्गः तद्वत् खरास्तीक्ष्णाः कुमतिमतिविदारणे ये ते खराः तानं तस्कराणां जिनमतप्रद्वेपिद्दसकुवादिजनलक्षणानां, रा इव वज्रा इव ये ते तराः, खराश्च ते तराश्च खरतराः

॥ ९ खं स्वर्ग राति (अर्थात्) भक्तजनानां ददति ये ते खराः

॥ अतिशयेन खरा ये ते खरतराः इत्यादि

हारयासो कमलाभया, जीत्या खरतर जाणिया ।
तिनकाले श्रीसंघमे, गच्छदोय वखाणिया ॥ १ ॥

इसीतरे सुविहित पक्षधारक श्रीजिनेश्वरसूरिजी वीरनिर्वाणात् १५५०, विक्रमसंवत् १०८० में खरतर विरुद्धकों प्राप्त भए, तवसें, कोटिकगच्छ, चंद्रकुल, वयरीशाखा, खरतर विरुद, इस नामसें, स्थविरसाधु, नवा साधुवोंकों कहनें लगे, इहांसें मूलकोटिक गच्छका नाम, खरतर गच्छ प्रसिद्ध हूआ दूसरे दिन विरोधियोंने विचार कीया कि प्रथम उपाय तो व्यर्थ हुवा, अव

और दूसरा कोइ उपाय इणोंको निकालनेका करणा चाहिये, एसा कहके, मनमे शोचा कि यह राजा अपनी मुख्य राणीको बहुतहि मानताहे, इसलिये जो वह राणी कहेगी वैसाहि राजा करेगा, तिस राणीके द्वाराहि इणोंको निकालना चाहिये, यह अपणा आशय उन चैत्यवासी मुनियोंने राजाधिकारि अपणे भक्त श्रावकोंकु कहा, बादमें वे राजाधिकारी श्रावक आम्रफल केलफल दाख वगेरे फलोंका भाजन प्रधान वस्त्र दागिना वगेरे बहुत पदार्थोंका भेटणा लेके राणीके पास गये और मुख्य राणीके आगे जिनप्रतिमाकी तरे सन्मुख बलीकी रचना करी और मुख्य राणी प्रसन्न होके जितने उणोंका प्रयोजन करणेमे तत्पर भइ, उसीअवसरमे राजाकु राणीके पासमे कोइ कामकी जरूरत पडी, बादमे दिल्लीसंबधी आदेशकारी पुरुपको राजाने तिस मुख्य राणीकेपास भेजा और कहाकि यह अमुक कार्य राणीसें कहो, तब आदेशकारी पुरुप बोलाकी हे देव अभि जायके कहेता हूं ऐसा कहके शीघ्र गया, राजासंबंधी प्रयोजन राणीकू कहा बहुत अधिकारियोंको और अनेक प्रकारका चढावा देखके तिस राज-पुरुपने विचाराकि जो दूसरे देशसें आये हूवे आचार्य उणोंको निकालनेका उपाय यह होवे है, परतु मेरेकु भि स्वदेशसें आये हूवे आचार्यके पक्षकी पुष्टि राजाके सन्मुख कहेना, ऐसा विचारके राजाके पासमे गया, राजासंबधी प्रयोजन कहा, परतु हे देव वहां राणीकेपास बडा कौतुक मेने देखा, राजाने कहा कैसा ? भद्रिकपुरुप बोला हे देव ! राणी आज तीर्थंकरकी प्रतिमा सदृश

पूजनीक हुइ है, जैसा तीर्थंकरके आगे बलिकी रचना करते हैं उस माफक राणीके आगे भी कितनेक पुरुषोंने बलिकी रचना करी है, राजाने विचारा कि जो मेने न्यायवादी सुविहित मुनियोंकुं गुरुपणे अंगीकार करें हैं, उणोका पीच्छा अभीतक पापी नहिं छोडतें है, बादमे राजाने कहा उसीहि पुरुषको जेसें शीघ्र राणीके पासमे जाके कहो, की राजा इसतरे कहेलातें है, जो तेरे आगे किसीने भेट दीया है उसमेंसें एक सोपारी भी जो लिया तो तेरेको मेरे यहां रहेणेकुं जगा नहिं है, बादमें उस राजपुरुष पूर्वोक्तप्रमाणे कहेणेसें भय प्राप्त होके राणीने कहा अहो लोको जो वस्तु जो लाया है वह वस्तु उसको अपणे घर लेजाना एक सोपारी मात्रसेंभी मेरे प्रयोजन नहिं हैं इसतरे यह उपायभी निस्फल हुवा, बादमें उन चैत्यवासी मुनियोंने ४ उपाय विचारा कि जो राजा देशांतरसें आये हूवे मुनियोंको बहुत मानेगा तो सर्वमंदिरोंको छोडके देशातरमे चले जावेंगें, ऐसा प्रघोष नगरमें करा, और नगरके बाहिर जावै ते यह बात किसी मनुष्यने राजाकुं कही राजाने कहा कि बहूतहि अच्छा है जहां रुचे वहां जावो, राजाने मंदिरोमे ब्राह्मणकों वेतनसे पूजारी रखे, तुमारेकु इन मंदिरोंमे पूजा करणी ऐसा कहेके, बादमे कोइ चैत्यवासी मुनि किसी मिस करके अपणे मंदिरमे आये, कोइ किसी मिस करके पीछे आये, किं बहुना, सर्वचैत्यवासी मिस कर २ पीछे चले आये सर्व अपणे २ मंदिरोंमे रहे श्रीमान् वर्द्धमानसूरिजी भी सपरिवार राजाके मान्यनीक पूज्यनीक होणेसे अस्खलितविहारपूर्वक सर्वत्र

गुजरातादि देशोंमे विहार करते हूवे, कोइ कुछभी कहेणेकुं समर्थ न होवे, वाद शुभ लग्नमे श्रीवर्द्धमानसूरिजी महाराजने पंडित श्रीजिनेश्वर गणिजीकु सूरिमंत्र देकर अपणे पदमे स्थापित कीये, दूसरे भाईकोभी आचार्य पदमे स्थापित करा, और उणोंकी वेनकों महत्तरा पद दीया और इणोंका मूल नाम जिनदास, बुद्धिदास, सरस्वती, था वादमे ३ जीव पुन्यवान् विनीत होणेसे स्वल्प कालमे गीतार्थ भये, वाद पंडित, गणि आदि क्रमसें पदवी प्राप्त करी, और श्रीगुरु महाराजकुं चारित्रपक्षमे ज्ञान पक्षमे शासनोन्नति वगेरे धर्मकार्योंमे परिपूर्ण साहायक भये और गुजरातमे अणहिलपुर पाटणके प्रथम शास्त्रार्थमे परिपूर्ण सहायक भये, वाद योग्य पात्र स्वसमय परसमयके परिपूर्ण वेत्ता शासनोन्नति करणेवाले, युगप्रधान पद धारक होगा ऐसा विचारके श्रीगुरुमहाराजने कोइ एक समय शुभ लग्नमे पूर्वोक्त ३ जनकों क्रमसें पदस्थ करके अपने गच्छमे अधिकारिकीये वाद ,श्री-जिनेश्वरसूरि, बुद्धिसागरसूरि, कल्याणवती महत्तरा, इसनामसें सर्वत्र प्रसिद्ध भये, वाद गुजरातादि देशोंमे अलग विहार करणे कीआज्ञा दीनी ३ जनकों, तव तीनुं जन श्रीगुरुमहाराजकी श्रेष्ठ आज्ञा पाकर अपणे २ समुदाय सहित गुजरात देशमे विचरणे लगें, पीछे श्रीवर्द्धमानसूरिजीनें १३ अथवा ३० बादशाहोंसें मान पाया हुआ चंद्रावती नगरी स्थापक, पोरवाड गोत्रीय, श्रीविमल-मंत्रीकों प्रतिबोध देके जैनधर्मी अपना श्रावक किया, और विच्छिन्न हुवे आबु तीर्थकों प्रगट करनेका उपदेश किया, तव

विमलमंत्री गुरुका वचन अंगीकार करके गुरुकों साथ लेवे
आबुजी आया, तब उहांके रहीस ब्राह्मण और जोगी लोक य
बात सुनके विमल मंत्रीको कहनें लगे कि यह हमारा तीर्थ है
अभी हमारा मंदिर है तुमारा मंदिर नहिं है, इससें जैनमंदि
नहिं होने देवेंगें, तब गुरुमहाराज एक पुष्पमाला मंत्रके विमल
मंत्रीके हाथमें दीनी, और कहाकि ब्राह्मणोंसे कहोकि ये सदैवसे
जैनका तीर्थ है, जो न मानो तो तुमारी कोइ कन्याके हाथमें यह
फूलमाला देवो, और डुंगर ऊपर फिरो जिस ठिकाणे तुमारी
कन्याके हाथसें यह फूलमाला गिरपडे वहां हमारा तीर्थ, और
देव है, इसीतरे करा ॥ जहां फूलमाला पडी उहां पूजाका उपगरण
सहित तीन प्रतिमा प्रगट भइ ॥

१ श्री आदिनाथस्वामि २ अंबिकादेवी ३ चवालीनाथ क्षेत्र-
पाल ॥ ऐसी तीन प्रतिमाकों प्रगट हुइ देखके ब्राह्मणलोक बडे
आश्चर्यकों प्राप्त भए, तथापि ब्राह्मण जातिपणासें कहनें लगे
तुमारा देव है तो देवकी पूजा करो, परन्तु मंदिर होनेसे तो हम
मरमिटेंगें, तब बडा दयाल उत्तम पुरुप विमलमंत्रीनें विचार
किया कि ये कोण गिणतीमे है, अभी मंदिर बना सक्ताहूं, परन्तु
ये भिक्षुक है, इनको क्या जोर देखाउं, इससें इनोंकों बहोतसा
द्रव्य देके, राजी करके जैनमंदिर तैयार कराउं, ऐसा विचारके
ब्राह्मणोंकों बहुतसा धन देके राजी किये, पीछे बहुमोला
मकराणेंका पत्थर मंगवायके, बडा एक बावन जिनालय मंदिर
बनाया, और सारे मंदिरमे ऐसी झीणी कोरणी कराई, जिस-

मंदिरका सर्व पत्थर कोरणी मजूरीका, अठारे १८ क्रोड ५३ लाख आसरे द्रव्य खरच हुआ, विमलमंत्रीके करानेसें विमलवसहि नाम प्रसिद्ध हुवा, पीछे सर्व तैयार होनेसें संवत् एक हज़ार अठ्यासी, १०८८, में श्रीउद्योतनसूरिजीके सुशिष्य और श्रीजिनेश्वरसूरिजी श्रीबुद्धिसागरसूरिजीके श्रीगुरुमहाराज श्रीवर्द्धमानसूरीजीने प्रतिष्ठाकरी, बादघणे भव्यजीवोंको प्रतिबोधके धर्ममे स्थिर करके धर्मकार्योंमेविशेष सहाय करके घणी शासनोन्नति करके अंतसमय सिद्धांतीय विधिपूर्वक समाधिसहित अणशण करके उसी वरषमें देवलोक गए यह मूलग्रंथ अभिप्राय है ॥ ३९ ॥

॥ ४० ॥ श्रीवर्द्धमानसूरिजीके पट्टपर श्रीजिनेश्वरसूरि हुए, यह प्रथम वाणारसी नगरीके रहीसथे, सोमदेव ब्राह्मण पिताथा दुर्लभराजपुरोहित शिवशर्मा ब्राह्मण मामा होवे है और सरसा नगरमे सोमेश्वर महादेवके वचनसें श्रीवर्द्धमानसूरिजीके पासदीक्षा ग्रहण करी, बादमे जैनसिद्धांत स्वगुरुमुखसें पढकर गीतार्थ भये, पीछे पंडित, गणि, वाचनाचार्य आदि पदवीयों क्रमसें प्राप्त करी, शुभशकुन निमित्तसें लाभ जाणके श्रीगुरुमहाराजके साथ अणहिलपुरपाटण पधारे वहा चैत्यवासी सम्प्रदायके आचार्योंके साथ प्रथम शास्त्रार्थ हुवा, पीछे स्वपट्टपर सूरिमंत्र विधिपूर्वक देके मुख्याचार्यपणेका गच्छाधिकार वगेरे सर्व दिये, पीछे श्रीदुर्लभराजदत्त खरतर विरुदकों धारण करते हुवे, और राजगुरु होनेसें सर्वत्र गुजरातप्रांतमें अस्खलित विहार करे, और अप्रतिबद्धपणे विहार करते हुवे जिनचंद्र १ अभयदेव २ धनेश्वर ३ हरिभद्र ४

प्रसन्नचंद्र ५ धर्मदेव ६ सहदेव ७ सुमति ८ वगेरह बहुत शिष्य हुवे बादमे श्रीवर्द्धमानसूरिजी स्वर्गवासी हूवे, पीछे श्रीजिनचंद्र, जिनाभयदेव, इन दोनोंकों विशेष गुणवान् और योग्य पात्र जाणके सूरिपदमें स्थापित कीये, क्रम करके युग प्रधान हूवे, औरभी दो आचार्य बनाये, श्रीधनेश्वरसूरिः (अपर नाम श्रीजिनभद्रसूरिः) है, १ श्रीहरिभद्रसूरिः २ तथा उ० श्रीधर्मदेवगणिः, १ उ० सुमतिगणिः, २ उ० श्रीविमलगणिः, ३ यह ३ उपाध्याय कीये, और श्रीधर्मदेव उपाध्याय, श्रीसहदेवगणिः, यह दोय सगे भाइ होवें है, श्रीधर्मदेव उपाध्याय जीनें ३ निज शिष्य बनाये, हरिसिंह, सर्वदेवगणिः, यह २ भाइ होवें है, ३ पंडित श्रीसोमचंद्रमुनिः, और श्रीसहदेवगणिजीनें अशोकचंद्र नामें निजशिष्य किया, वह अशोकचंद्र अत्यंत वल्लभ था, उसको श्रीजिनचंद्रसूरिजीनें विशेष भणायके, आचार्यपदमें स्थापित किया, और श्रीअशोकचंद्रसूरिजीनें अपनें पट्टपर श्रीहरिसिंहसूरिजीकों स्थापित किये, औरभी दोय आचार्य बनाये, श्रीजिनप्रसन्नचद्रसूरिजी, श्रीजिनदेवभद्रसूरिजी, और श्रीजिनदेवभद्रसूरिजी तो श्रीसुमति उपाध्यायजीके सुशिष्य थे, और श्रीजिनप्रसन्नचंद्रसूरिजी वगेरे च्यारकुं श्रीजिनाभयदेवसूरिजीनें तर्कादिशास्त्र भणाये, इसिहीसें श्रीजिनवल्लभसूरिजीनें श्रीचित्रकूटीयप्रशस्तिमे कहा है, ॥ सत्तर्कन्यायचर्चार्चितचतुरगिरः श्रीप्रसन्नेंदुसूरिः, सूरिश्रीवर्द्धमानो यतिपतिहरिभद्रो मुनीड् देवभद्रः, इत्याद्याः सर्वविद्यार्णवकलशभुवः संचरिष्णुरुरुकीर्तिस्तंभायन्तेऽधुनापि श्रुतचरणरमाराजिनो यस्य शिष्याः ॥ १ ॥

अर्थ श्रेष्टतर्कशक्तियुक्त तर्कशास्त्र और न्यायशास्त्रोकी चर्चा-करके पूजितहै चातुर्ययुक्तवाणी जिणोकी, संपूर्णविद्यारूपी समुद्रमें कलशकेसदृश, और जंगमश्रेष्ठमहत्कीर्तिस्तभ, वर्त्तमान समयमें दिखाइ देरहेहै, ऐसे श्रीजिनप्रसन्नचंद्रसूरिजी, श्रीजिनवर्द्धमानसूरिजी, श्रीजिनहरिभद्रसूरिजी, श्रीजिनदेवभद्रसूरिजी, वगेरे श्रुतचारित्रात्मक लक्ष्मीसे सुशोभित वर्त्तमान समयमेभी जिसनवागीवृत्तिकर्त्ता-श्रीजिनअभयदेवसूरिजीके सुशिष्य मौजूदहैं ॥ १ ॥ बादमें श्रीजिनेश्वरसूरिजी आशापल्लीमे पधारे, वहां व्याख्यानमे विचक्षण-लोक बेठते हैं, वास्ते विचक्षण लोकोंका मनरूपकुमुदकुंविकसित-करनेंवाली जो पूर्णमासी चद्रिका, (याने चद्रमाकी चादणी,) उसकी साक्षात् नेनहोवे वैसी, संवेगयुक्त वैराग्यको वढाणेवाली, ऐसी लीलावतीनामककथा, विक्रमसंवत् (१०९२) के साल रची, तथा श्रीजिनेश्वरसूरिजी डिंडियाणक ग्राम पधारे वहां पूज्यपाद श्रीजिनेश्वरसूरिजीनें व्याख्यानमे वाचणेवास्ते चैत्यवासी आचार्योंके पाससें पुस्तक मांगा, कलुपितहृदयवाले उनचैत्यवासीआचार्योंने नहि दिया बादमे पिछाडीके पहोर दोयमे बनावे, और प्रभातके व्याख्यानमे वाचे, इसकारणसें, उसीगामके चउमासेमे, कथानक कोश, किया, तथा मरुदेवा नामकी महत्तरा थी, उसनें अनशन ग्रहण किया, ४० दिनतक अनशनमे रही, उसकुं श्रीजिनेश्वरसूरि-जीनें समाधि उत्पन्न करी, और उस महत्तराकुं कहा कि जहा तूं उत्पन्न होवे, वह स्थान हमकुं कहना, उस महत्तरानेभी कहा हे भगवन् ! इसीतरे करुंगी, यह वचनअगीकारकिया, बाद पंच-

परमेष्ठीका स्मरण करति हुइ वा मरुदेवा महत्तरा देवलोकगई, और महर्द्धिक देव हुवा, इहांसें कोइएकश्रावक युगप्रधानकानिश्चे- करणेकों श्रीगिरनारपर्वतऊपरजायके विचारकिया कि यह सिद्धि- क्षेत्र अधिष्ठायकसहितहै, इससें अंबिकादिदेवताविशेष, जोमेरेकुं युगप्रधान कहेगा याने बतावेगा तो में भोजन करुंगा, अन्यथा में भोजन नहिं करुंगा, ऐसा साहसको अवलंबन करके रहा, उपवास करणा सरुकिया, इसअवसरमें महाविदेहक्षेत्रमें श्रीतीर्थंकरकुं नमस्कारकरणेवास्ते गये हूवे, ब्रह्मशांतियक्षको, उस मरुदेवा नामक महत्तराका जीवदेवनें संदेशादिया, जैसें तेरेकुं, श्रीजिनेश्वरसूरिजीके सन्मुख यह कहेणा, तथाहि

मरुदेवीनाम अज्जा, गणणी जा आसि तुम्ह गच्छंमि।
सग्गंमी गया पढमे, जाओ देवो महिड्ढीओ ॥ १ ॥
टक्कलयंमि विमाणे, दुसागराऊसुरो समुप्पन्नो,
समणेसस्स जिणेसरसूरिस्स इमं कहिज्जासि ॥ २ ॥
टक्कउरे जिणवंदणनिमित्तमेवागएण संदिट्ठं।
चरणंमि उज्जमो भे, कायव्वो किंच सेसेहिं ॥ ३ ॥

अर्थ महत्तरापदकुं धारणेवाली मरुदेवीनामकीसाध्वी तुमारे गच्छमें थी, वा मरुदेवी प्रथमदेवलोकगईहै, उन मरुदेवीका जीव महर्द्धिक देव हूवाहै ॥ १ ॥ टक्कल नामक विमानमे, दोय सागरके आयुवाला देव उत्पन्न हूवाहै, संपूर्णसाधुवोका मालिक श्रीजिने- श्वरसूरिजीको यह कहेणा ॥ २ ॥ टक्कोरनामक नगरमे श्रीतीर्थं-

करकों वंदननिमित्तआये हूवे देवनें ब्रह्मशांति यक्षके साथ संदेशा कहा है, हे भगवन्! हे परमकल्याण योगिन्! हे पूज्य! आपसाहिब चारित्रमें विशेषउद्यमकरणा, यहहि द्वादशांगीका सारहै, और सर्वअसारआलपंपालहै, ॥ ३ ॥ उस ब्रह्मशांति यक्षनें अपणे आप जाके यह संदेशा श्रीजिनेश्वरसूरिजीके पास नहिं कहा, तो क्या किया, युगप्रधानका निश्चे निमित्त आरभ किया उपवासजिसश्रावकनें उसकों उठाया, बाद उस श्रावकके वस्त्रके छेडेमे, अक्षर लिखे जेसे, ससटसट, और कहा कि अणहिलपुर पाटणमे जा, जिस आचार्यके हाथसें धोणेसें यह अक्षर जावेगा, वहिआचार्य इसभरतमें भारतवर्षमे युगप्रधानहै, बादमे उसश्रावकनें पारणाकरके श्रीनेमिनाथस्वामिकुं वंदना करके अणहिलपुरपाटणआके सर्वउपाश्रयोंमे जाके वस्त्रके छेडेपर लिखे हूवे अक्षर देखाये, परतु किसीनें नहि जाणे, अर्थात् नहि मालूम हूवे, और श्रीजिनेश्वरसूरिजीके उपाश्रयमें जाके देखाये तब अक्षरोंकुं बाचके, उत्पन्न हूइ जो प्रतिभा यानें तत्काल विषय, संबंध अर्थग्रहण करणेवाली बुद्धि उसमें यह पूर्वोक्त ३ गाथा विचारके श्रीजिनेश्वरसूरिजीनें वे अक्षर धोये, धोणेसें चलेगये, यानें मिटगये, बादमें उस श्रावकनें मनमें विचारा कि यह आचार्य निश्चय युगप्रधान है, इस हेतुसें विशेषश्रद्धान और भक्तियुक्त होकर गुरुपणे अंगीकार किये, और धारानगरीमे भोजराजाका पुरोहित सर्वधर नाम था, वहापर कोइ एकसमें श्रीवर्द्धमानसूरिजी पधारे, तब राजपुरोहितका विशेष परिचयहूवा, तब सर्वधरनें आचार्यमहाराजकुं कहाकि मेरेघरमें बडा

निधानहै, परंतु मालूमनहिँ कहांपरहै, और आपकृपाकर बतावें तो, आधादेवुं, तब आचार्य महाराजनें कहा घरका सार आधा देना, पुरोहितबोला ठीकहै, बाद धर्मका लाभजाणके, निधान स्थान देखाया, तब निधानप्रगटहूवा, जब आधा धन देने लगा, तब नहिं लिया, और आचार्यमहाराजने कहाके यह धन तो हमारे बहुत था, परंतु छोडके साधु हूवेहै, तब पुरोहितनें कहा कि आपश्रीनें आधा केसे मांगा, तब आचार्यमहाराज बोले, कि घरका सार आधा मांगाहै, तबफेरपुरोहितनेंकहा कि घरका सारतो धनहै, तब आचार्यमहाराजने कहा घरकासार धननहिं है, किंतु घरकासारपुत्रहै, ऐसासुणके सर्वधरनें मौनधारा, तब आचार्यमहाराज अन्यत्र विहार करगये, पीछेसें सर्वधरके मनमें जैनाचार्यका उपगाररूप करजा, वोही एकशल्य मनमें रहगया, बाद अंतसमे पिताके मनमे असमाधिदेखके धनपाल और शोभन इन दोनुंने पिताकुं असमाधिका-कारण पूछा तब पिता सर्वधर बोला कि अहो पुत्रो मेरे ऊपर एक जैनाचार्यका उपकारका ऋण है वहि एक असमाधिका कारण है दूसरा कोइ कारणनहिं है यह मेरे मनमे असमाधिहै सो तुम दोनुंमेंसें एक जैनाचार्यके पास जैनीदीक्षा लेवो तब मेरा ऋणउतरे और मेरे मनमे समाधिहोवे, और किसी हालतसें मेरेकु समाधि नहिं होवे, ऐसा पिताका वचन सुणके धनपाल तो मौनधारके रहा और शोभन पिताका विशेपभक्त और विशेपविनीतहोणेसें, इसतरे नम्रहोके पिताकु बोला हेपिताश्री निश्चे आपका वचन मे पालुंगा, ऐसा शोभनका वचनसुणके, सर्वधरपुरोहितविशेप

समाधिसहितपरलोकगया, वादमे शोभन जंगमयुगप्रधान कल्पवृक्ष चिंतामणिसे अधिकमनोवाछितपूरणेवाले श्रीवर्धमानसूरिजीके सुशिष्य श्रीमान्‌जिनेश्वरसूरिजीके पास शुभमुहूर्त्तमे दीक्षाग्रहणकरी, जैनसिद्धान्तस्वगुरुमुखसें भणके गीतार्थ शोभनमुनिहुवे, वाद उज्जेणी नगरीके श्रीसंघके पत्रसें, श्रीशोभनमुनिकु वाचनाचार्यपददेके दोनोमुनियोके साथ शीघ्र राजपुरोहितधनपालको प्रतिबोधनवास्ते भेजे, श्रीशोभनाचार्य गुरुजीकी आज्ञासें उज्जेणीनगरीमे जाके क्रमसें धनपालकुं प्रतिबोधके धर्ममे स्थिरकरके पीछे श्रीगुरुजीके चरणमे पधारे और धनपालका विशेषअधिकार आत्मप्रबोधग्रंथसे जाणना, इसतरे अनेकप्रकारसें चउवीसमाश्रीमहावीरस्वामितीर्थंकरदर्शितधर्मकी वहुतप्रभावना करके वृद्धिकों प्राप्त किया, अंतसमे सिद्धान्तविधिपूर्वक अणशणकरके समाधिसहित स्वर्गनिवासीहूवे और प्रभावकचरित्र तथा पट्टावलि वगेरेमे इणोंका चरित्र लिखा है उसमे कुछ कुछ भेद मालूम होताहै सो धारणा भिन्न भिन्न होणेसे, भिन्न भिन्न मतान्तर है और जैनइतिहास, १ हरिभद्राष्टकभाषान्तर, २ मराठीराममाला, ३ खरतरपट्टावलि संस्कृत ४ तथा भाषा ५ इत्यादि वहुतहि ठिकाणे खरतर विरुद १०८० का लेख है और पचलिंगी, १ पट्स्थानक, २ कथाकोश, ३ लीलावती कथा ४ प्रमाणलक्ष्मा ५ वगेरे तथा श्रीवुद्धिसागर सूरिकृत व्याकरण वगेरे अनेक ग्रथ खुदके रचे हूवे और शिष्य प्रशिष्योके रचे हूवे वर्त्तमान समयमे उपलब्धहोतेहैं ॥ ४० ॥ ४१ ॥ श्रीजिनेश्वरसूरिजीके पट्टपर श्रीजिनचद्रसूरिजी हूवे इनोंके १८

नाममाला (कोश) सूत्र अर्थसें कंठथी, सर्व शास्त्रोंके जाणनेवाले, और भव्यप्राणियोंके मोक्षप्रासादकी प्राप्तिमें बीजभूत १८ हजार प्रमाणे संवेगरंगशालानामक प्रकरणरचा और जावालिपुरमें पधारणेपर श्रावकोंके सन्मुख व्याख्यानमें, चियवंदणमावस्सय.

इस गाथाका व्याख्यान करतां जो सिद्धान्तानुसारसूत्रादि पाठअर्थसहितप्रश्नोत्तर अर्थ कहे सो सर्व एक सुशिष्यनें लिखे, सो (३०००) प्रमाणे दिनचर्या नामकग्रंथहूवा, वहदिनचर्या ग्रंथ श्रावकोंके बहुतहि उपगारिहूवा, और आचार्यपदकों प्राप्त होके विहार करते प्रथम दिल्लीसहरमे गए, उहां एकपुरुषकों भाग्यशाली देखके ऐसाकहा, कि दिल्लीका बादसाहहोगा, जब वो पुरुष बोला कि मे जो बादसाहहोउंगा तो आपमुझे दरशण अवश्य दैना, फेर दिल्लीके आसपासमें महाराज विहार करनें लगे, जब वो पुरुष-मोजदीननामेंबादसाहहुवा, तब गुरुमहाराज फेर दिल्लीनगरमे गए, तब दिल्लीके संघनें बादसाहको अरजकरी हमारे पूज्य श्रीजिनचंद्र-सूरिजी महाराजआयें हैं, सो उनोंका प्रवेश उच्छव करनेंकी इच्छाहैं, तब मोजदीन बादशाहभी पूर्वोक्त वरदेनेंवाले अपना गुरूकों आया जानके संपूर्णवाजित्रसहित संघके साथमे, आप सामनेंगया, प्रवेश, उच्छवसहित शहरमें लायके धनपालनामा श्रीमालके बडे मकानमें उत्तारा करवाया, उहां रहते धनपालश्रीमालप्रमुख बहुतसें श्रीमालांकों प्रतिबोधके जैनी श्रावककिये, तबसें श्रीमालजैनी श्रावक हुवे, और कितनेक राज्याधिकारियोंकों प्रतिबोधके जैनी श्रावक किये, उनोंको बादशाहनें बहुतमानदिया इससें उनका,

महतियाण, गोत्र हुवा, ये महतियाण गोत्रवाले, या तो भगवान्‌कों नमस्कार करे, या अपनाधर्माचार्य श्रीजिनचंद्रसूरिजी गुरुकों नमस्कार करे, और किसीकों नमस्कार न करें, और महाराजके उपदेशमें वादशाहभी बहुतसरलपरिणामीहुवा, बहुत देशमे पर्यूषणादिपर्वदिनोंमे, बहुतजीवहिंसा छोडाई, इसमाफक धर्मका उद्योतक, बडे प्रतापीक, सवेगरगशाला प्रकरण, दिनचर्या आदि अनेक प्रकरण कर्त्ता श्रीजिनचंद्रसूरिजी भए, वेभी श्रीमहावीर स्वामिदर्शित धर्मको यथार्थपणे प्रकाशन करके और अतसमे सिद्धान्तीय विधिपूर्वक अणशण करके समाधिसहित स्वर्ग निवासी हुवे, यह श्रीजिनचद्रसूरिजीका यहापर चरित्र सक्षिप्तमात्र कहा है

॥ ४२ ॥ श्रीजिनचद्रसूरिके पट्टपर छोटे गुरु भाइ, श्रीअभयदेवसूरिजी विराजमान हूवे, इनोंका संबध संक्षिप्तमात्र लिखताहूं, धारापुरीनगरीमें 'धन्नानामें सेठ जिसके धनदेवीनामे स्त्री उनूके अभयकुमार नाम पुत्र हुवा' क्रमसें (सर्व कला शीखके) युवान अवस्थाकों प्राप्त भया, तब एकदा प्रस्तावे श्रीजिनेश्वरसूरिजी विचरतेभए, धारापुरीनगरीमे पधारे, जब नगरके सर्वलोक महाराजकों वंदना करनें गए तब अभयकुमारभी अपनें पिताके साथ दर्शनको गया, श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराजके मुखसे धर्म उपदेश सुणके वैराग्यको प्राप्तभया, संसारको असार जाणके दीक्षा ग्रहणकरी, क्रमसें बुद्धीके बलसे, सकल शास्त्र पढके आचार्यपदको प्राप्तभये, एकदा व्याख्यानमें शृंगारादिनवरसोंका बहुतपोपणकरा, तब सबसभा बहुतआनंदकों प्राप्तभइ, परतु

श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराजनें स्त्रीयोंका वीर्य स्खलित हुवा देखके (विचार किया कि पहिलेभी अंबररंतर इत्यादि २ गाथाओंका अर्थ श्रृंगाररसवर्णनपूर्वक मुनियोंको रात्रिमें कहा तव मार्गमें जाति हुइ राजकन्यानें सुणके बुद्धिशाली पुन्यवान् कोइ पुरुष है इसके साथ पाणिग्रहण करणेसें संसारिकविषयसुखबहुतश्रेष्ठ होगा, ऐसा मानकर-श्रृंगाररससें परवस हुइ थकी-आधि रात्रिसमय उपाश्रयके द्वार पास आयके किवाड खडकायें और अवाजदी, तब गुरु महाराजनें कहा ये कुगतिद्वार प्राप्त हुवा हैं, उतने फेर अवाज आइ में राजकन्या हूं दरवाजा जलदि उघाडो ऐसा कहने पर आप उठकर दरवाजे पास जाकर कपाट खोले और कहा कि क्या प्रयोजन है! तब उस राजकन्यानें श्रृंगार वर्णनसें लेकर अपना अभिप्राय हुवाथा सो कहा और कहाके मेरा पाणिग्रहण करो तब आचार्यश्रीनें कहा हेभद्रे! हम साधु हैं हमको पाणिग्रहण करणा नहिं कल्पे ऐसा कहके बीभत्सरसका वर्णन किया तब वा राजकन्या छी छी करती हुइ विरक्तहोकर अपने ठिकाने गइ, वादव्याख्यानमे श्रृंगाररसका वर्णनकरनेसें ऐसाअनर्थहुवा श्रीअभयदेवसूरिजी महाराजको एकांतमे ऐसा ओलंभा दिया, कि आत्मार्थीकों श्रृंगारादिक रसोंका वहुत पोषण करना न चाहिये, ऐसा गुरुका वचन सुनके आत्मशुद्धिके अर्थ प्रायश्चित्तमांगा, तब गुरु महाराजनें कहा 'छमासतक आंबिलकी तपस्या करे और छाछकी आछ पीवे' तब शुद्धी होवे, तब श्रीअभयदेवसूरिजी गुरुका वचन तहत्ति करके इसी मुजब

तपस्या करनें लगे, ऐसी कठिन तपस्या करनेसें अंतप्रांत आहार खानेंसे, कोई पूर्वकृत कर्मके योगसे सरीरमे 'गलित कोढ, रोग उत्पन्न होगया तथापि धर्मसे चलितचित्त न हुआ शरीरकी शुश्रूषा मात्रभी न करी, जब क्रमसे वहुतरोगवढनें लगा, तब श्रीअभयदेवसूरिजीकी अणशण करनेंकी इच्छा उत्पन्न भइ, अन्येत्वेवमाहुः-श्रीजिनचंद्रसूरिजीके वादमे श्रीमान् अभयदेवसूरिजी नवागवृत्तिकर्त्ता युगप्रधान भये, उन्होंकी नवांगवृत्ति करणेमें सामर्थ्य और नीरोगता (यानें-रोगरहित) किसतरे भइ, वो स्वरूप लेशमात्र कहे हैं, गुजरात देशमे भगवान् श्रीमान् अभयदेवाचार्य प्रधानचारित्रसमाचारिकी चतुराईमे मुख्य ऐसे परिवारसहित ग्रामनगरआकर वगेरे स्थानोमे विहार करणेकर महीमंडलकु पवित्र करते हुवे, संघके आग्रहसें धवलक नगर पधारे, वाद विहार क्रमसे शभाणक ग्राम पधारे, वहा पर कुछ शरीरमें रोगोत्पत्ति कारण हूवा, जैसे जैसे औषध वगेरे करे तैसे तैसे यह दुष्ट रोग विशेप वधे, जराभि उपशम न होवे (यानें मिटेनहि) अलग अलग ग्रामोमे रहनेवाले श्रीपूज्यपादभक्त श्रावक जन जब चउदशमे पाक्षिक प्रतिक्रमण होवे है, तब चार योजन प्रमाणे क्षेत्रसें वहा पर आयके पूज्योंके साथ प्रतिक्रमण करे, भगवान श्रीमद्अभयदेवसूरिजीभि अपने शरीरकु अत्यंत रोगग्रस्त जाणके (इस वखतमे अपना कार्य परलोकसंबंधि साधना श्रेष्ठ है ऐसा विचार करके मिच्छामिदुकडं देने वास्ते विशेप कर तुम सबकों चउदशके रोज इहापर आना) इसतरे ज्ञानका उपयोग

देने पूर्वक उनसवश्रावकोंको बुलवाये 'याने समाचार भेजकर खामणानिमित्त आमंत्रण करवाया' श्रीसंघ समक्ष सर्व जीव राशिके सह खामणाकर अणशण आराधना करनेका विचार किया.

बादं तेरसकी आधिरात्रिके समय शासनदेवताआई, और उस शासनदेवताने कहा, कि हे पूज्य! आप सोए हो

१ अब इहासे आगे श्रीकोटिकगछपट्टावलीमें इसतरे लिखे है, की 'उहा तेरसके दिन आधिरात्रिकेसमें शासनदेवीने प्रकट होके' कहा कि 'हे स्वामिन् ये नव सूतकी कोकडीकों सुलझावो। तब गुरु महाराज बोले' कि हार्थोंकी आगुली गलनेसें सुलझावणेकी सामर्थ्य रही नहीं,' तब शासनदेवी कहनें लगी अभीतक आप बहुत काल-तक श्रीवीर भगवानका शासन दीपावोगे, और नवागसूत्रोंकी टीका करोगे, इससें हे स्वामिन् आप रोग जानेका उपाय सुनो! स्थमनपुरके नजीक 'सेढिका नदीके किनारे खजर पलासवृक्षके नीचे श्रीपार्श्वनाथस्वामीकी अतिशययुक्त प्रतिमा है' उहा निरतर एक गाय आती है और प्रतिमाके मस्तकपर सदा दूधकी धारा देके, चली जाती है, उसी ठिकाणें सर्वसघके साथ आप जायके श्रीपार्श्वनाथ प्रभुकी स्तवना करना तब उहा श्रीपार्श्वनाथस्वामीकी प्रतिमा प्रगट होगी, जिसके स्नात्रजलके प्रभावसें आपका रोगरहित दिव्य शरीर होवेगा, ऐसा स्वप्नमें कहके देवी अदृश्य होगई जब प्रभात समय भया, तब उहासें विहारकरके स्थमनपुर गये, वहाके सर्वसघको साथमें लेके पूर्वोक्त स्थानकों गये, उहा जाके नमस्कारकरके जयतिहुअण इत्यादि बत्तीस काव्यों-का नवीन स्तोत्र करके स्तवना करने लगे जब "फणिफणफार फुरतरयणकर रजिय-नहयल, फलिणी कदलदलतमाल निलुप्पलसामल कमठासुरउवसग्गवग्ग ससग्ग अग जिय, जय पच्चक्ख जिणेसपास थभणयपुरट्ठिअ ॥ १७ ॥, यह सत्तरमा काव्य बोलते, श्रीपार्श्वनाथस्वामीकी प्रतिमा जमीनमेंसे प्रगट भई, फिर सम्पूर्ण स्तवना जब पूर्ण भई, तब सर्व सघ मिलके आनदके साथ स्नात्र पूजा करके, भगवानका स्नात्र जल महाराजके शरीरपर सींचा कि, तत्काल रोगरहित कचनवर्ण शरीर होगया, तब सो सर्व सघ, तथा नगरके लोक देखके बडे आश्चर्यको प्राप्त भये, और जहा प्रतिमा प्रगट भई, तहा बहोत मनोहर उचा शिखरबद्ध मदिर बनवाया, मदिर तैयार होनेंसें

श्रीअभयदेवसूरिजी महाराजनें उसी प्रतिमाकों स्थापन करी, तहा स्थभनकनामें महातीर्थ प्रसिद्ध हुवा, यहोत यात्री लोक आनें लगे, और 'जय तिहुअण स्तोत्र गुरुमहाराजने किया' जिसके अतके दो काव्योंमें धरणेन्द्र पद्मावतीकों आकर्षणरूप बीजमंत्र गोपित रखाथा, इससें उसको हरकोइ कार्यमें अपवित्रपणें स्त्री पुरुष बालकादिकगुणे तब धरणेन्द्रकों आयके हाजर होना पडे, इससें धरणेन्द्र हाथ जोडके गुरुमहाराजसें कहने लगा कि ये दो गाथा आप भडार करो, जो शुद्धभावसें तीस काव्य सदा पडिक्कमणेंके आदीमें गुणेंगे, तो ठिकाणे बेठाही उनका उपद्रव दूर करुगा, बाद धरणेन्द्र पद्मावतीके वचनसे अतके दो काव्य भडार किये, सबकों बोलनेका मना किया, और स्वप्नेंमे शासनदेवतानें नवकोकडा सूतका, सुलक्षाणें बाधत कहाथा, इसवास्ते भगवाननें (अभय देवसूरिजीनें) नवागसूत्रोंकी टीका करी, वीरनिर्वाणसें १५८१, विक्रमसवत् ११११, श्रीस्तमणपार्श्वनाथ प्रगट किया, और वीरनिर्वाणसें १५९०, विक्रम सवत् ११२०, में श्रीनवागसूत्रोंकी टीका करी, ऐसे महा अतिशयी चारित्र पात्र चूडामणी निकेवल सर्व जीवोंके उपगारार्थ गांव नगरोंमें विहार करते थके बहुत कालतक धर्मका उद्योत करते रहे, एकदा श्रीअभयदेवसूरिजीके प्रतिबोधे हूये, दोय श्रावक अणशणकरके देवलोक गये, तब देवलोकमें जातेही ज्ञानके उपयोगसें जाना, कि हमारा धर्माचार्य श्रीअभयदेवसूरिजी है, उनोंके प्रसादसे यह देवलोकका सुख मिला है, अत्यत रागी भया थका महाविदेहमे श्रीसीमधरस्वामीके पास जाके हाथ जोडके ऐसा प्रश्न किया, कि हमारा धर्माचार्य श्रीअभयदेवसूरिजी, इहासें कोन गतिमें जावेगें, ओर कितने भवमे मोक्ष जावेगें। तब भगवान सीमधरस्वामीने कहा कि तुमारा गुरु अभयदेवसूरि इहासें अणशणकरके चोथे देवलोक जावेगा, उहासें महाविदेहक्षेत्रमें उत्पन्न होके मोक्ष जावेगा, (इससें इस भवसें तीसरे भवमें मोक्ष जावेगा,) ऐसा भगवानका वचन सुणके आनदित हुवा थका श्रीअभयदेवसूरिजीके व्याख्यानावसरमें सब सभाके सामने दोनों देव आके बोले, 'भणियतित्थयरेहिं' महाविदेहे भवम्मितइयम्मि, तुह्माण चेव गुरुणो, मुक्खे सिग्घ गमिस्सति १, 'इत्यादि' और इस माफक शासन प्रभावक श्रीअभयदेवसूरिजी नवागवृत्तिकर्त्ता गुर्जरदेशमें कप्पडवाणिज्य नाम ग्रामके विषे अतमें अणशणकरके वि० स० ११६७ में कालकरके चोथे देवलोक गये ॥ ४२ ॥ ॥ ४३ ॥ श्रीअभयदेवसूरिजीके पाट ऊपर श्रीजिनवल्लभसूरिजी भए, वह प्रथम कूर्चपुरगछीय चैत्यवासी श्रीजिनेश्वर-

सूरिजीके शिष्य थे, जब उनोंके पास दशवैकालिकजीसूत्र पढने लगे तब वैराग्य
प्राप्त होके गुरुकों कहा, कि साधुका आचार तो ऐसा है, और सिथलाचारकों व
धारण किया है, तब गुरुनें कहा अभी हमारा ऐसाही कर्मोदय है, तब श्रीजिनवल्लभ
गणि गुरुकों पूछके शुद्ध क्रिया निधान, परमसवेगी, श्रीजिनअभयदेवसूरिजीका शिष
होगया, शुद्धचारित्र पालता थका अनुक्रमें सकलशास्त्रकों पढके गीतार्थ हुअ
एकदा विहार करते चीतोडनगरमें आए, उहा चडिकादेवीकों प्रतिबोधके जीव
हिंसा छोडाई, चडिका देवी पिण्डशुद्ध क्रियापात्र साधु जाणके वडी भक्तिवती भई
फेर उहाके सघनें साधारणद्रव्यसें ७२ बहोत्तर जिनालय मडित श्रीमहावीरस्वामीक
मदिर बनाया जिसकी प्रतिष्ठा करी, और पिंडविशुद्धिप्रकरण १, षड्शीतिप्रकरण २
सूक्ष्मार्थसार्धशतकप्रकरण ३, सघपट्टकप्रकरण ४, आदि अनेकग्रथ बनाये, तथा दश
हजार १००००, प्रमाण बागडी लोकोकों प्रतिबोधके जैनी श्रावक किये, फेर उस
चित्रकूटनगरमें विक्रमसवत् ११६७।

श्रीअभयदेवसूरिजीके वचनसें श्रीदेवभद्राचार्यजीनें श्रीजिनवल्लभगणिजीको आचा
र्यपदमें स्थापन किये छ महिनातक आचार्यपदपालके, अतमें अणशण करके
और समाधिसें कालकरके देवलोकगए, इससमयमधुकरखरतरशाखा निकली यह
प्रथम गछभेदभया, ॥ ४३ ॥ श्रीजिनवल्लभसूरिजीके पाट ऊपर श्रीजिनदत्तसूरिजी
हुवे, सो बडा दादाजीके नामसें सर्वत्र सर्वलोकमें प्रसिद्ध भए, इसतरह कोटिकगछ
पट्टावलीमें लिखा है १, और श्रीजिनदत्ताचार्यकृत गुरुपारतन्त्र्य पचमस्मरणमें २ और
लघुगणधरसार्धशतकवृत्तिमें ३, और गणधरसार्धशतकवृहत्वृत्तिमें ४, उपाध्याय
श्रीक्षमाकल्याणजीकृत खरतरपट्टावलीमें ५ और गणधरसार्धशतकमूलपाठमें ६, और
उपदेशतरगिणीमें ७ और उपदेशसीत्तरिमें ८, और कल्पातरवाच्यामें ९ खरतरगछमें
हुवे और वडे प्रभावीक हुवे लिखे हैं, इत्यादि अनेक ठिकाणे नवागवृत्तिकर्त्ता
खतरगछमें हुवे ऐसा लिखा है।

और गुजराति जैन इतिहासमें भी १० इसीतरह है और प्राकृत अभिधानराजेन्द्र-
कोसमें भी ११ श्रीनवागवृत्तिकर्त्ता श्रीअभयदेवसूरिजीके बारेमें इसतरे लिखा है,
तद्यथा—

॥ अभिधानराजेद्र प्राकृतकोशमे अभयदेव शब्दके अधिकारमें पृष्ठ ७०६ में नवाग-
वृत्तिकारक पहिला आचार्य है

और अभयदेव शब्दका अर्थ स्वरूप इसतरे लिखाहै अभयदेव-अभयदेव पु० नवाङ्गवृत्तिकारके, स्वनामख्याते आचार्ये, स्थानांगसूत्रवृत्तौ, (१) तच्चरित्रं त्वेवमाख्यान्ति धारानगरीमें महीधर (धना) शेठकी स्त्री धनदेवी नामहै उसको कूखसें अभयकुमार नामका पुत्ररत्न हुवा, वह अभयकुमार धारानगरी समोसरे हूवे श्रीवर्द्धमानसूरि शिष्य श्रीजिनेश्वरसूरिजीके पास दीक्षाली, कुमार अवस्थामेंहि व्रतलिया और अतिशायिबुद्धिसें १६ वर्षकी उमरमें श्रीवर्द्धमानसूरिजीकी आज्ञासे विक्रमसवत् १०८८ के सालमें आचार्यपदको प्राप्तहुवे, उस बखतमें दु काळादि होणेसें पटणे लिखणेके अभावसें सिद्धान्तोंकी वृत्तिया विछेदप्राय हुइथी, तब कोई एकरात्रिके समेमें शुभध्यानमें रहे हुवे अभयदेवसूरिजीकू शासनदेवता आकर बोली के हे भगवन् पूर्वाचार्योंने इग्यारे अंगोपर टीका करीथी, वा तो दोय अंगोंपर रहीहै बाकी टीका विछेदहूई है, इसलिये अबी फेर उण टीकाओंकी रचना करके सघपर दयाभाव लाके अनुग्रहकरणा' आचार्य महाराजनें कहा, हे शासनाधिष्ठायिके हे मात मे अल्पबुद्धि, बालाहू, और यह ऐसा दुष्कर कार्यकरणेकु में किसतरे समथ होवु, जिससें वहा पर टीका करणेमें जो कुछभी उत्सूत्र होवे तो महाअनथ ससारमे गिरना रूप होवे· बादमें देवतानें कहा हे भगवन् आपको शक्तिमान् जाणकेहि मने कहाहै, जहापर आपको सशय होवे, वहा पर उसी समय मेरा स्मरणकरणा, में महाविदेहमें जाके वहा श्री सीमधरस्वामिकु पूछके आपकों कहूगी इसतर करणे पर कुछ भी उत्सूत्र नहिं होगा, इसप्रकारसें शासनदेवीके उत्साह बढानेपर वह कार्य करणा शुरू किया, वह पूर्वोक्त कार्यकी समाप्ति न होणेपर पहिलेहि आंबिलकी तपस्या करके और रात्रिमें जागरणकरणेसें धातुप्रकोपसें रुधिरविकाररूपरोग उत्पन्न हूवा, याने रक्तपित्तरोगहूवा, तब उनोंके विरोधिलोकोंनें, अर्थात् चैत्यवासी लोकोंनें, हरग्पपूर्वक अपवाद करा के जो यह अभयदेव उत्सूत्र व्याख्यान करताहै, इसलिये शासनदेवी क्रोधातुर होकर इसके शरीरमें कोढरोग उत्पन्नकियाहै, उस अपवादको सुणके दुखी हूवे आचार्यकु रात्रिमे धरणेन्द्रने आयके उस रुधिरविकाररोगकु मिटादिया, और कहा के स्तमनकगामके पासमें सेढीनदीहै, उसके किनारे जमीनमें श्रीपार्श्वनाथस्वामिकीप्रतिमा है, जिसके प्रभावसें नागार्जुनजोगीनें रससिद्धि प्राप्त करीथी, उस प्रतिमाको प्रगटकरके वहा महातीर्थ आप प्रवर्त्तावो, बादमें आपकी अपकीर्ति नष्ट होगा, वादमें वहा जाकर श्रीअभयदेवसू-

रिजीनें, जयतिहुअण इत्यादि ३२ गाथाका स्तोत्र बणाकर सघसमक्ष उस प्रतिमाको प्रगट करी, तब आचार्यका महायश सर्वे ठिकानें हूवा, पीछे धरणेन्द्रके कहनेसें उस स्तोत्रकी २ गाथा निकालके शेष ३० गाथाहि प्रसिद्ध किया, वैसाहि अबी है, वा प्रतिमा खम्भातसहरमें अबिभी पूजिजे है, वा प्रतिमा श्रीनेमिनाथके शासनमें, २२२२ सालमें भराइ है, एसा उस प्रतिमाके आसनपर टाका हूवाहे, पीछे नव अगोपर टीका रची और पचाशक वगेरेकी टीका बनायके बादमें कपडवजसहरमें वि० स० ११३५ के सालमें स्वर्ग गये, जैन इतिहास, इत्येकोऽभयदेवसूरि, अनेन चात्मकृतप्रबन्धेष्वेव स्वपरिचयोऽदर्शि—

श्रीमदभयदेवसूरिनाम्ना मया महावीरजिनराजसन्तानवर्त्तिना महाराजवशजन्मनेव सविग्नमुनिवर्गश्रीमज्जिनचन्द्राचार्यान्तेवासियशोदेवगणिनामधेयसाधोरुत्तरसाधकस्येव विद्याक्रियाप्रधानस्य साहाय्येन समर्थितम्, तदेव सिद्धमहानिधानस्येव समापिताधिकृतानुयोगस्य मम मगलार्थ पूज्यपूजा नमो भगवते वर्तमानतीर्थनाथाय श्रीमन्महावीराय, नम प्रतिपन्थिसार्थप्रमथनाय श्रीपार्श्वनाथाय, नम प्रवचनप्रबोधिकायै श्रीप्रवचनदेवतायै, नम प्रस्तुतानुयोगशोधिकायै श्रीद्रोणाचार्यप्रमुखपण्डितपर्षदे, नमश्चतुर्वर्णाय श्रीश्रमणसघभट्टारकायेति, एवच निजवशवत्सलराजसन्तानिकस्येव ममासमानमिममायासमतिसफलता नयन्तो राजवश्या इव वर्द्धमानजिनसन्तानवर्तिन स्वीकुर्वन्तु, ययोचितमितोऽर्थजातमनुतिष्ठन्तु सुघूचितपुरुषार्थसिद्धिमुपयुञ्जताच योग्येभ्योन्येभ्य इति, किच—सत्सम्प्रदायहीनत्वात्सदूहस्य वियोगत, ॥ सर्वस्वपरशास्त्राणामदृष्टेरस्मृतेश्च मे ॥ १ ॥ वाचनानामनेकत्वात्, पुस्तकानामशुद्धित, ॥ सूत्राणामतिगाम्भीर्यान्मतिभेदाच्च कुत्रचित् ॥ २ ॥ क्षुण्णानि सभवन्तीह, केवल सुविवेकिभि ॥ सिद्धान्तानुगतो योऽर्थ, सोऽस्माद्ग्राह्यो न चेतर ॥ ३ ॥ शोध्यचैतज्जिने भक्तैर्मामवद्भिर्दयापरे, ॥ ससारकारणाद् घोरादपसिद्धान्तदेशनात् ॥ ४ ॥ कार्या नचाक्षमाऽस्मासु, यतोऽस्माभिरनाग्रहै ॥ एतद्गमनिकामात्रमुपकारीति चर्चितम् ॥ ५ ॥ तथा सभाव्य सिद्धान्ताद्, बोध्य मध्यस्थया धिया ॥ द्रोणाचार्यादिभि प्राज्ञैरनेकैरादत यत ॥ ६ ॥ जैनग्रन्थविशालदुर्गमवनादुच्चित्य गाढश्रम, सद्व्याख्यानफलान्यमूनि मयका स्थानागसद्भाजने, सस्थाप्योपहितानि दुर्गतनरप्रायेण लब्ध्यर्थिना, श्रीमत्सघविभोरत परमसावेव प्रमाण कृती ॥ ७ ॥ श्रीविक्रमादित्यनरेन्द्रकालाच्छतेन विंशत्यधिकेन युक्ते ॥ समासहस्रेऽतिगते (वि० स० ११२०) नियद्गा-

स्थानांगटीकाऽल्पधियोऽपि गम्या ॥ ८ ॥ स्था० १० ठा०, एवं समवायांगभगवत्यंगेपि सविस्तरतः स्ववंशपरम्परादर्शितेति । तस्याचार्यजिनेश्वरस्य मदवद्वादिप्रतिस्पर्द्धिनः, तद्बन्धोरपि बुद्धिसागर इति ख्यातस्य सूरेर्भुवि, छन्दोबन्धनिबद्धबन्धुरवचःशब्दादिसल्लक्ष्मणः, श्रीसंविग्नविहारिणः श्रुतनिधेश्चारित्रचूडामणेः ॥ ८ ॥ शिष्येणाभयदेवाख्यसूरिणा विवृतिः कृता ॥ ज्ञाताधर्मकथांगस्य, श्रुतभक्त्या समासतः ॥ ९ ॥ युग्मम् ॥ निर्वृतिककुलनभस्तलचन्द्रद्रोणाख्यसूरिमुख्येन ॥ पण्डितगणेन गुणवत्प्रियेण संशोधिताचेयम् ॥१०॥ एकादशसु शतेष्वथ, विंशत्यधिकेषु विक्रमसमानाम् ॥ (वि० सं० ११२० अणहिल पाटकनगरे, विजयदशम्यां च सिद्धेयम् ॥ ११ ॥ ज्ञा० द्वि० श्रु०, यस्मिन्नतीते श्रुतसंयमश्रियावप्राप्नुवत्स्थाय परं तथाविधम् ॥ स्वस्याश्रयं सर्वसतोऽति दुःस्थिते' श्रीवर्द्धमानः स यतीश्वरोऽभवत् ॥ १ ॥ शिष्योऽभवत्तस्य जिनेश्वराख्यः सूरिः कृतानिन्द्यविचित्रशास्त्रः ॥ सदा निरालम्बविहारवर्त्ती, चन्द्रोपमश्चन्द्रकुलाम्बरस्य ॥ २ ॥ अन्योपि विशे भुविसारसागरः, पाण्डित्यचारित्रगुणैरनूपमैः, शब्दादिलक्ष्मप्रतिपादकानघग्रन्थप्रणेता प्रवरः क्षमावताम् ॥ ३ ॥ तयोरिमां शिष्यवरस्य वाक्यात्, वृत्तिं व्यधात् श्रीजिनचन्द्रसूरेः ॥ शिष्यस्तयोरेव विमुग्धबुद्धिर्ग्रन्थार्थबोधेऽभयदेवसूरिः ॥ ४ ॥ बोधो न शास्त्रार्थगतोऽस्ति तादृशो, न तादृशी वाक् पटुताऽस्ति मे तथा ॥ न चास्ति टीकेह न वृद्धनिर्मिता, हेतुः परं मेऽत्र कृतौ विभोर्वचः ॥ ५ ॥ यदिह किमपि दृब्धम् बुद्धिमान्द्याद् विरुद्ध, मयि विहितकृपास्तद्धीधना शोधयन्तु ॥ विपुलमतिमतोऽपि प्रायशः सावृते स्याग्रहि न मतिं विमोहः किं पुनर्मादृशस्य ॥ ६ ॥ चतुरधिकविंशतियुते, वर्षसहस्रे शते (वि० सं० ११२४) च सिद्धेयम् ॥ धवलक्कपुरे प्रसत्यै, धनपत्योर्बकुलचन्द्रिकयोः, ॥ ७ ॥ अणहिलपाटकनगरे, संघवरैर्वर्तमानबुधमुख्यैः ॥ श्रीद्रोणाचार्याद्यैर्विद्वद्भिः शोधिताचेति ॥८॥ पद्मा० १९ विव०,, अभिरसइ तयवत्थो, जिणनाहो पणसयाइ बरिसाण ॥ तयणु धरणिंद निम्मिअ, सन्निज्झो विहिअ सुअसारो ॥ ४४ ॥ सिरिअभयदेव सूरि, दूरीकयदुरिअरोगसंघाओ ॥ पयडतित्थ काही, अहीणमाहप्पदिप्पंत ॥ ४६ ॥ ती० ६ कल्प, इति अभिधानराजेन्द्रकोशे, इस उपरोक्त लेखका सारभावार्थसंक्षेपमें लिखताहूं— कि निग्रंथ, कोटिक, चंद्र, वनवासी, इण नामोसे श्रीसुधर्मास्वामिकी पट्टपरम्परा और गच्छपरम्परा अविछिन्नपणे ३७ पट्टतकक्रमसें चलतिरहि और चन्द्रकुल, वयरी शाखा यह भी क्रमसे चलते रहे बादमें ३८ पट्टमें सुविहित परंपरावाले, सुविहितपक्ष, वा सुविहित गच्छके धारक

और ८४ गछके नायक श्रीउद्योतनसूरिजी हूवे, उनोके पट्टमें श्रीसूरिमन्त्रकों धरणेंद्रकों तीर्थंकरपास भेजकर शुद्धकरवाणेवाले, और महाघोर तपके प्रभावसें श्रीविमलसाह मन्त्रीकों प्रतिबोधके श्रावक धर्मधराणेवाले, आवुजी तीर्थकों प्रगटकराणेवाले, श्रीउद्योतनसूरिजीके ज्येष्ठातेवासी श्रीवर्धमानसूरिजी हूवे, उनोके पट्टमें युगप्रधानपदकों धारणकरणेवाले, १०८० में दुर्लभराजाके सन्मुख अणहिलपुरपाटणमे चैत्यवासीयोंकों जीतकर अतिनिर्मलखरतरविरुदकों धारणकरणेवाले और दशमे अछेरेके प्रभावकों दूर हटानेवाले, और अनेक निर्दोष शास्त्रोंकों रचनेवाले, श्रीजिनेश्वरसूरिजी और श्रीबुद्धिसागरसूरिजी हूवे, इनोके पट्टमें संवेगरंगशालादिग्रंथोंके कर्त्ता पद्मावतीसें वरकों प्राप्तहुवा और मौजदीन नामक बादसाहकों वरदेनेवाले, और उसको प्रतिबोध देनेवाले, श्रीजिनचन्द्रसूरिजी हूवे, इनोंके पट्टमें छोटे गुरु भाइ जयतिहुअणस्तोत्र बनायके श्रीस्तंभनकतीर्थकों प्रगटकर अपने शरीरमे उत्पनहुवे कोढरोगकों दूर हटानेवाले, और शासनदेवीके अनुरोधसें निर्दोष नवांगवृत्तिकों बनानेवाले, औरभी अनेक टीका प्रकरण वगेरे रचनेवाले, एकावतारी श्रीमान् अभयदेवसूरिजी हूवे

इस अनुक्रमसें स्थानांग, समवायांग, भगवती, ज्ञाताधर्मकथा, पंचाशकप्रकरणवगेरेकी वृत्तियोंके अंतप्रशस्तियोंमे वृत्तिकारनें अपनी गुरुशिष्यकी परम्परा दिखाइ है ऐसा वृत्तिकार खुद लिखते हैं और चान्द्रकुल, वा चांद्रगछ एकहि है भिन्न भिन्न नहिं है इस कथनसें, वृत्तिकारनें यथाऽऽम्नाय पूर्वापर प्रसंगानुसार, शेष रहै कोटिकगछ, वयरीशाखा, खरतर विरुदभी दिखाइ दिया है, एसा समजना चाहिये, और श्रीसुधर्मास्वामिसें लेकर श्रीउद्योतनसूरिजीतकतो चान्द्रकुलीय खरतरवडगच्छादिकोंकी पट्टावली प्रायें कर एकसरिखीहि मिले है और आगे फरक है, वास्तेहि श्रीउद्योतनसूरिजी श्रीवधमानसूरिजीसें लेकर श्रीअभयदेवसूरिजीनें अपनेतक गुरुशिष्यकी परम्परा और चांद्रकुल मात्र लिखाहै, शेष रहै कोटिकगछ, वयरीशाखा, खरतरविरुद पूर्वापर प्रसंगानुसार स्पष्टतर होनेमे नहिं लिखाहै, और गुरुशिष्यपरम्परा लिखनेकी अति आवश्यकता समजकर यथावस्थित अपनी परम्परा लिखीहै, इतने लिखनेपरहि शेपरहि वार्ताका बोध होता हूवा देखके जादा विस्तार नहिं किया, वडे पुरुष गंभीरस्वभाववाले होते हें, जहांपर जितना प्रयोजन देखे उतनाहि लेखादि कार्य करतेहैं, ज्यादे नहिं,

और वादमें वृत्तिकार अपनेकों शोधनेमें, वा लिखनेमें, सहाय देनेवाले, विद्वान आचार्य मुनियोंका उपकार समजकर, उनोंका नामादिक स्पष्टतर लिखाहै और वेगड खरतरशाखामें, श्रीजिनसिंहसूरिशिष्य श्रीजिनप्रभसूरिकृत श्रीतीर्थकल्पप्रकरणमें ६ छट्ठा तीर्थंकरपाधिकारमें लिखते हैं कि श्रीधरणइंद्रकरके सेवितहूवे थके सेढीनदीके तटपर पाचसे वर्षतक श्रीस्तंभनपार्श्वनाथस्वामीरहे देदीप्यमान सर्वोत्कृष्टप्रभाववाले, ऐसे श्रीस्तंभनपार्श्वनाथस्वामीकु प्रगटकर अपने शरीरसे जो दुष्टकोढरोगके समूहकों दूर हटानेवाले श्रीअभयदेवसूरिजी भये, उनोंने जयतिहुअण स्तोत्र रचकर इसस्तंभनकतीर्थकों प्रगटकिया, इहातक अभिधानराजेंद्रकोशअतर्गतलेखका भावार्थ है

और तपागच्छीय श्रीसोमसुंदरसुरिशिष्य श्रीसोमधर्मकृत उपदेशसित्तरि १ और गुजरातिजैनइतिहास २ और गणधरसार्धशतक ३ तथावृत्ति, ४ प्राकृतवीरचरित्र ५ श्रीजिनदत्तसूरिकृत गुरुपारतन्त्र्य नामक पचमस्मरण ६ श्रीसमयसुंदरोपाध्यायशिष्यकृत तीर्थकल्पव्याख्या ७ श्रीस्तंभनपार्श्वनाथजी उत्पत्तिका बडास्तवन ८ समाचारिशतक ९ और हीरालालहसराजकृत श्रीहरिभद्राष्टकटीकाभाषान्तर १० इत्यादि अनेकशास्त्रोंमें नवांगवृत्तिकारक श्रीअभयदेवसूरिजीका खरतरबिरुदगच्छ वगेरे प्रगटपणे लिखाहै और नवांगवृत्तिकारक श्रीअभयदेवसूरिजीके पट्टमें युगप्रधानपदधारक श्रीजिनवल्लभसूरिजी हूवे, और इनोंके पट्टमें अवादत्तयुगप्रधानपदधारक और एक लाख तीस हजार घरश्रुद्धक प्रतिबोधनेवाले, और ध्यारनिकायके अनेक देवदेवीयोंकरके सेवित होनेवाले, एकावतारी, बडादादाजी, इसनामसें प्रसिद्ध श्रीजिनदत्तसूरिजी हूवे, ऐसा गणधरसार्धशतकवृत्ति, गुरुपारतन्त्र्यपचमस्मरण, कोटिकगच्छपट्टावली, समाचारिशतकादि अनेक ठिकाणे प्रगट लिखाहै और धर्मसागरनें खरतरगच्छ परद्वेष धारके उपरोक्त दोनों महापुरुषोंपर द्वेष करके इसतरे कहाकि, नवांगवृत्तिकारकश्रीअभयदेवसूरिजी खरतरगच्छमे नहिं हूवे, श्रीजिनवल्लभसूरिजी नवांगवृत्तिकारक श्रीअभयदेवसूरिजीके शिष्यहि नहिं हैं, अथात् नवांगवृत्तिकारक श्रीअभयदेवसूरिजीके पट्टमें नहि हैं श्रीजिनेश्वरसूरिजीसें १०८० में खरतर बिरुद नहिं हूवा, अर्थात् श्रीजिनेश्वरसूरिजीकों खरतर बिरुद नहिं हैं, श्रीजिनदत्तसूरिजीसें खरतरगच्छ हूवा है फेर कहा कि १२०४ में खरतरकी उत्पत्ति हूइहै, और चामुंडक, और औष्ट्रिक आदि शब्दोंसें गच्छके ऊपर उपरोक्त दोय महापुरुषोंके उपर

१५ दत्तसूरि०

द्वेषधारके असत् दोषारोपण कियाहै, इत्यादि अनेक शास्त्रबाह्य अशुद्ध प्ररूपणा मनोमति धर्मसागरने करी है,

इत्यादि कारणोंसें सवत् १६ सेमें निन्हव धर्मसागर मतावलवियोंसें आधुनिक तपोटमतकी पुष्टी हुई, और इस समे उनोंकी बहुतहि प्रबलता है, इसवास्तेहि पूर्वोक्त अशुद्ध प्ररूपणा करते हैं, उपदेशकरके करवाते हैं,

॥ अब इहापर प्रत्युत्तरमें बहुतहि विवेचनीय है, बहुत शास्त्रोंकी शाख है परन्तु इहापर ग्रथगौरवभयसें अतिप्रसगभयसें उन शास्त्रोंका पाठ वगेरे नहिं लिखा है

और किसीकों विशेष देखनकीही इच्छा होय तो श्रीचिदानदजीकृत आत्मभ्रमोच्छेदनभानु नाम ग्रथकी पीठिका सरुसें, वा पृष्ट ३१ सें ६८ तक अवश्य देखलेवे, और यह ग्रथ छपकर तइयार हूवा है सो आदिसे अततक देखना जिस्सें इस विषयका परिपूर्ण समाधान होगा, और इस विषयके पहिले बहुत ग्रथ छप चुके है, और उनग्रथोंमे इसविषयका बहुतहि सप्रमाण शास्त्रपाठोंसें प्रत्युत्तर दिया गयाहै, इसलिये उन पुरुषोंकों धन्यवाद है, सत्यार्थ प्रगटकरणेसें, और उनोंके रचे हूवे ग्रथ ये हैं

प्रश्नोत्तरविचार, प्रश्नोत्तरमजरी, ३ भाग है, पर्युषणानिर्णय, आत्मभ्रमोछेदनभानु आदि छपे हैं, इसलिये पिष्टपेषण समजकर मेने इहापर विशेष नहिं लिखा है, इत्यल विस्तरेण,

और ऊपरोक्त विषयकी समूल उत्पत्ति इसतरे भइ है श्रीउद्योतनसूरिजीके ज्येष्ठातेवासी श्रीवर्धमानसूरिजी हूवे, तिनोंके शिष्य श्रीजिनेश्वरसूरिजी हूवे इस अनुक्रमसें अविच्छिन्न जो पाटपरम्परा चली सो खरतर इसनामसें प्रसिद्ध है, यह एकही गच्छसात नामसें प्रसिद्ध है

प्रथम निग्रन्थ, १ कोटिक, २ चन्द्र, ३ वनवासी, ४ सुविहित, ५ खरतर, ६ राजगच्छ, ७ याने धार्मिक ७ क्षेत्र होवे वैसा, भिन्न भिन्न कारणोंसें अतिनिर्मल यह ७ नाम प्रसिद्ध हैं, ओर श्रीउद्योतनसूरिजी महाराजनें श्रीसिद्धक्षेत्रमें श्रीसिद्धवडके नीचे श्रीसर्वदेवादि भिन्न भिन्न आचार्योंके ८३ शिष्योंकों श्रेष्ठ समयमें मध्यरात्रिसमे अपणे हाथसें आचार्यपद दिया, उसवक्त ८४ गच्छ हूवे, इन ८४ ही गच्छोंमे शुद्ध प्ररूपक बडे प्रभाविक आचार्य महाराज हूवेहैं सो सर्व पूजनीय

माननीय है, और तिन ८४ सीयोंकी समाचारी, कथंचित् एकहि है, एक गुरुके थापे भये हैं प्ररूपणाभी प्रायें एक समानही है, और इस समय (८४) चौरासी गच्छोंमेसें बहुत गच्छ तो विच्छेद होगयें है, प्रायें २-४ गच्छ सम्प्रदाय शेष रहि सभवे है, ऐसा प्राचीन जैनसम्प्रदायिक इतिहाससें मालूम होवे है, फेर विशेष तो श्रीज्ञानिमहाराज जाणे, श्रीवर्धमानसूरिजीकी सम्प्रदायवाले, और श्रीसर्वदेवसूरिजीकी सम्प्रदायवाले और चित्रवाल गच्छीय तपाविरुदधारक श्रीजगचंद्रसूरिजीकी सम्प्रदायवाले, ओसीया नगरी प्रतिबोधक श्रीरत्नप्रभसूरिजीकी सम्प्रदायवाले, चोथकी संवच्छरी पडावश्यकादि समाचारी प्रायें समानहि करते हैं इन सम्प्रदायोंमे होनेवाले महापुरुषोंकी करीहुई प्ररूपणाभी शुद्ध है, येही सम्प्रदाय प्राये प्राचीन हैं

और श्रीवर्धमानसूरिजी ८४ सो शिष्योंमे बडे थे, और मुख्य थे, तिणोंनें छमास निरंतर आचाम्ल (आंबिल) किया, और पक्षांतरमे, श्रीसूरिमन्त्रका अधिष्ठायकको जाणनेके लिये, क्रमागत श्रीसूरिमन्त्र श्रीउद्योतनसूरिजीके मुखसें प्राप्त होकर, बादमे श्रीदेवगुरुआराधनरूप अष्टम तप किया, तिससें श्रीसूरिमन्त्रका अधिष्ठायक श्रीनागराजधरणेन्द्र आया, और कहा कि हे भगवन् मेरेकों किसवास्ते याद किया, श्रीसूरिमन्त्रका अधिष्ठायक मे हुं, कार्य होयसो कहो, तब आचार्यश्रीजी बोले कि, इस श्रीसूरिमन्त्रका चौसठ देवता हैं, उणोंका स्मरण करणेसें, किसीनेभी दर्शन नहिं दिया, इसका क्या कारण है, तब धरणेन्द्रनें कहा कि, आपके सूरिमन्त्रमें एक अक्षर कम है, इसलिये अशुद्ध होणेसें अशुभभावसें देवता दर्शन नहिं देवे, मेंभी तुमारे तपके प्रभावसें आया हु, तब आचार्यश्रीने कहा कि, तैं प्रथम सूरिमन्त्र शुद्धकर, फेर दूसरा कार्य यथावसर कहूंगा, तब धरणेन्द्रनें कहा कि, मेरी शक्ति नहि है, तीर्थंकर सिवाय शुद्ध होवे नहि, तब आचार्य श्रीनें सूरिमन्त्रका डब्बा धरणेन्द्रकु दिया, तब धरणेन्द्रने महाविदेहक्षेत्रमें श्रीसीमंधरस्वामीकों जाके दिया, और श्रीसीमंधरस्वामीनेभी तब सूरिमन्त्रकों शुद्धकरके धरणेन्द्रकों दिया,' धरणेन्द्रनें पीछा लाकर श्रीवर्धमानसूरिजीकों दिया, बादमें तीनवार उस शुद्ध सूरिमन्त्रका स्मरण किया, बादमें सप्रभाव वह सूरिमन्त्र हूवा, बहुतहि जादा फुरणे लगा, बादमे उस सूरिमन्त्रके सर्व अधिष्ठायक देवताओंनें दर्शन दिया, तब उन देवताओंसें कहा कि, विमलदंडनायक हमकों पुछे है कि, आबुगिरि शिखरपर, जिनप्रतिमारूप तीर्थ है, वा नहिं, इत्यादि अधिकारआबुप्रबंधमे है,

सो अर्थरूपसें श्रीवर्धमानसूरिजीके संबधमें दिया गया है, इसतरे श्रीआबुतीर्थको प्रगटकर श्रीविमलवसहीकी प्रतिष्ठा करी, बादमे बहुत शासनकी प्रभावना करके स्वर्गगये इनोंके श्रीजिनेश्वर बुद्धिसागर जिनचन्द्र अभयदेवादि और श्रीमरुदेवा कल्याणवती महत्तरादि बहुतहि विद्वान गीतार्थ साधु साध्वीयोंकी वृद्धि हुई, और बहुत बडा समुदाय होणेसें, बृहट्गच्छ इस नामसें यह गच्छ प्रसिद्ध हूवा, ऐसा गणधरसार्धशतकादिकका अभिप्राय है, और पूर्वोक्त विषयपर आबुप्रबंध विशेष उपकारार्थ दिया जावे है—तद् यथा—

॥ अह अन्नयाकयाइ सिरिवद्धमाणसूरि आयरिया अरन्नचारिगच्छनायगा· सिरिउज्जोयणसूरिणो गामाणुगाम दूइज्जमाणा अप्पडिबंधेण विहारेण विहर· माणा अब्बुयगिरि सिहरतलहट्टीए कासद्दहगामे समागया तयाणंतरे विमलदंड नायगो पोरवाडवसमंडणो देसभाग उग्गाहेमाणो सोवितत्थेवागओ अब्बुयगिरि· सिहरे चडिओ सव्वओ पव्वयं पासित्ता पमुईओ चित्ते चिंतेउ माढत्तो इत्थ जिण· पासाय कारेमि ताव अचलेसर गुहावासिणो जोई जगम तावस सन्नासिणो माहण प्पमुहा दुट्ठमिच्छत्तिणो मिलिऊण विमलसाह दंडनायग समीव आढत्ता एवं वयासी भो विमल तुह्माण इत्थ तित्थ नत्थि अम्हाण तित्थ कुलपरपराया त वट्टई अओ इहेव तव जिणपासाय रचय नदेमो तओ विमलो विलक्खो जाओ अब्बुयगिरि सिह· रतलहट्टीए कासद्दहगामे समागओ जत्थ वद्धमाणसूरि समोसरिओ तत्थेव गुरु विहिं· णा वंदिऊण एव वयासी भयवं इहेव पव्वए अम्हाण तित्थ जिणपडिमारूव वट्टई· त्ति वा नवा तओ गुरुणा भणियं वच्छ देवया आराहणेण सव्व जाणिज्जइ छउ· मत्था कह जाणंति तओ तेण विमलेण पत्यणाकया किंबहुणा वद्धमाणसूरिहिं छम्मासी तव कय तओ धरणिंदो आगओ गुरुणा कहियं भोधरणिंदा सूरिमंत्त अहिट्ठायगा चउसट्ठि देवया संति ताण मज्झे एगावि नागया न किंचि कहियं किं कारण धरणिंदेणुत्त भयवं तुम्हाण सूरिमत्तस्स अक्खरं वीसरियं असुद्ध भावाओ देवया नागच्छति अह तव बलेण आगओ गुरुणा वुत्त भो महाभाग पुव्व सूरि मंत्त सुद्ध करेहि पच्छा अन्न कज्जं कहिस्सामित्ति धरणिंदेणुत्त भगवन् मम स· त्तीनत्थि सूरिमंतक्खरस्सअसुद्धिसुद्धिं काउ तित्थगर विणा कस्सवि सत्ती नत्थि तओ सूरिणा सूरिमंत्तस्स गोलओ धरणिंदस्स समप्पिओ तेण महाविदेहखित्ते सीमं· धरसामिपासेनीओ तित्थगरेण सूरिमंतो सुद्धो कओ तओ धरणिंदेण सूरिमत्त गो·

लओ सूरिण समप्पिओ तओ वारत्तय सूरिमत्त समरणेण सव्वे अहिट्ठायगा देवा पच्चक्खीभूया तओ गुरुणा पुट्ठा विमलदंडनायगो अह्माण पुच्छइ अम्बुयगिरिसिहरे जिणपडिमारूव तित्थ अच्छइ नवा तओ तेहिँ भणिय अम्बुयादेवी पासओ वाम-भागे अदयुदआदिनाहस्स पडिमा वट्टइ अखंडकायसत्थियस्स उवरि चउमर पुप्फमाला जत्थदीसइ तत्थ राणियव्व इइ देवया वयण सुचा गुरुणा विमलसाव-यस्स पुरओ कहिय तेण तहेव कय पडिमानिग्गया विमलेण सव्वे पासंडिणो आहूया दिट्ठा जिणपडिमा सामवयणा जाया पासाय काउमारद्ध विमलेण, पास-डेहिँ भणिय, अह्माण भूमिदव्य देहि तओ विमलेण भूमी दव्वेहिँ पूरिऊण पासाय कय वद्धमाणसूरीहिँ तित्थपइन्निय न्हवण पूयाइ सव्व कय तओ पच्छागयकालेण मिच्छत्तिणो तस्साहिणा जाया, तओ मावण्णजिणालओ सोवनकलसधयसहिओ निम्मविओ विमलेण अट्ठारसकोडी तेवनलक्खसरादव्वो लग्गो अज्जवि अखडो पासाओ दीसइ इत्यादि इति अर्बुदाचलप्रबंध इस आबुतीर्थकों प्रगट करणेवाले श्रीवर्धमानसूरिजीसें अविच्छिन्न दुप्पसहसूरिपर्यंत जो सप्रदाय है, सो सर्वत्र बहुलताक-रके, खरतरगच्छ, इसनामसें इसजगतमे महसूर है, और श्रीउद्योतनसूरिजी श्रीसिद्धक्षेत्रमे सिद्धवडनीचे ८३ शिष्योंकों आचार्यपद देकर अपणा अल्पायु जाणके वहांहि अणसणकर समाधिसें स्वर्गगये, और ८३ तयासी शिष्योंकों वडवृक्षनीचे आचार्यपद दिया, इस्स कारणसें वडगच्छकी स्थापना हुइ, महाप्रभाविक हूवे, जि-स्से अपणें अपणें गच्छनामस प्रसिद्ध हूवे, और सामान्यप्रकारसें तयासीयोंकाहि वडगच्छ कहा जावे है, परन्तु बादमें अलग अलग अपने नामसें प्रसिद्धि पाये, और उन ८३ तयासीयोंमे वडे श्रीसर्वदेवसूरिजी थे, वेहि विशेषकर, वडगछ, इस नामसें प्रसिद्ध हूवे हैं ऐसा सभव है, और श्रीउद्योतनसूरिजी श्रीसर्वदेवसूरिजी और श्रीदेवसूरिजी आदि श्रीमुनिरत्नसूरिजी पर्यंत अनुक्रमसें जो पाटपरम्परा है, सो वडगच्छ इसनामसें प्रसिद्ध है, और यह गच्छ, निग्रन्थ, कोटिक, चन्द्र, वनवासी, सुविहितपक्ष, वडगच्छ इन नामोंसें प्रसिद्ध है, और कहा जाता है, और यथा-र्थरूपसें तो श्रीमुनिरत्नसूरिजीके आगे पाटपरम्परा नहिं चली, विच्छेद गइ ऐसा प्रायें सभवे है, और कहा जावेहै कि मुनिरत्नसूरिजी आगे वडगच्छ सप्रदाय श्रीचित्रवालगच्छमें जामिलि है, इस्सें महातपाबिरुदधारक श्रीजगचन्द्रसूरिजीसें लेकर वडगच्छकी पाटपरम्परा लिखि जावेहै, और वडगच्छकी पट्टावलिमेंभी इसी

तरे पाटपरम्परा देखनेमे आवेहै, ऐसा किसीका कहिना है, यह भी श्रीबृहत्कल्पवृत्ति श्रीधर्मरत्नप्रकरणवृत्ति आदि शास्त्रदेखता तो यह कहेना मिथ्या सभवे है, जैसे श्रीअभयदेवसूरिजी नवागवृत्तिकर्ताने अपणा कुल पाटपरम्परा वगेरहस्वतत्र लिखाहै, इसीतरे महातपाविरुद धारक श्रीजगचन्द्रसूरिजीकाभी तत्पट्टप्रभाकर श्रीदेवेन्द्रसूरिजी तत्सतानीय श्रीक्षेमकीर्तिसूरिजीनेभी अपणा चित्रवालगच्छ, महातपाविरुद, और स्वतत्र पाटपरम्परा लिखी है, इस्सें इनोंमे वडगच्छका गन्धभी नहिं है, इनोंके वडगच्छकी पाटपरम्परासें कोइ सबध नहि है, तद् यथा— श्रीपद्मचन्द्रकुलप्रविकाशी श्रीधनेश्वरसूरिजी हुवे, श्रीचैत्रपुरमडन महावीर प्रतिष्ठासें चैत्रगच्छ हुवा, उस गच्छमें श्रीभुवनेन्द्रसूरिजी उनके शिष्य श्रीदेवभद्रगणिजी, उनके शिष्य श्रीजगच्चन्द्रसूरिजी और श्रीदेवेन्द्रसूरिजी, तथा श्रीविजयेन्दुसूरिजी, यह तीन महाराजश्लोकोक्तगुणसहित हुवे, श्रीविजयेन्दुसूरिजीके प्रथम शिष्य श्रीवज्रसेन सूरिजी दूसरे शिष्य श्रीपद्मचद्रसूरिजी तीसरे शिष्य श्रीक्षेमकीर्त्तिसूरिजीनें श्रीबृहत्कल्पसूत्रकी टीका विक्रमसवत् १३३२ मे रचि है, उसकी प्रशस्तिमें और श्रीधर्मरत्नप्रकरणवृत्ति आदिमें इस मुजब अपणा गच्छ अपणा विरुद, और अपणी गुरुशिष्यकी पाटपरम्परा लिखि है और श्रीवडगच्छीयमणिरत्नसूरिजीका गुरुशिष्यतरीके नामभी नहिं लिखा है, इस्सें जाणा जाता है कि श्रीवडगच्छके साथ श्रीचैत्रवालगच्छका कोइ सबध नहिं है, यह वात सत्य है, इस्सें यह चैत्रवालगच्छ स्वतत्र अलगहि है, और श्रीजगच्चन्द्रसूरिजी तत्पट्टे श्रीदेवेन्द्रसूरिजी आदि जो अनुक्रमसें पाटपरम्परा है सो इस्समें लघुपौशालीयतपा शाखा है, श्रीदेवेंद्रसूरिजीसे प्रसिद्ध भइ है, और श्रीविजयेन्दुसूरिसें जो पाटपरम्परा है, सो बृहत्पौशालीयतपा शाखा है, सो प्रसिद्ध है, यह दोनों शाखा श्रीचित्रवालगच्छकीहि है, वडगच्छकी नहिं है, और महातपाविरुद, तपागच्छ चित्रवालगच्छ, यह एकहि है, ऐसा शास्त्र देखनेसें मालूम होवे है, और श्रीशास्त्रोंके अनुसार तो इसीतरे मानना उचित है, वा प्ररूपणा करणा सत्य है, और श्रीसर्वदेवसूरिजीसें लेकर श्रीमणिरत्नसूरिजीतक वडगच्छकी पाटपरम्पराको श्रीजगच्चन्द्रसूरिजीके नाम साथ लगाते हैं, सो शास्त्रके आधारसें तो मिथ्या है, और विना विचारी अधपरम्परा है, ऐसा जाणा जावे है, और विशेष तो श्रीज्ञानी महाराज जाणे

और विक्रमसवत् १६१२ में श्रीजिनमाणिक्यसूरिजीके शिष्य श्रीजिनचद्रसूरिजी हूवे, उससमय चित्रवालगच्छीय, अपरनाम, श्रीतपागच्छीय श्रीविजयदानसूरिजी-

का शिष्यधर्मसागरनें अनेक उत्सूत्रबोलोंकी प्ररूपणा की, और अनेक गुरुआम्नायाश्रितविरुद्धबोलोंकी अशुद्धप्ररूपणा की, तब श्रीजिनचन्द्रसूरिजी विहार करते अणहिलपुर पाटणमे पधारे, तब यह वृत्तात श्रीजिनचन्द्रसूरिजीनें सुणा, तब सर्व गच्छमताश्रित सर्व सभाजनसमक्ष जाहिर शास्त्रार्थ धर्मसागरके साथ श्रीजीका हूवा तिसमें निर्णयार्थ अतिमसभामें धर्मसागरसें बुलाया, अपणा पक्ष निबल जाणके, सभामें आणेवास्ते नट गया, तब धर्मसागरका पक्ष झूठा जाण, सर्व गच्छवासीयोंने, और मतवासीयोंनें शास्त्र देख श्रीजिनचन्द्रसूरिजी आश्रित पक्ष सत्य जाण, सर्वने सही करी, याने दस्तकत किये, वह सहीपत्र, पाटण, जेसलमेर वीकानेर आदि भडारमे रखा गया था, और श्रीविजयदानसूरिजीनें धर्मसागरका बनाया हुवा, कुमतिकन्दकुद्दालग्रथको जलशरण किया, और गच्छव्यवस्थाश्रित, ७ और १३ बोल लिखे, और धर्मसागरको गच्छ बाहिर किया, इत्यादि व्यवस्था उस समय हुइ थी, सो कुमतिविषजागुलि १ और श्रीजसविजयजीकृत आगमविरुद्ध अष्टोत्तरशत उत्सूत्र बोल २ श्री सोहमकुलरत्नपट्टावलि दीपविजय कविकृत ३ आदि ग्रथ देखणेसें प्रगटपणे सत्यहि मालूम होवे है, इसी लियेहि लघुपौशालीयतपा शाखामे श्रीविजयसेनसूरीजीके बादमें दोय गद्दी भइ हे, सो आणन्दसूरि, १ तथा देवसूरि, २ इस नामसें प्रसिद्ध है, सो इस्सेंभी धर्मसागर और धर्मसागरकृत प्ररूपणाकाहि मुख्य कारण जाणा जाता है, और उस समय तो इन सर्व अशुद्ध प्ररूपणाओंका निषेधहि किया गया है, और इसतरे तपगच्छनायकन अपणे गच्छम हुक्म जाहिर कियाथा कि, धर्मसागरका बनाया हुआ ग्रथ उसके अदरसें कोइभी गीतार्थ अपणे बनाये हुवे ग्रथमें एकभी बात लावेगा तो गच्छनायकके तरफसें बडा ठपका मिलेगा, और इसतरेका कोइभी नवीन ग्रथ होवे सो सब गीतार्थके शोधे सिवाय प्रमाण करे नहिं, इत्यादि व्यवस्था गच्छकी लिखि है, इसलिये मालम होवे है कि, तपगच्छनायकोंन धर्मसागरकी करी हुइ तिससमयकी अशुद्ध प्ररूपणाये कबुल नहिं करी थी और शुद्ध प्ररूपणा मार्गमेहि रहे, बादमें श्रीविजयसेनसूरिजीके पीछे मुख्य शिष्य देवसूरिजीनें अपणा मामा भाणेज नाता होणेसें, विजयसेनसूरिजीके वचनोंका अनादर करके, और धर्मसागरकी अशुद्ध प्ररूपणा कबुल करके, तीन पीढीसें गच्छ बाहिर किये हुवे धर्मसागरको पीछा गच्छमें लिया, और गच्छमें भेद करके अपणे आपसेंहि स्वतत्र आचार्य हुवा, तबसें दोय आचार्य गच्छमें हुवे, एक निज

यसेनसूरिजीके आज्ञानुसार पट्टवर विजयतिलकसूरिजी, और विजयदेवसूरि, इनोंनें गच्छमे अशुद्ध प्ररूपणाकी प्रवृत्ति करी, और विजयतिलकसूरिजी ३ वर्ष आचार्यपदमे रहे बाद स्वर्ग हुवे, बादमें श्रीविजयतिलकसूरिजीके पट्टमे श्रीविजयाणंदसूरिजी हुवे, जिनोके नामसें आणदसूरिगच्छ प्रसिद्ध है, और यह आचार्य चिरंजीवी हुवे, इनोंने स्वगुरु आज्ञानुसार प्रवृत्ति करी, इसतरे होणेसें लघुपौशालीयतपा शाखामें दोय पाटपरंपरा भइ, गच्छमे अशुद्ध प्रवृत्ति हुइ, यह अबभी चल रहि है, यह इतिहास प्रसिद्ध है तथापि विशेष वृत्तान्त पूर्वोक्त ग्रथानुसार जाणना और परपक्षवालोंके साथ द्वेष धरके मैत्रीभावकों दूर हटाके देवसूरिआश्रित निन्हव धर्मसागरनें अपणा मतव्य पौषणेके लिये, प्रवचनपरीक्षा १ कुपक्षकौशिकादित्य २ सर्वज्ञसिद्धि, ३ कल्पकिरणावली, ४ वगेरे ग्रंथ बनाये हैं, और धर्मसागरका शिष्य विमलसागरने स्वकपोलकल्पित खरतर तपाचर्चा आदि बनाये है, और श्रीहीरविजयसूरिजी वगेरेके नामसें तथा अपणें नामसें कितनेक पत्र १ बोल २ काव्य ३ चरित्र ४ जम्बूद्वीपपनत्ति टीका ५ वगरे ग्रथ नवीन अपणा पक्ष पौषणेके लिये बनाये हैं, उनके अदर अपणी मरजी प्रमाणे पूर्वसूरियोंके नामसें अपणे सत्यवादी होणेके लिये, असत्य पक्ष पौषण किया है, तदाश्रित विद्वानोंनें श्रीजिनचद्रसूरिजीके साथ वैरानुबद्ध हो कर, उनके प्रच्छन्नपणे, विजयप्रशस्तिकाव्य, २ श्रीहीरसौभाग्यकाव्य २ वगेरे काव्य बनाये हैं तिनोंके अदर कितनाक असत्य पौषण किया है, और ऋषभदासकृत हीररास तथा लावण्यसमयकृत विमलरासमें चीतोडवासी कर्मचदडोसी तथा विमलसाह मत्री वगेरेके बारेमें कितनाक असत्यका पोषण किया है, और तिण पुन्यवानोंने स्वस्वकालभावि स्वगच्छाश्रित धर्मगुरुओंके सदुपदेशसें श्रेष्ठ धर्म कार्य किये हैं, सो तिनके, धर्मगुरुओंका नाम श्रीवर्धमानसूरिजी है, श्रीजिनमाणिक्यसूरिजी है सो क्रमसे जाणना, और श्रीहीरसूरिजी पहिले अकबरसें मिले है, बादमे कोइ कारणसें श्रीजिनचन्द्रसूरिजी अकबरसें जा मिले है, उनोने बकरीका ३ भेद, टोपीकाजीकी बसकरणा, अमावसकों चन्द्रका उगाना आदि चमत्कार दिखाये हैं, और बादसाहाको प्रतिबोध देके षट्दर्शनीयोंका कलक दूर किया, दिल्लीका बादसाहका मुख्य मत्री कर्मचद बच्छावतके निजगुरु, सवा सोमजीको प्रतिबोधके जैनी पौरवाल श्रावक बनानेवाले, श्रीजिनचन्द्रसूरिजी थे, इत्यादि शुद्धार्थ गोपणेसें और अनेक असत्यवातोंको ग्रन्थद्वारा पोषणेसें असत्य प्ररूपणा करणेसें और

खगच्छकी शुद्ध प्रवृत्ति विगाडणेसे और खगुरुकी आज्ञा लोपणेसें, धर्मसागर तथा धर्मसागरपक्षपाताश्रितविजयदेवसूरि आदिकर्से, संवत् १६१२ के आसरेमे तपोटमतकी पुष्टी हुइ और इन तपोटमतियोंने तिससमय आगम आचरणा विरुद्ध ६० बोल आसरेका फरक किया, और वादमे तो जादातर फरक किया गया है, एसा मालुम होवे है, और इनहि तपोटमतियोंका खरूपवर्णन, स्वभावगुणवर्णन वगेरेका सत्यार्थ तपोटमतकुट्टनशतकमें लिखा है, और इन तपोटमतियोंके तथा खरतर गच्छवालोंके आगम, आचरणा, प्ररूपणा, आश्रित आपसमें वहुतहि अन्तर है, सो जाणके सत्य स्वीकार करके और असत्यका त्याग करणा यहहि धर्मार्थी प्राणिका प्रथम कर्तव्य है, यह संक्षिप्त आधुनिक तपोटमतका वृत्तांत है, अपिच वडगच्छ, तथा चित्रवाल गच्छ, अपर नाम, तपागच्छ, तथा उपकेशगच्छकें प्राये कर आचरणा, आगम, खसआम्नाय, प्ररूपणा, आश्रित आन्तरणिक अंतर शास्त्र देखनेसें तो श्रीखरतरगच्छवालोंके साथ भेद नहि है, एसा मालुम होवे है, और प्रायेंकर आपसमे विरोधकामी कोइ कारण नहिं है, और प्राये अन्य गच्छवाले सवहिने आपसमे मैत्रीभाव रखा है और खरतरगच्छवाले तो अभितक अन्यगच्छवालोंके साथ अवश्यकर मैत्रीभाव रखते हैं, और ऐसाहि सबके साथ हरवखत रखना चाहते हैं, और चला कर प्रथम कनिभी किसीके साथ विरोध भावकी उदीर्णा करणी नहिं चाहते हैं, और पुरुपादानीय श्रीतेवीसमे तीर्थंकर श्रीपार्श्वनाथस्वामिके संतानीय परदेशी राजा प्रतिवोधक श्रीकेशीकुमारजी हुवे, श्रीगौतमस्वामिके साथ मिलाप होणेसें श्रीवीरशासनमे संक्रमण हुवे, वादमें क्रमसें पट्टपरम्परा चलति रहि, और श्रीजम्बुस्वामिके समे श्रीरत्नप्रभसूरिजी चौद पूर्वधारी हुवे, जिनोंने एकवखतमें दोय रूप करके कोरंटक, और औशीयामे समकालमे प्रतिष्ठा करी, और १२ कोस लांबी और ९ कोस चोडी, एसी ओसीया नगरी प्रतिवोधके प्रथम, जैनकुलकी तथा ओसवंशकी स्थापना करी, वादमें श्रीवज्रस्वामिके समय दशपूर्वधर श्रीभद्रगुप्तसूरिजी हुवे, जिणोंके पास श्रीवज्रस्वामि दशपूर्व भणें हैं, वादमें श्रीलोहित्याचार्यके समय पूर्वधर श्रीदेवगुप्तसूरिजी हुवे हैं, जिणोंके पास वल्मीय वाचना करनेवाले, और सिद्धान्तोंको पुस्तकारुढ करनेवाले, श्रीलोहित्याचार्य शिष्य श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणसाधें एकपूर्व भणे हैं, एसा वृद्धसंप्रदाय है, यह वीरनिर्वाणसे ९८० वर्षे हुवे हैं, इनोके वादमे प्रायेंकर चैत्यवास स्थिति हुइ, वादमें विक्रमसं १०८० के सालमे खगुवादिसहित श्रीजीनेश्वरसू-

रिजी अणहिलपुरपाटणमें आये, उस समय चैत्यवासस्थितिमेरहेहुए श्रीउपकेशगच्छीय सप्रदायमे श्रीसूराचार्य प्रमुख ८४ चैत्यवासी आचार्योके साथ श्रीपचासरीय चैत्य-सभामें श्रीदुर्लभराजा समक्ष शास्त्रार्थ हूवा था तिस शास्त्रार्थमे श्रीजीनेश्वरसूरिजीका पक्ष सत्य होणेसे, श्रीदुर्लभराजाने श्रीजिनेश्वरसूरिजीकों खरतर करके कहै, और वादीपक्ष श्रीसूराचार्यवगेरेकों नर्म होणेसें श्रीदुर्लभराजानें कवलाकरके कहै, और कहाभी है, कि जीत्या सो खरतर हुवा, हार्या सो कवला जाणिया, तिणसमे जैनसघमें, गच्छ दोय वखाणिया, १॥ वादमे श्रीअभयदेवसूरिजी हूवे उनोंने श्री॰ स्तमणपार्श्वनाथजीकी प्रतिमा प्रगटकरके नवाग वगेरेकीवृत्तियारची उस समय श्रीसूराचार्यशिष्यपडितशिरोमणि सर्वचैत्यवासीयोंमें मुख्य श्रीद्रोणाचार्य हूवे, उणोनें श्रीअभयदेवसूरिजीकृत सर्ववृत्तिया शोधिहै और वादमे क्रमक्रमसें कितनेक चैत्य॰ वास छोडकर वसतिवासी हूवे, और स्वगच्छमें (कवलाग॰) वहुतकालसें साधुधर्म॰ विच्छेद होणेसे किसीनें किया उद्धार नहिं किया और क्रियोद्धार नहिं करसके तथा॰ विध आगमानुरोधसें ओर परिग्रहधारि श्रीपूजपणेमेहि अपणी परम्परा चलाते रहै, सो अविगी कमलागच्छमे परिग्रह धारी आचार्य याने श्रीपूजयतिवगेरे विद्यमान है, परन्तु साधु–साध्वी प्रायें नहिं है, और इनोंका विशेष समुदायभी फलोधि और वीकानेरमें मौजूद है, और इनोंका श्रीपूजभी वीकानेर वगेरहमेहि रहेते थे, यह प्राचीनगच्छ सप्रदाय है, और यह उपकेशगच्छ, वा कावलागच्छ, इस नामसें प्रसिद्ध है, और इस सप्रदायका करिमीसें खरतरगच्छवालोंके सह प्रशस्त मैत्री भावादि चला आवे है यह वात गुरुगमसप्रदायि होवे सो जाणते हैं, और पहिला सामायक पीछे इरिया वही, श्रीवीरषट्कल्याणकादि प्ररूपणा सर्व प्रायें खरतरगच्छके समानहि मानते है, और यह वडी वडी वातें लिखकर कवले॰ गच्छका सक्षिप्त स्वरूप कहा है, और विशेष श्रीउपकेशगच्छ सविस्तर पट्टावली तथा खरतरगच्छ पट्टावलीसें गुरुगमाम्नायसें जाणना,

और ८४ सी गच्छवाले एक गुरुके शिष्य है, सवकी सदश समाचारी है विशेष भेद नहीं है और प्ररूपणा समाचारी प्राचीन शास्त्रानुसारतो एकहि मालुम होवे है, इसलिये प्रायें विरोध वगेरेका कारण कोइ नहिं मालम होवे है, और श्रीरत्नप्रभसूरिजी और श्रीजिनवल्लभसूरिजी और श्रीजिनदत्तसूरिजी इन ३ आचार्योकाहि जैनकोमपर वा ८४ सी गच्छवालोंपर विशेष उपकार किया हुवा मालम होवे है, इत्यल विस्तरेण

किंच बहु वक्तव्यमस्त्यत्र तत्तु नोच्यते, अग्रे यथावसर विस्तारयिष्याम

अथवा जागते हो, बादमें आचार्यश्रीनें मंद स्वरसें जबाब दिया कि, हे भगवति! जागताहुं, बादमें देवता बोली हे प्रभो! शीघ्र उठो, और ये नव सूतकी कोकडी अलुझी भइ है सो आप खोलो 'याने सुलजावो, श्रीसूरिजी बोले कि सुलजानेको में नहिं समर्थ हुं, तब देवता बोलि के हे पूज्य आप कैसे नहिं समर्थ हो! अभितो आपश्री बहुतकालतकजीवोगा, और नव अंगकी टीका बनावोगा, आचार्यश्रीबोले कि इसतरेका प्रचंडरक्तपित्ति रोगयुक्त शरीर होनेपर कैसे नवअंगकीटीकाबनाउंगा, बादमें शासन देवतानें कहा स्तंभनक पुरमें सेढी नदीके किनारे पर खाखरेके वृक्षके अंदर जमीनमें श्रीपार्श्वनाथ भगवानकी प्रतिमा है, उन प्रतिमा सन्मुख देववंदन करो, जिससें रोग-रहित समाधियुक्त शरीरहोवे, ऐसा कह कर शासन देवता अदृश्य भइ, बाद प्रभातमें गुरुमहाराज मिच्छामि दुकडं देवेगा, इस अभिप्राय कर दूसरे ग्रामोसे आये हूवे और उसी ग्राममे रहनेवाले सर्व श्रावक मिलकर आचार्य श्रीके पास आये, उन सर्व श्रावकोनें आचार्य श्रीको नमस्कार करा, बादमे आचार्यश्रीनें कहा कि हमारेकों श्रीस्तंभनक पुरमे श्रीपार्श्वनाथ स्वामिकों वंदना करनी है, आचार्यश्रीका यह वचन सुनकर बादमें सब श्रावकोंनें अपने मनमें जाना कि निश्चे आचार्यश्रीकुं किसीका रात्रिमे उपदेश हुवा है, उस्सें इसतरे आचार्यश्री फरमाते हैं, इसतरे श्रावकोनें अपने मनमें विचारके बादमें उन सब श्रावकोनें आचार्यश्रीकों कहा कि हमभि सब आपके साथमे आवेंगे बाद उन

श्रावकोने आचार्यश्रीके वास्ते डोली करी, तिस डोलीके अंदर आचार्यश्री बेठे, और यात्राकेवास्ते स्तंभनकपुर प्रति वहांसें चले, बादमें आचार्यश्रीकी अनाजपर रुचि भइ, प्रथम आचार्यश्रीकों भूख बिलकुल नहिंथी, परन्तु स्तंभनकपुर प्रति प्रयाण करनेपर, पहिले प्रयाणेमेंहि रस विषयि इच्छा उत्पन्न भइ, क्रमसें जितनें धोलके पहुंचे उतनें आचार्यश्रीके शरीरमें विशेष समाधि भइ, बाद प्यादलहि विहार कर आचार्यश्री स्तंभनकपुर पधारे, बादमें जितनें श्रावक लोक श्रीपार्श्वनाथस्वामिकी प्रतिमाजीके तलासमें लगे, उतनें वा प्रतिमा कहांभि नहिं देखनेमें आइ, बादमें श्रावकोंने आचार्यश्रीकों पूछा, तब आचार्यश्रीनें कहा, कि खाखरेके अंदर तुमलोक देखो, बादमें श्रावकोनें सेढी नदीके किनारेपर पलाशवृक्षोंके अंदरतलासकरणेसें देदीप्यमान श्रीपार्श्वनाथ स्वामिकी प्रतिमा देखनेमें आइ, और उस प्रतिमाके ऊपर निरतर स्नात्रके लिये एक गाय वहांपर आके दूधकुं झारतिथी, बादमे हरपित हुवे ऐसे श्रावकोंनें आयके आचार्य श्रीकों कहा, हे भगवन् आपके कहे हुवे प्रदेशमे प्रतिमा देखनेमें आइ हे, यह वचन श्रवण कर बादमे भक्तिपूर्वक आचार्यश्री वंदना करनेंके लिये जहांपर प्रतिमा देखनेमे आइ वहापर पधारे, और वहांपर खडे खडेहि मस्तक नमायकर नमस्कार करा, और नमस्कार करके बादमे देवप्रभावसें ॥ जयतिहुअणवरकप्परुक्ख, जयजिणधन्नंतरि, जयतिहुअणकल्लाणकोस, दुरिअकरिकेसरि, तिहुअणजणअविलंघियाण, भुवणत्तयसामिअ, कुणसु सुहाइं जिणेसपास,/थंभणयपुर ठिअ ॥ १ ॥

इत्यादि नमस्कार बत्तीसी करी, बाद अंतकीदोयगाथा अत्यंत-देवतावगेरेकी आकर्षण करनेवाली जाणके, शासन देवताने कहा, हेभगवन् इसस्तौत्रकी तीसगाथा कहेणेसेहि हम अपणेठिकाणे रहे-हुवेहि सर्वस्तौत्रका पाठकरणेवाले भव्योंका सर्व कष्ट दूर करेंगे, संपूर्णस्तौत्रका पाठकरणेवालोंके प्रत्यक्ष होणा हमारे बहुतहि कष्टका कारणहै, इसकारणसें, परमेसर सिरिपासनाह धरणिंद पयठिय, पउमावई वइरुट्ट देव जय विजयालंकिय, तिहुअणमततिकोंण विज्ज सिरिहरि महीमंडिअ, तियवेढिय महविज्जदेव थंभणयपुरट्ठिय ॥१॥

सत्तमवन्न जगद्रवन्न सरअट्ठविभूसिय, वंजणवन्न दसद्धवन्न सिरिमडलपूरिय, चिरिमिरिकित्तिसुबुद्धिलच्छि किर मंत सुसायर थंभणपास जिणद सिद्ध मह वंछिय पूरण ॥ २ ॥

एत्र महारिह जत्त देव इयन्हवणमहुसउ, जंअण लिय गुणगहण तुम्ह मुणिजण अणिसिद्धउ, इय मइं पसियसुपासनाह थंभणय पुरट्ठिअ, इयमुणिवर सिरि अभयदेव विण्णवइ आणदिअ

॥ ३२ ॥ यह गाथा आपश्री हमारेपर कृपा करके भंडार करो, बादमे देवताके आग्रहसें दाक्षिण्यताके समुद्र ऐसे आचार्य श्रीने वैसाहि करा, बादमे आचार्यमहाराजनें समस्तसंघके साथ चैत्यवंदन करा, बादमे श्रावक समुदायने विस्तारसें, स्नात्र, वि-लेपन, मुकुट, कुंडल, वगेरे आभूषण पहिराणेकर और सुगंध युक्त पुष्प चढाणेकर, अनेक प्रकारसें पूजा करी, और मनोहर शाल स्तंभा तोरण चोकी वगेरे करके शोभित अत्यत उंचा

मनोहर देरासर श्रावकोंने बनाया, बादमें श्रीमान् अभयदेव सूरिजीनें स्थापना करी, बादमें श्रीमद् अभयदेवसूरिजी स्थापित वह श्रीमान् स्तंभनक पुरमे रहे हुवे, श्रीस्तंभन पार्श्वनाथ स्वामि सर्वलोकोंका वांछित पूरण करणेसे स्तंभनतीर्थ ऐसा करके सर्व-ठिकाणे प्रसिद्धिकों प्राप्त हुवे.

बादमें आचार्यश्रीभि वहांसे विहार कर अणहिल्लपुर पाटण पधारे, वहां पाटणमे श्रीजिनेश्वरसूरिजी स्थापित वसतिमे रहे, उस वसतिमे रहेतां थकां आचार्यश्रीने, स्थानांग, समवायांग, विवाहपन्नत्ती, वगेरे नवअंगोकी वृत्तियों करणी सरु करी, उन वृत्तियांके करणेमे जहां कहांभी संशय उत्पन्न होवे, उस ठिकाणे स्मरण करणेसें जया विजया जयंति अपराजिता नामक देवता स्मरण करणेके साथहि महाविदेह क्षेत्रमे तीर्थंकरके पास जाके संशय पदका अर्थ पूछके सत्य अर्थ आचार्यश्रीकों कहै.

उस समय वहां पाटणमे चैत्यवासी आचार्य द्रोणाचार्य नामके रहतेथे उणुनेंभि सिद्धातोका व्याख्यान करणा सरुकरा, सर्व चैत्यवासी आचार्य पुस्तक लेकर सुणनेको आते हैं और आचार्यश्रीभि वहांपर व्याख्यान श्रवण करणेकों जातें हैं यतः

स्वयं विद्‌तोऽपि हि सम्यगर्थं,
सिद्धांततर्क्कादिकशास्त्रवाचां ।
शृण्वंति गत्वालघवोऽन्यतोपि,
निर्मत्सरा एव गुणेषु संतः ॥ १ ॥

कहाभि है, सिद्धांत और तर्कादिक शास्त्रोंका सत्य अर्थ आप जाणते है तोभि लघुतापूर्वक दूसरोंके पास जाके श्रवण करते हैं इसका कारण यहहै कि सज्जन पुरुष गुणोंमे ईरपा रहित हि होते हैं, बादमे द्रोणाचार्यभि श्रीअभयदेवसूरिजीके गुणोंसें रंजित हुवे अपणे सहाय्यके वास्ते आचार्यश्रीको आसन दिरावे, व्याख्यान करता द्रोणाचार्यको जहा संशय उत्पन्न होवे, वहांपर तिसप्रकारके नीचे स्वरसें कहै, जैसे और दूसरे नहिं सुणे, इसतरे निरंतर व्याख्यान करतां थकां उन द्रोणाचार्यकों और कोइ दिनमें जिस सिद्धांतका व्याख्यान करे हैं उस सिद्धांतकी व्याख्यान स्खलविपयि वृत्ति लाये, और आचार्यश्रीने उस द्रोणाचार्यके हाथमे दी, उस वृत्तिकों देखके अत्यंत आश्चर्यमहित होकर द्रोणाचार्यने अपणे मनमें विचार किया कि अहो इये क्या वृत्ति साक्षात् गणधर महाराजकी बनाइ है अथवा इनोकी बनाइ हूइ है, इसतरे मनमे विचारके द्रोणाचार्यने कहा क्या इये वृत्ति तुमारी बनाइ हुइ है इसतरे पूछनेपर आचार्यश्रीमौनधारके रहै बादमें द्रोणाचार्यनें अपणे मनमे विचार किया कि निश्चय इसी आचार्यश्रीनेहि या वृत्ति बनाइ है, जिमसें कहाभि है कि जिसका निपेध न किया वह कार्य माना हुवा होवे है, औरभि कहा है ॥

स्वगुणान्परदोपांश्च वक्तुं प्रार्थयितुं परा,
नर्थिनश्च निराकर्तुं, सतामास्यं जडायते ॥ १ ॥

भावार्थ—उत्तम पुरुप अपणे मुखसें अपणा गुण और दूसरोंका अवगुण कहेणेवाले न होवे, और दूसरे पुरुपोंकों प्रार्थना

करणेवाले न होवें, याचना करणेवाले पुरुषोंकी याचनाका भंग करणेवाले न होवे ॥ १ ॥

बादमें द्रोणाचार्य अपणे मनमें विचारणे लगे, कि, अहो इति आश्चर्ये कोणपुरुष रत्नप्राप्त होकर, रत्नग्रहणकरणेमें मंदआदरवाला होवे, अपि तु कोइभी मंदआदरवाला न होवे, ऐसा विचारके द्रोणाचार्य श्रीअभयदेवसूरिजीका गुणवर्णन करे आचार्यश्रीके प्रति बहुमान करणेमें तत्पर हुवे, बाद जब जब आचार्यश्री आवे जावे, तब तब द्रोणाचार्य खडे होवे, सामने आवे, कुछ दूरतक पोहचाने जावे, बादमें वेसा सुविहित आचार्य विषयि आदर करता हुवा देखके, और चैत्यवासी आचार्य वगेरह नाराजहोके सर्व उठकर खडे भये, और अपने अपने मठमें चैत्यवासी आचार्योंने प्रवेश करा, और बहुतहि बोलने लगे, जेसे कि, अहो यह किस गुण करके हमारेसें अधिक है, जिस गुणकर हमलोकोंमे मुख्यभी ये द्रोणाचार्य श्रीअभयदेवाचार्यका इसप्रकारका आदरसत्कार बहुमान करते है, पीछे हमलोक कैसे होवेंगें, अर्थात् हमारी कैसी दशा होवेगी, इत्यादि बादमें द्रोणाचार्य वह पूर्वोक्त वचन अपणे समुदायवाले आचार्य वगेरोंका सुणकर, विशेषज्ञ गुणोंका पक्षपात करणेवाले द्रोणाचार्यने नवीन श्लोक बणाके सर्व चैत्यवासी आचार्योंके मठोंमें भेजा, वह श्लोक यह है,

आचार्याः प्रतिसद्म संति महिमा येषामपि प्राकृतै-
र्मातुं-नाध्यवसीयते सुचरितैस्तेषां पवित्रं जगत्, ।
एकेनापि गुणेन किंतु जगति प्रज्ञाधनाः सांप्रतं,
योऽधत्ताऽभयदेवसूरिसमतां सोऽस्माकमावेद्यताम् १

भावार्थ–जिणोंकामहिमा प्राकृतयानेअल्पवुद्धिवाले मनुष्योंसें नहिं प्रमाण होसके ऐसेआचार्य प्रत्येकठिकाणेहे, और उनआचायोंके श्रेष्ठआचारकरके यहजगतपवित्रहै, परन्तु वर्त्तमानकालमें जेवुद्धिरूपधनवाले, याने वुद्धिमानआचार्य जगतमे हैं, उणोंके अंदरसें कोइभी ऐसा आचार्यहै के जो एकभी गुणकरके श्रीअभयदेवसूरिजीके सदृशहोवे, कदाचित् कोइ आचार्य होवे तो मेरेकों जरूरदेखावोगा" यह पूर्वोक्त श्लोक वाचकर वादमे सर्वचैत्यवासीआचार्यशान्तहूवे, और श्रीमद् अभयदेवसूरिजीके सन्मुख श्रीद्रोणाचार्यजीने इसतरे कहाकि "जो सिद्धान्तवगैरेकीटीका आपवणाओगा, उणसर्वटीकाओंको मे शोधुंगा, और लिखुगा" और अणहिलपुरपाटणमे रहेतां पूज्यश्रीनें दोय गृहस्थोकों प्रतिवोधकर सम्यक्तसहितवारेव्रतधारि करेथे, वेदोनुं श्रावक समाधिसें श्रावकपणा पालकर, देवलोक गये, देवलोकसें वह दोनुदेव श्रीतीर्थंकरकों वन्दना करणेके लिये महाविदेहक्षेत्रमे गये, श्रीसीमंधरस्वामि श्रीयुगंधरस्वामिकों नमस्कारकरा, धर्म सुणकर उण दोनु देवोंनें भगवानकों पूछाकि हमारा धर्माचार्य धर्मगुरु श्रीअभयदेवसूरिजी कितनेभवमें मोक्षजावेगा, तव अर्हंतभगवाननें कहा, तीसरे भवमे तुमारा धर्माचार्य मोक्षजावेगा, यहसुणकर हरखसें जिणोका शरीर विकस्वरमान हूवा, और जिणोकी रोमराजि विकसितहूइ, ऐसे वह दोनु देव अपणे धर्मगुरुजीके पासमे गये, तीर्थंकरको वादणेका स्वरूप कहा वादमे वंदना करके जातां उणदेवोने आगाथा कही, यथा—

भणिअं तित्थयरेहिं, महाविदेहे भवंमि तइयंमि,
तुह्माण चेव गुरुणो, मुक्खंसिग्घंगमिस्ससि ॥ १ ॥

यह गाथा प्रगटार्थ है, आगाथा स्वाध्यायकरति हूई, आचार्य श्रीसंबंधि महत्तरापदप्राप्तकरनेवाली मुख्यसाध्वीनें सुणी, वादमे उसमुख्यसाध्वीनें उसगाथाकों आचार्यश्रीके सन्मुखआकर सुणाइ, वाद आचार्यश्रीवोले यहअर्थपहिलेहि हमनें जाणा है, और कोइ अवसरमें श्रीपूज्य पालणपुरपधारे, वहांपर आचार्य संबंधि भक्तश्रावकहैं, उणश्रावकोका जहाज समुद्रके अंदर व्यापारके लिये चलेहैं, वे जहाज क्रयाणोसेंभरके भेजे हूवेहैं, उणक्रयाणोंसें भरेहूवे जहाज उणोंके समुद्रके भीतर मार्गमें चालतांथकां इसतरे वात सुणनेमें आइ कि क्रयाणोंसें भरेहूवे जहाज थे सो समुद्रकेभीतरडूवगये, वादमें श्रावक उसबातकों सुणकर, वहुतहि जादा अपणे मनमे उदास हूवे, वह श्रावक श्रीअभयदेव सूरिजीके याद करणेके साथहि उपाश्रयमे आये, आचार्य श्रीकों वंदना करी, वादमें उण श्रावकोको आचार्य श्रीने पूछाकि, हे धर्मशील श्रावको आज तुमको वंदना करणेमे देरी केसे हूइ, याने किस कारणसें आज तुमलोक वंदना करणेको मोडे आये, उण श्रावकोंनें कहा, हेभगवन् किसिकारणकरके हमारा मोडा आणाहूवा, पूज्यपाद आचार्यश्रीनें कहा । क्या कारणहे, तव श्रावकोंनें कहा, हे भगवान् समुद्रके अंदर जहाजोका डूबना सुणकर हमलोक दुखी हुवे है, इस कारणसें हमलोक वंदनाके वक्तपर नहिं आसके, यहवातसुणनेंके वादमें, क्षणमात्रअपनेमनमें ध्यानधरके आचार्यश्रीनें कहा, हे श्रावको इसविषयमे तुमारे दुख करणा नहिं श्रीगुरुदेवके प्रभावसें अछाहोवेगा, इसतरे श्रेष्ठभावार्थकों कहेनेंवालेहि सत्पुरुषहोवेहे, यहसुणकर श्रावक हर्षितहूवे,

उतनें दूसरे दिनमें खबर लानेंवाला मनुष्य उसनें वहां आकर इस-तरे खबर दीवी, के तुमारे जहाज क्षेमकुशलसें समुद्रकों उलंघकर तटपर आये है, वादमें यह वात सुणके, सत्यकरके पवित्र श्रीगुरुमहाराजके वचनोंपर उत्पन्न हूवाहै विश्वासजिणोकों ऐसे उण श्रावकोनें सर्वपरिवारसहित श्रीगुरुमहाराजके पास आकर विधिपूर्वक वंदना नमस्कार करके विनय सहित हाथ जोडके इस-तरे श्रीगुरुमहाराजसें वोले, कि हेभगवन् जहाजोमे आये हूवे क्रयाणोंसें जितनालाभ होवेगा, उसका आधाहिस्सा हमलोक सिद्धान्त पुस्तकोके लिखाणेमे लगावेंगे, वादमे आचार्यश्रीनें प्रशंसा करी, अहो श्रावको तुमलोक धन्यहो, जिणोंका मुक्तिस्त्रीके कंठका स्पर्शकरणेमे हेतुभूत इसतरेका परिणाम है, यतः—

> इह किल कलिकाले चंडपाखंडिकीर्णे,
> व्यपगतजिनचंद्रे केवलज्ञानहीने,
> कथमिव तनुभाजां संभवेद्वस्तुतत्वा-
> वगम इह यदि स्यान्नागमः श्रीजिनानां ॥ १ ॥

भावार्थ—प्रचंड पाखंडियोंसें व्याप्त इस कलियुगमें निश्चय सर्वज्ञरूपी चंद्रमाके अस्त होनेपर और केवलज्ञानके विछेद होनेपर इहांपर जो श्रीतीर्थंकरप्रणीत सिद्धान्त नहिं होते तो मनुष्योंकों वस्तु-तत्वका वोध केसे होता ॥ १ ॥

> जिनमतविषयाणां पुस्तकानां स्ववित्तै-
> रतिशयरुचिराणां लेखनं कारयेद्यः ॥
> प्रथयति महिमानं वस्त्रपूजादिरम्यं,
> सुगुरु समय भक्तिर्मानवो माननीयः ॥ २ ॥

भावार्थः—जो पुरुष आद्यंत मनोहर ऐसे जैनधर्मसंबंधि पुस्तकोंका लिखाणा अपणे धनसें करावे है और वस्त्र पूजादिकसें मनोहर ऐसा महिमा विस्तारे है, वह सद्गुरु और सिद्धान्तकी भक्ति करणेवाला मनुष्य जगतमें मानणे योग्य होवे है ॥ २ ॥

सकलभरतनाथा यद्भवंतीह केचित्,
त्रिदशपतिपदं यद्दुर्लभं मानयंति,
यदपिच गुरुदुर्गग्रंथगर्भं विदन्ति,
स्फुरितमखिलमेतत्तत्कृताराधनस्य ॥ ३ ॥

भावार्थः—इहां जो कोइ समस्तभरतक्षेत्रका राजा याने चक्रवर्त्ति होवे है और कितनेक इन्द्रपणो पावे है और कितनेक बहुतहि जादा कठिन ग्रंथोंके तत्त्वको जाणते हैं इये सर्व सिद्धान्तकी आराधना करणेवाले मनुष्यको फलप्राप्ति होवे है ॥ ३ ॥ इत्यादि देशना करके बहुतहि जादा उत्साहको प्राप्त हुवे, ऐसे उण श्रावकोंनें श्रीअभयदेवसूरिरचितअनेकसिद्धान्तकीवृत्तियांवगेरेके बहुत पुस्तक लिखवाये और प्रसिद्धिमें लाये और लिखवाके ठिकाणे ठिकाणे भंडार कराये.

बादमें औरभि उसस्थानसें पूज्यअभयदेवसूरिजी विहार क्रमसें आकर अणहिल पुरपाटणकों अलंकृत करा, निश्चय यह भी पूज्यपाद आचार्यश्रीजी कुशाग्रबुद्धिवाले सर्वसिद्धान्तपारंगामी सुविहितचक्रवर्त्ती युगप्रवर युगप्रवरागम संविग्नसाधुवोंके समूहमे शिरोमणी पुण्यपात्र इत्यादि अनेक प्रकारसें सर्वत्र पृथ्वीमंडलमे प्रसिद्धिकों प्राप्तभये, उधरसें उससमय आसिकानामकीनगरीमें रहेनेवाले चैत्यवासी कूर्चपुरीय गच्छके श्रीजिनेश्वरसूरिहोतेभये,

वहा जो श्रावकोंके लडके है वे सर्वेहि उस आचार्यके मठमें भणतें हैं, वहां सर्व विद्यार्थीयोंमे जिनवल्लभ नामका श्रावकका लडका है, उसका पिता परलोक गयाहै, उस लडकेकों उसकी माता निरन्तर सुखसें पालती है, यह लडका जब पढने योग्यभया तब उसकी माताने जिनेश्वराचार्यके मठमें पढणेके लिये भेजा, सर्व विद्यार्थीयोंसें अधिक पाठ उस जिनवल्लभको याद होवे, अब कोइ एक दिनके समय नगरके बाहिर शौचादिकके निमित्त जाता, उस जिनवल्लभकों एक टीपना मिला उसटीपनेमे दो विद्या लिखि भई है, एक तो सर्प्पआकर्पणी दूसरी सर्प्पमोचनी, बादमें दोनों विद्याको कंठ करके, जितने पहिली विद्याको अजमाणेके लिये पढि, उतने फणोंके समूहसें भयंकर फूत्कार करते हूवे अत्यंतचपलमुखसें बाहिर निकाली दो जिह्वा जिनोंने चलते हुवे लालनेत्र जिनोके ऐसे दशदिशाओसे विद्याके प्रभावसे खेंचे हूवे आते हुवे वडे वडे सर्प्पोंकों देखे, निर्भय मनवाला उस जिनवल्लभने अपने मनमे विचारकराकि निश्चयआविद्या प्रभावसहित है, ऐसा विचारके, फेर दूसरी विद्याका उच्चारणकरा, उस दूसरी विद्याके प्रभावकर सर्व सर्प पीछा अपना मुखफोरके जाने लगे, यह सर्ववृत्तात सहरमेरहेहूवे जिनेश्वराचार्यने सुणा, अपणे मनमे जाणा और निश्चयकरा कि यह लडका सात्विकहै विशेप पुण्यवान है यह गुणपात्र है इस लिये अपने वसमे करणा युक्त हैं इसतरे विचारके बादमे दाख खज्जूर घेवर मालपूआ मखाणा लाडु वगेरे अनेक सारपदार्थ देनेपूर्वक आचार्यने उस जिनवल्लभकुं अपने वशकरके बादमे उस जिनवल्लभकी माताकों

मीठे कोमलवचनोंकर प्रतिवोध करा, और यह तेरा पुत्र विशे
विद्वान्है विशेपप्रतिभा सहितहै विशेपसत्ववान्है, ज्यादा कह
नेसें क्या प्रयोजन है, यह जिनवल्लभ आचार्यपद योग्य है तिस
कारणसें इस जिनवल्लभकुं हमकों देदें यह धर्मसंबंधि देरासर मठ
वगेरे सर्व तेरा है, तेरा और दूसरोंका विस्तार करनेवाला होगा
इस अर्थमें अन्यथा कुछ कहना नहिं, अर्थात् नाकारा वगेरे करना
नहिं, ऐसा कहके पांचसें रुपिया जिनवल्लभकी माताके हाथमें
देके, शीघ्र जिनवल्लभकुं दीक्षा दी, जिनवल्लभको दीक्षा देके, जिन-
वल्लभकुं जिनेश्वराचार्यजीनें सर्व व्याकरण छन्द अलंकार नाटक
ग्रहगणित वगेरे निरवद्य विद्या भणाई,और जिनवल्लनेभी थोडी मुदतमें
अपनी वुद्धिके बलसें सर्व न्यायसाहित्य ज्योतिप वैद्यक वगेरेपर
सिद्धान्त रहस्यरूप सर्व विद्या ग्रहण करी,

कभी उस जिनेश्वराचार्यके गाम वगेरे जानेका प्रयोजन उत्पन्न
हूवा, तब गामको जाते हूवे आचार्यनें पंडित जिनवल्लभकों कहा
कि में गाम जाकर पीछा आवुं उतनें मठ देराशर ग्राम ग्रासवाडी
वगेरे सवकी चिंता तेरे करणी, जितने कार्य करके मे आऊं, इतने
कहेनेपर विनयसें मस्तक नमाकर जिनवल्लभने कहा जेसी पूज्योंकी
आज्ञा है वैसाहि करुंगा, आप साहिब परमपूज्योंकों कार्य करके
पीछा जलदि आना, इतना कहेनेपर यह जिनेश्वराचार्य ग्रामा-
न्तर गया, वादमें दूसरे दिनमें जिनवल्लभनें विचारा कि जो यह
भंडारके अन्दर पुस्तकोंसे भरीभइ पेटी देखनेमें आवे है तो इन
पुस्तकोंमें क्या लिखा है मे देखुं कारण कि जिस्सें सर्वकार्य मेरे
आधीन हूवा है,

ऐसा विचारकर, जिनवल्लभनें एक पुस्तककों खोला, वह पुस्तक सिद्धान्तसंबधि है, उसपुस्तकमे यहलिखा हुवा देखा, साधु मुनिराजोंकों भ्रमरकी तरह गृहस्थोंके घरोंसें बयालीश दोपरहित आहार लेनेकर संजम निर्वाहके वास्ते शरीरकी रक्षा करणी, सचित्त पुष्पफल वगेरे हाथसेंभी स्पर्शना नहिं कल्पे, तो खाणा तो नहिंज कल्पे, और मुनियोंको चतुर्मासकसिवाय एक मास उपरांत एक ठिकाने नियत रहेना नहिं कल्पे, इत्यादि साध्वाचारसंबंधि विचारोंकों देखकर, पंडित जिनवल्लभ अपने मनमे आश्चर्यसहित भया विचार करने लगा कि अहो इति आश्चर्ये, दूसराहि वह कोइ व्रताचार है, जिमकर मुक्तिमें जाया जाय है, उस्सें विरुद्ध यह हमारा आचार है, प्रगट जाणा जाता है कि इस आचारकर दुर्गतिरूप गर्त्तामे पडता कोइभी आधार नहिं होगा, ऐसा मनमें विचार करके, गंभीर वृत्तिकर पुस्तकवगेरेकुं जेसे पहिलेरखे थे वैसाहि पीछा रखकरके, गुरुमहाराजकी कहीहूई मर्यादाप्रमाणे सर्व व्यवस्था संभालता हूवा रहा, बादमे आचार्य कितने दिनोंके अनतर अपनाकार्यकरके अपनेस्थानपर पीछाआया, और सर्व व्यवस्था बरोबर देखके, आचार्य अपने मनमे विचार करा कि कोइभी वस्तुकी हानि तो नहि हूइ, जितनी जिनवल्लभने मठवाडी मंदिर द्रव्यसमूह भंडार वगेरे सर्व वस्तुजात इसके आधीन कीगइ थी उसमेसें जबतक जिनवल्लभने संभाला तबतक किसीभी वस्तुकी हानि नहिं हूइ, तिसकारणसें यह जिनवल्लभ सर्वस्व संभालनेमे समर्थ है सर्वका निर्वाहकरणेवाला है, अतः योग्य है, जैसा विचारा है वैसाहि निश्चययहजिनवल्लभहोवेगा, परन्तु

जैनसिद्धान्तविना शेष सर्वहि तर्क अलंकार ज्योतिष वगेरे विद्या इस जिनवल्लभनें भणी है ऐसा जिनेश्वराचार्यनें विचारा और यथावस्थितसंपूर्ण जैनसिद्धान्त इस वक्तमें वर्त्तमानकालकी अपेक्षा श्रीअभयदेवसूरिजीके पासहै, ऐसा सुणतेंहै, उससर्वजैनसिद्धान्तकी वाचनालेनेके वास्ते श्रीअभयदेवसूरिजीके पासमें जिनवल्लभकुं भेजुं"

जैन सिद्धान्तोंकी वाचना ग्रहणकीयोंके वाद सर्वविद्यारूपी स्त्रीका भर्त्तार पंडित जिनवल्लभकों अपणे पदमे स्थापनकरुंगा, ऐसा विचारकर और वाचनाचार्यकापद देके, चिंतारहितहुवा थका भोजनादिकयुक्ति विचारके, जिनशेखर नामका दूसरा शिष्य वैयावच्च करनेके लिये साथमें देकर, श्रीजिनवल्लभकुं श्रीअभयदेवसूरिजीके पासमें भेजा, वाद स्वस्थानसें अणहिलपुरपाटण जातां मरुकोटमे रात्रि रहै, वहा मरुकोटमे माणानामका श्रावकनें कारित जिनभवनकी प्रतिष्ठा करी, वाद अणहिलपुरपाटण पहुचे, वहां श्रीअभयदेवसूरिसंबंधी वसती (उपासरा) पूछकर अन्दर प्रवेश करा, तव वसतीके अन्दरस्तीर्थंकरसमान भगवान् श्रीअभयदेवसूरिजीकों देखे, कैसे हैं वहश्रीअभयदेवसूरिभगवान् विशिष्ट सिद्धान्तकी वाचनाके अर्थी पासमें बेठें हूवे है बहुत आचार्य जिनोंके ऐसे और अपणीवाणीके वैभवकरके तिरस्कारकरा है देवाचार्यका जिणोने ऐसे साक्षात् तीर्थंकरके समान श्रीअभयदेवसूरिजीकों भक्तिके वससें उलमायमानहै सर्वरोमराजिरूपकी कंचुकिका पेंहरनेकावस्त्रविशेष उस्से युक्त है शरीररूपी लता जिसकी ऐसा जिनवल्लभनें भक्तिबहुमान पुरस्सर विधिपूर्वक

वंदना नमस्कार किया, वादमे श्रीगुरुमहाराजने देखणे मात्रसें हि जाणा कि यह योग्य है, और दर्पणकी तरे विशेपशुद्ध हैं अंतकरण जिसका ऐसा, यहकोइपुरुपरत्नदेखणेमे आवेहै, ऐसा देखणेसेंहि श्रीअभयदेवसूरिजीनें विचारके मधुरवाणीसे पूछा कि कहासें आये है, और तुमारे आणेका क्या प्रयोजन है, वादमे दोनो हस्तकमलोंको जोडकर श्रीअभयदेवसूरिजी भगवानके दर्शनसें उत्पन्न हूवा जो उपमारहितवहूमानजलसमूहसें छोयाहै अन्तःकरणसंवंधि मेलजिसनें ऐसा, और वचनरूपीजलसें मानकरा हूवा जो अमृतसेंवनाहूवाचन्द्रकेजेसागणिजिनवल्लभनें कहा कि हे भगवन् अपणीअखंडशोभाकेसमूहसेंयुक्त ऐसी अपणी आसिकानामकनगरीसें में आयाहूं, और भ्रमरकों भ्रमकरणेवाला जो आपके मुखकमलमें लगा हूवा सिद्धान्तरस पीणेकी बुद्धिवाला मेरेको मेरेगुरुमहाराजश्रीजिनेश्वरसूरिजीने श्रीमती आसिकानगरीसें सर्वलोकोंका मनोवांछित पूरणकरणेमे कल्पवृक्षके समान आपसाहिवके पासमें श्रीजैनसिद्धान्तोंकी वाचना ग्रहणकरणेके लिये भेजा है, मेरे आणेका यह प्रयोजन है, इसलिये आपश्रीके पास सर्व जैनसिद्धान्तोंकी रहस्यसहितवाचना लेणेकी मेरी इच्छा है वादमे पूज्यपादश्रीअभयदेवसूरिजीनें विचारा कि

कालंमि आगए विऊ, अपत्तं च
नवाइज्जा पत्तंचनावमाणए ॥ १ ॥

अर्थ—विद्वान् गीतार्थ सुविहित आचार्य व्यवहारसूत्रादिकमे कहा हूवा काल होनेपर भी योग तप उपधानादिक करणे पर भी सिद्धान्तकी रहस्यसहित वाचना अयोग्य कुपात्र विगई प्रतिवद्धादि-

कोंको नहिं देवे, और योग्यपात्रगुरुभक्त श्रद्धा विनय बहु-मानादिकसहित सर्वव्यवहारिकविद्यासंपन्न रहस्यसहितपरसिद्धा-न्तका जाणकार सुशिष्य मिलनेपर कालयोगादिकविनाभी विद्वान् गीतार्थ सुविहत आचार्य श्रीसिद्धान्तकी रहस्यसहित वाचना देवे, योग्यसुशिष्यका वाचनादि नहिं देणेकर कदापि अपमान नहिं करे' ॥ १ ॥

गुरुक्रमायात संप्रदायसें, ऐसा विचारकर श्रीअभयदेवसूरिजी महाराजनें कहा, तुमने बहुतहि श्रेष्ठ विचार किया है, और जो इहां पर सिद्धान्तकीवाचनाके अभिप्रायकर तुमारा आणा हूवा है, इसलिये प्रधानदिनमें वाचना देवेगे ऐसाकहकर प्रधानदिनमें वाचना देणी सरुकरी, जैसे जैसे सुगुरुसिद्धान्तकी वाचना देवे वैसा वैसा हरखितचित्तवालाहूवाथका सुशिष्य अमृतकीतरे सिद्धान्त वा-चनाका पानकरे, अर्थात् स्वादलेवे, हरखसें विकस्वरमान कम-लसदृश उसको वैसा योग्यशिष्यदेखकर, श्रीगुरुमहाराजभी संतोपकी पुष्टिसें वाचनादेनेंमेंद्विगुणउत्साहसहित हूवे, बहूत कहे-णेसें क्या प्रयोजन है, वहवह जणाणेकीबुद्धिकर श्रीपूज्यपादनें उस जिनवल्लभकों वाचना देणेके लिये प्रवृत्ति करी, जैसे थोडे हि कालमें सिद्धान्त वाचना पूरीहूइ, तथा श्रीगुरुमहाराजके एक पूर्वपरिचितमित्र ज्योतिपीथा, उसनें श्रीगुरुमहाजकों कहा-था कि जो आपके कोई योग्यशिष्य होवे, तब उस शिष्यको मेरेको सोंपणा, जिस्सें उस शिष्यको समग्र ज्योतिष समर्प्पण करुंगा इसलिये श्रीसिद्धान्तोंकी वाचनापूर्ण होनेपर पूज्यश्रीने श्रीजिनवल्लभगणिको ज्योतिपीकों सोंपे उसज्योतिपिनेभी जि-

नवल्लभगणिके लिये सर्वज्योतिषविद्या परिज्ञानसहित अर्थात् रहस्यसहितदीवी, इसतरे सिद्धान्तवाचनावगेरे ग्रहण पूर्वक श्रेष्ठ अनुष्ठानवर्द्धमानपरिणामसें श्रीसिद्धान्तोक्त क्रिया करता हूवा, और अछीतरेप्राप्तक्रियाहैस्फूर्तिमानज्योतिषजिसने ऐसा, जिनवल्लभगणि अपणे गुरुमहाराजके पासमे जानेके लिये आचार्य श्रीका आज्ञा वचन चाहता है इस अवसरमे पूज्यपाद श्रीअभयदेवसूरिजीनें कहा, हेवत्स सिद्धान्तोक्तसाध्वाचारसर्वतुमने जाणा है इसलिये सिद्धान्तानुसार हि क्रियाउद्धारविधिकरके जैसे इस समय वर्त्तते हो वैसाहि करणा, वादमे श्रीजिनवल्लभगणिनें श्रीअभयदेवसूरिजीके चरणोंमे नमस्कार करके कहा जैसे श्रीपूज्यपादों कि आज्ञा है, वैसाहि निश्चयवर्तूंगा, औरप्रधानदिनमें आचार्यश्रीके पाससें चला और जिसमार्गसें आया उसी मार्गकरके फेर मरुकोटमें पहुचा, और श्रीगुरुजीके पास जातिसमयसिद्धान्तअनुसार मंदिरमे विधिलिखि, जिस विधिकरके अविधि मदिर भी मोक्षका साधन विधि चैत्य होवे, वह यह इहापर उत्सूत्रलोकक्रम है,

नच नच स्नात्रं रजन्यां सदा साधूनां ममताश्रयो,
नच नच स्त्रीप्रवेशो निशि जातिज्ञातिकदाग्रहो,
नच नच श्राद्धेपु ताम्बूलमित्याज्ञाऽत्रेयमनिश्रिते
विधिकृते श्रीजैनचैत्यालये ॥ १ ॥

अर्थः—इहा निश्रारहित विधिसें वना हूवा इस श्रीजैनमन्दिरमें यह आज्ञा है कि निरतर रात्रिमें स्नात्रपूजा शान्तिकपूजा शान्तिस्नात्र अष्टोत्तरी पचकल्याणकपूजा महोत्सव अंजनशलाका मन्दिर-

प्रतिष्ठा वेदीप्रतिष्ठा मूर्त्तिप्रतिष्ठा वलिकरणा दर्शनकरणा पूजा करणी नाटक गान भावनादिक नहिंजकरणा, साधुवोंके ममत्वका स्थान भी यह जिनमन्दिर नहिं है, रात्रिमें स्त्रियोंका प्रवेश भी नहिं है, पिता माता पुत्र पौत्र वगेरे घरसंबंधि पंचायति जातिकदाग्रह कहा जावे है, सासु शुसरा वगेरे ज्ञातिकी पंचायति ज्ञातिकदाग्रह कहाजावे है यह जातिकदाग्रह और ज्ञातिकदाग्रह भी जिस जैनमंदिरमे नहिं होवे है

और जैनमंदिरमें पुरुषोंके स्त्रियोंका संघट्टा (स्पर्श) पूजा प्रभावना वगेरे धर्मकार्य रात्रिमें नहिं होवे रागादि हेतु होणेसें, श्रावकोंको ताम्बूलका देना और ताम्बूल लेना और ताम्बूल वगेरेका खाना नहिं होवे है

और निरंतर रात्रिमें पुरुषोंका प्रवेश विधि चैत्यमें नहिं होवे और तरुण स्त्री मूलनायक प्रतिमाकी पूजा नहिं करे, और १० और ८४ आशातना टालनेपूर्वक पांच अभिगमनसाचवणेपूर्वक दिवसमें शास्त्रनियमानुसार सर्वसंघ इस विधि चैत्यमें पूजा सामायिक व्याख्यान प्रभावना वगेरे यथायोग्य धर्मकार्य कर सक्ते है ॥ १ ॥ इत्यादि विधि इस जैनमंदिरमें करणा उचित है, जिस्सें सर्व चैत्यवंदनादि अनुष्ठान करा हूवा मुक्तिके लिये होवे, बादमे यह जिनवल्लभगणि वहासे अपणे गुरुमहाराजके पास जाणेके लिये प्रवृत्तमान हूवे क्रमसें चलते हूवे माडयड ग्राममें पहूंचे, आसिका नगरीगढसें तीनकोश उरली तर्फरहे, अर्थात् नगरीमें नहिं गये तीन कोश दूर रहे, उसी ग्राममें श्रीगुरुमहाराजसें मिलणेके लिये एक मनुष्यकों भेजा, उस पुरुषके हाथमें लेख

लिखकर दिया, उस लेखका यह भावार्थ है कि—यथा आपकी दयासें अपणे गुरुमहाराजके पासमें सर्वसिद्धान्तसंबंधि वाचना लेकर माइयड गाममें में आयाहूं, पूज्योंको मेरेपर प्रसाद करके इहांपर हि मेरेकों मिलणा, वादमें गुरुश्रीनें जाणा कि क्या कारण है जिस्सें जिनवल्लभगणिनें इसतरे पुरुषके साथ संदेसा भेजा है, और वह जिनवल्लभगणि खुद इहां पर नहिं आया, इसलिये जाणा जाता है कि इहां कोइ जरूर कारण है, इसतरे विचारके दूसरे दिन सर्व लोकोंके साथ आचार्य सामनें आया, जिनवल्लभगणि सामनें गया गुरु श्रीको नमस्कार करा गुरु श्रीने कुशलवृतान्त पुछा और जिनवल्लभ गणियें यथार्थ सर्व वात कही, और ब्राह्मण वगेरे लोकोंके समाधाननिमित्त ज्योतिषके वलसें कितनाक भूतभविष्यत्वर्तमानसंबंधि मेघवगेरेका स्वरूप इस प्रकारसें कहा कि जिस मेघादिस्वरूपको श्रवण करके गुरुकोभी आश्चर्य हूवा, भूतपूर्वकस्तद्वदुपचार, इति न्यायाद् गुरोरित्युक्तं, भूतकालका वर्तमानमें उपचारकरणेसें गुरुको भी आश्चर्य हूवा इत्यादि कहा, वादमें गुरुनें पुछा कि हे जिनवल्लभ तुं अपणे मठमे क्युं नहिं आया, वादजिनवल्लभ गणिने कहा, हे भगवन् श्रीसुगुरुके मुखसें जिनवचनरूपी अमृतको पीके, इस समय किसतरे दुर्गतिरूप कारागारमें अपणे आत्माके सघनवन्धनसदृश और विषवृक्षके सदृश चैत्यवासकुं सेवणेकी इच्छा करुं, वादमें गुरुनें कहा हे जिनवल्लभ मैंनें यहविचारा था कि जो तेरेकों अपणा पददेके तेरे संघपर अपणे गच्छसंबंधि मन्दिर श्रावक वगेरेका भार रखके, पीछे में सद्गुरुके पासमें वसतिमार्गअगीकारकरुंगा, वादमें जिन-

वल्लभ गणिने विकस्वरमान मुखकमलकरके कहा, हे भगवन् यह आपका कहेना बहुत हि उचित है,

और विवेकका यह हि फल है जो हेय पापादिक वस्तु है उसका त्याग करणा उपादेय अंगीकार करणे योग्य तप संजमादि जो अंगीकारकरणेमें आवे तो श्रेय है,

और यह शुभमार्ग अंगीकार करणेकी आपकी तीव्रतर इच्छा है तो अपणें साथ हि सुगुरुके पासमें चले, यह प्रत्युत्तर सुणके गुरुनें इसके सामने निश्वासा नांखके कहा कि गच्छादिव्यवस्था कियां विना हि चारित्र अगीकारणा, हे वत्स, ऐसी निस्पृहता हमारी नहिं है, जिस निस्पृहताकरके गच्छादि चिंता करणेमे समर्थपुरुष विना स्वगच्छ मन्दिर वाडी वगेरेकी चिंता छोडके सुगुरुके पासमें वसतिवास हम अंगीकार करें, इसलिये अवश्य वसतिवास तुमकोहि अंगीकार करना, यह आज्ञावचनश्रवण करके श्रीजिनवल्लभगणिजीनें कहा, हे भगवन् ऐसा हि होवो, वादमें गुरु पीछा पलटके आसिकानगरीमे पहुंचा, वाद में श्रीजिनवल्लभगणि भी भूतपूर्वगुरुकीआज्ञासें श्रीअणहिल पुर पाटणकी तर्फ विहारकिया, और क्रमसें विहार करते हूवे वाचनाचार्य श्रीजिनवल्लभगणि अणहिलपुरपाटणपधारे और श्रीमान् पूज्यपाद अभयदेवसूरिजीके चरणकमलोंमें बहुत हि आदरसें विधिपूर्वकवन्दनाकरनेपूर्वक दोनुंचरणकमलोंको स्पर्शकर अपणे जन्मको सफलकरा, तब श्रीमान्अभयदेवसूरिजीको आपणे मनमें पूर्णसमाधान याने पूर्णविश्वास, उत्पन्न हूवा और विचारा कि जैसे इसकी हमनें परीक्षा करी, वैसाहि यह हूवा,

वादमे श्रीमान्‌अभयदेवसूरिजी अपणे मनमें जाणते हूवे भी किसीकोभी कहे नहिं, और उस समय आपणे मनमें विचारते हूवे कि यह जिनवल्लभगणि हि हमारे पद योग्यहै, परंतु चैत्यवासी आचार्यका शिष्य है, इसलिये गच्छके संमत नहिं होगा यह विचारके गच्छस्थितिवास्ते गच्छधारक श्रीवर्द्धमानसूरिजीको अपणे पट्टमें स्थापे, और श्रीजिनवल्लभगणिजीको श्रीमान् अभयदेवसूरिजीनें अपणे संबंधि उपसपद दीनी, अर्थात् अपणे शिष्यत्वपणे स्वीकार करणेपूर्वक वेपचारित्र श्रुतस्वाम्नाय योगादिक सातिशय ज्योतिप गुप्तरहस्य वगेरे सर्व प्रकारकी उपसम्पद अपणे नामसें अपणे हाथसें दीया और सूरिमन्त्राम्नाय गुप्तरहस्य और गणि वाचनाचार्य आदि पदवी और बहुमानपूर्वक सर्वगुणकलापरिपूर्ण भावसें अपणा मुख्य शिष्य पट्टयोग्य समजकर किसी प्रकारका अन्तरभाव नहिं रखकर योग्यगुणपात्र बनाये, और गुणरत्न सत्वसमूहके आधारभूत क्रमसें भये, और गच्छके कारणसें उसतरे होनेपरभी अवसरकी अपेक्षा करते हूवे, कालक्षेप करा और आचार्यश्री मनमें विचारें कि योग्य अवसर आवे तो वाचनाचार्य श्रीजिनवल्लभगणिको मुख्याचार्य पद देनेमे आवे, इस तरे विचार करते रहै, वादमे अपणा स्वल्पायु होनेसें और योग्य अवसर नहिं आणेसें अपणे हाथसें मुख्याचार्य पद नहिं दे सके सामान्य तरिके गच्छस्थितिनिर्वाहके लिये अपणे पदमे श्रीवर्द्धमानसूरिजीको मुकरर करके श्रीमान् अभयदेवसूरिजी अपणे हाथसें वेपश्रुत चारित्ररूप उपसम्पद देके कहा कि—आजसें लेके हमारी आज्ञामें रहेना, सर्वत्र हमारी आज्ञासें हि तुमको प्रवर्त्तना, ऐसा कहा, और

एकान्तमें श्रीजिनप्रसन्नचन्द्रसूरिजीको कहा, मेरे पट्टमे श्रेष्ठलग्नमें श्रीजिनवल्लभगणिको स्थापणा, इसतरे मुक्तिनगरकी साक्षात् सोपानपंक्ति होवे वैसी श्रीनवांगवृत्तिका भव्य लोकोंको उपदेश दे के, सिद्धान्तमें कहे हूवे, विधिसें अणशणआराधना संलेखना करके समाधिसें पंचपरमेष्ठीनमस्कारका स्मरण करते हूवे श्रीमान् अभयदेवसूरिजी वि० सं० ११६७ में कवडवंजनगरमें स्वर्गनिवासी हूवे, और श्रीप्रसन्नचन्द्रसूरिजीकोंभी श्रीअभयदेवसूरिजीके पट्टमें मुख्याचार्यपद कहेप्रमाणे देनेका अवसरनहिं मिला, वादमें श्रीजिनप्रसन्नचन्द्रसूरिजीनेंभी अपणें आयुके अन्तसमय श्रीदेवभद्रसूरिजीको वीनति करी, यह पूर्वोक्त सुगुरुका उपदेश आपको अवश्यहि सफल करणा, वह सुगुरुका उपदेश करणेकु में समर्थ नहिं हूवा हूं, तव श्रीदेवभद्रसूरिजीनेंश्रीप्रसन्नचन्द्रसूरिजीका वचनअगीकारकरा, वर्त्तमानयोगकरके इसतरे हि करेंगें, आपको मनमे समाधिरखना, किसीतरेकीचिंताकरणीनहिं, इसतरें प्रसन्नचन्द्रसूरिजीको श्रीदेवभद्रसूरिजीनेंकहा, और श्रीजिनवल्लभगणिवाचनाचार्यभी कितनाकालपर्यंत श्रीअणहिलपुरपाटनभूमिमें विचरके, इहा गुजरातदेशमें किसीकोभी वैसा विशेप वोध करणेकुं नहिं समर्थ होवे है, जिस्सें मनमें समाधान उत्पन्न होवे, ऐसा मनमें विचारके, तीनठाणासे आगमविधि करके और श्रेष्ठशकुन करके भव्य जनमनरूपी क्षेत्रभूमिकामें भगवानकी कहीहुई विधिकरके धर्मवीजवाणेके लिये, श्रीमेवाड आदि देशोंमें विहार करते हूवे, उस वक्त मेवाडआदि सवहि देश प्रायकर चैत्यवासीआचार्योंकरके व्याप्तथें, वहा सव हि लोक

चैत्यवासी आचार्यों करके वासितवर्ने है, किंबहुना, वैसा-
देशान्तरमें रहे हुवे, अनेकग्रामनगरादिकोंमे विहारकरतेहूवे,
चितोडपर्वतके किलेमे पहोचे, परन्तु चितोडनगरसंबंधि सबहि
लोक क्षुद्र चैत्यवासीयों करके भावितहै, तोभी अयुक्त उपसर्ग-
परिसहादिक कुछभी करणेकुं नहिं समर्थभये, श्रीअणहिलपुर
पाटणमें विचरते हूवे श्रीगुरूमहाराजकी बहुतहि बडी प्रसिद्धिकीर्त्ति
प्रभाव सुणनेसेंहि हतप्रभाव हूवे, बल पराक्रम धैर्यादिक जिणोंका
नष्ट हूवा, इसलिये कुछभी अयुक्तव्यवहारकरणेके लिये समर्थ
नहि हूवे, बादमें वाचनाचार्य श्रीजिनवल्लभगणिजीनें वहां चितोड-
नगरीका लोकोंके पासमे रहेणेके लिये स्थान मागा, तब चितोड-
नगरीके श्रावकोंनें कहा हे भगवन् इहापर रहणेके लिये कोइ स्थान
नहि है परतु एकचंडिकादेवीका मठ है, जो वहां आप
रहोतो हाजरहै, तब वाचनाचार्यश्रीजिनवल्लभगणिजीनें शुद्धज्ञानो-
पयोगसें जाणाकि, दुष्टआशयसें यहकहेतेंहैं, तथापि वहां
रहेणेसेभी श्रीदेवगुरुके प्रसादसे कल्याणहोगा, यह विचारके
उण श्रावकोंसें कहा, तुमारी आज्ञा होवे तो वहां चंडिकादेवीके
मठमे हमरहें, यह सुणकर उण क्षुद्राशयवाले श्रावकोंनें कहा
कि-हमारे अतिशय कर सम्मत है, आप चडिकादेवीके मठमे रहो,
तब वाचनाचार्य श्रीजिनवल्लभगणिजी श्रीदेवगुरूका अछी तरह
स्मरण करके श्रीचंडिकादेवीकी स्तुति प्रदान पूर्वक अवग्रहलेके,
चंडिकादेवीके मठमे रहे, श्रीमतीचडिकादेवी वाचनाचार्य श्रीजिन-
वल्लभगणिजीके ज्ञान ध्यान तप सजम वगेरेह सदनुष्ठान
करके प्रसन्न हुई दुष्ट प्रयुक्त छल छिद्र मंत्र तंत्र यंत्र वसीकरणादि

उपसर्ग प्रमादरहित उपयोगसहित निरन्तर रक्षा करें, श्रीजिनवल्लभगणिवाचनाचार्य कैसेसमस्तविद्याके निधानहै सो देखातें है, सर्वसिद्धान्त जाणनेवाले, सूत्रपाठ और अर्थसें, कंठ है पाणिनी आदि आठ व्याकरण जिनोकों, और मेघदूत आदि सर्व महाकाव्य कंठ हैं, रुद्रट उदभट दंडि वामनभामहादि अलंकार ८४ नाटक सर्व ज्योतिष शास्त्र, जयदेवादि सर्व छंद ग्रंथ और जिनेन्द्रमतकी विशेषकरके स्थापना करनेवाले, श्रीसिद्धसेनाचार्य श्रीहरिभद्राचार्य श्रीअभयदेवाचार्य कृत सम्मति तर्क अनेकान्तजय पताकादि तर्क शास्त्र और ८४ हज़ार स्याद्वादरतनाकर प्रमाण लक्ष्मा प्रमाणरहस्य शब्दलक्ष्मादि ग्रंथोंकों अपणे नामसुताबिक जाणनेवाले और कन्दली किरणावली न्यायशंकर नंदन कमलशीलादि परदर्शनसंबंधि तर्कादि शास्त्रोंमें बहुतहि विचक्षण भयेहैं,

इसका यह भावार्थ हूवा कि—इग्यारमी सदीमे बारमी शदीके आरंभसमय जो प्राचीन अर्वाचीन स्वदर्शनसंबंधि पंचांगी सहित सर्व जैन सिद्धान्त और स्वदर्शनसंबंधि सर्वव्याकरण न्यायकाव्य कोश छंद साहित्य अलंकार ज्योतिष वैद्यक प्रकरण चरित्र रास कथा चम्पू नाटकादि सर्व शास्त्र अपणे नाम सदृशउपस्थित किये हुवेहै, और परदर्शनसंबंधि अनेकमताश्रित कपिल वैदिक जैमिनी गौतम कणाद बौद्ध शैव वेदांतिक वैष्णवादि मताश्रित मूलसिद्धान्त रहस्य सहित और अन्यदर्शनसंबंधि सर्व व्याकरण न्याय काव्य कोश छंद साहित्य अलंकार ज्योतिष वैद्यक वेदस्मृति पुराण इतिहास कथा चम्पू नाटकादि गद्य पद्यात्मक सर्वशास्त्र अपणे नामसुताबिक जानते हैं और पुरुषसंबंधि सर्व

गुणकलामें बहुतहि विचक्षण हैं इसलिये चउदहप्रकारकी विद्याके पारगामी है, और उसवक्तमें ऐसा कोइ शास्त्र या गुण कला नहिंथा जो कि श्रीजिनवल्लभगणिवाचनाचार्य अपणे बुद्धिके बलसें नहि जाना या नहि सीखा और सर्वशास्त्र गुणा कलाके भंडार और सर्वविद्याके पारगामी हुवे और शंकादिदूषणरहित सिडसठसम्यक्तगुणसहितहोनेसे सर्वोत्कृष्टसम्यक्तगुणसे भूषितहै आत्माजिणोका ऐसे, और स्वसमय परसमयके सर्वप्रकारसें जाणकार होणेसे समयानुसार सर्वोत्कृष्टज्ञानप्रधान चरण करण गुण प्रधान, तप संजम प्रधान, ध्यान प्रधान, समिति गुप्ति प्रधान, क्षमा मार्दव आर्यव मुक्ति सत्य शौच अकिंचन ब्रह्मचर्यप्रधान, लाघवप्रधान, सज्झायप्रधान, दानप्रधान, भावप्रधान, योगप्रधान, मन्त्र यन्त्र तंत्रप्रधान, आयुक्त सर्वानुयोग प्रधान, घोरगुणी घोरब्रह्मचर्यवासी घोरतपस्वी, दिप्ततपस्वी तप्ततपस्वी महातपस्वी कुलसम्पन्न जातिसम्पन्न बलसम्पन्न रूपसम्पन्न विनयसम्पन्न गुणसम्पन्न धृतिसम्पन्न संघयणसम्पन्न संस्थानसम्पन्न प्रतिरूपतेजस्वी युगप्रधानागम मधुरवचन गंभीर उपदेशतत्पर अपरिश्रावी सोम्यप्रकृति शान्तगुण सग्रहशील अभिग्रहमति अनेकप्रकारका अभिग्रह करणेवाले, ओर कलहादि नहि करणेवाले, विकथादि नहि करणेवाले १८ पापस्थानमे द्रव्य भावसें कहाभि प्रवृत्ति नहिं करणेवाले सत्तावीस मुनिगुणविभूपित पचीस उपाध्यायगुणे विराजमान अकथक अचपल प्रशान्तहृदय इत्यादि सद्भूत गुणशतशः परिकलित और सर्वोत्कृष्ट सम्यक्दर्शन ज्ञान चारित्र तपसंजमवीर्यादिक जिणोंका ऐसे, ओर श्रीहर्ष भारवि माघ कालिदासादि जो लोकमें

बहुतहि श्रेष्ठ उच्च कोटिके विद्वान और कवि हूवे हैं, वो भी जिणो-के प्रत्यक्ष सन्मुख शिष्यत्व भावकों प्राप्त होवें ऐसे, और विशेषसें इन्द्र शुक्राचार्य सुरगुरु आदिदेवभि श्रुतसमुद्रके विषयमें जिणोंके सामने अल्पबुद्धिवाले होते है, और गौतम सुधर्म जम्बुप्रभवादि अवतार, और " तित्थरसमो सूरि जो सम्मं जिणमयं पया सेइत्ति वचनात् " तित्थंकर समान श्रुतसमुद्रके पारंगामी, कलिकालसर्वज्ञ प्राकृतके अंतिम महाकवि इस लिये प्रधान ज्ञान शक्तिसें और महाकवित्व शक्तिसें अर्थात् महाकवित्वकी प्रधान सुगंधिसें, श्रीजिनवल्लभगणिवाचनाचार्य श्रीचित्रकूट नगरमें सर्वत्र प्रकर्षपणें प्रसिद्ध होते हूवे ' बादमें सर्वपरदर्शनवाले ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र ४ वर्णवाले लोक आणे शरु हूवे, और जिस जिसकुं जिस जिस शास्त्रविषयमें संशय उत्पन्न होवे, वो सबहि लोक उस उस शास्त्रविषयी संदेहकुं विनयसहितभक्तिपूर्वक पूछे श्रीजिनवल्लभगणिभी सूर्यकी तरह सर्वत्र भव्योके अंतःकरणोंमें विशिष्ट उपदेशद्वारा प्रवेश करके सर्व संदेहरूप अंधकारकुं नाश करते भये, चित्रकूटनगरके श्रावक भी धीरे धीरे थोडे थोडे आणे लगे, बादमें श्रावकोंने सत्यार्थ आगमवाणी सुणके, आगम अनुसारे सत्य क्रिया भी देखके, बहुतसें श्रावकोनें और अन्यदर्शनवाले ४ वर्णके लोकोंनें अपणें निजगुरुपणें श्रीजिनवल्लभ गणिवाचनाचा-र्यकों स्वीकारकरे और साधारण सुदर्शन सुमति पल्हक वीरक मानदेव धंधक सोमिलक वीरदेव आदि श्रावकोंनें सादर सतोष विनय बहुमान भक्तिसहित विधिपूर्वक समाधि सम्यक्तसहित निजनि-जशक्ति अनुसार अणुव्रत, गुणव्रत, शिक्षाव्रत, रात्रिभोजनविरमणव्रत,

अभक्ष अनंतकाय विरमणव्रत सातव्यसनविरमण, श्रावकषट्कर्मनियम, यथाशक्ति आश्रव निरोध नियम, अनेक अभिग्रहकरण, नियम आदिव्रत नियमादिक संतोष पूर्वक ग्रहण किये, और श्रीजिनवल्लभगणिवाचनाचार्यजीकों निजगुरुपणें स्वीकार किये, ॥ १ ॥ और श्रीअभयदेवसूरिजी गुरुमहाराजके सदुपदेश करके श्रीजिनवल्लभगणिवाचनाचार्यजीकोसातिशायिअतीत अनागतादि ज्ञानसातिशायि ज्योतिष परिज्ञान वहुतहि विशेष था, इसलिये भगवान श्रीजिनवल्लभगणिवाचनाचार्यजीकेपासमें एक साधारण नामक श्रावकनें परिग्रह परिणामव्रत ग्रहण करणेकेलिये प्रवर्तमान हुवा, उतनें गुणगरिष्ठ या गुणविशिष्ठ श्रीजिनवल्लभ गणिवाचनाचार्यजीनें उस श्रावकसें कहा, हे साधारण कितना सर्व परिग्रहका प्रमाण करेगा, तव उस श्रावकनें कहा' हेभगवान मेरे वीशहजार प्रमाणे सर्व परिग्रहका प्रमाण रखणा है, शेष सर्व परिग्रहका त्याग करता हुं, पुत्रकलत्रादिककी गिणतिनहिं, उतनें निर्मलज्ञानदृष्टिवाले श्रीजिनवल्लभसूरिजी वोले कि हेश्रावक परिग्रहप्रमाणवढावो, वाद उस साधारण श्रावकनें परिग्रहप्रमाण वढाकर तीस हजार प्रमाणे करणें लगा, उतने फेर पूज्यश्री वोले, कि हे महानुभाव इससें भी वहुतर विचारो, तव साधारण श्रावकनें कहा, हे स्वामी मेरे घरसवधि सर्वसारवस्तुवोंका मोलगिणेपरभी पाचसो (५००) पुरा न होवे, तिसपरभी आप श्रीके वचनसे मेने सर्वपरिग्रह प्रमाण वढाकर ३० हजारपर रखाहै, उसपरभी आपश्रीनें कहाकि हे महानुभाव इससेभी जादा प्रमाण वढावो, एसा आप श्री फरमाते हैं तो इससे जादा कहांसे मेरे अधिक तर द्रव्य (धन) की प्राप्ति होगी.

वाद सातिशायि ज्ञानशाली भगवान् श्रीजिनवल्लभगणिवाचनाचार्य बोले, सर्व साधर्मियोंमें सर्व साधारण स्थितिवाले, हे साधारण श्रावक पुण्यसमूहके क्या असाध्य है, अतुलागणना (प्रमाणरहित गिणति) मतकर, केवल चणामात्र वेचनेवाले पुरुषभी अगण्य धनके स्वामी होजाते हैं, ऐसा अभिप्राय सहित गुरुमहाराजके वनचसुनके संदेह रहित होकर मनमें विचारा कि कुछने कुछ धनादिककि प्राप्ति जरूर मेरे होगी, और योग क्षेमरूप कल्याण जरूर मेरे होवेगा,

यह साधारण श्रावक पूर्वोक्त मनमें विचारके वादमें मुख विकाश करके साधारण श्रावकनें कहा, जो ऐसा है तो हे भगवान् मेरे एक लाख प्रमाणे सर्व परिग्रहका प्रमाण होवो, तब श्रीगुरुमहाराजनें साधारण श्रावकों सर्वपरिग्रहपरिमाणव्रत उच्चराया, और परिग्रह प्रमाणव्रत ग्रहणकियां वाद, श्रीसद्गुरुमहाराजके चरण कमलोंकी सेवासे, अशुभअन्तरायकर्मकाक्षयोपशमहोनेसें प्रतिदिनमें प्रवर्द्धमानसंपदावाला हुवा, विशेषकरके श्रीगुर्वाज्ञामें प्रवृत्ति करता हुवा, वह साधारण श्रावक संपूर्ण श्रीसंघके हरकोई कार्यमें सर्वश्रीसंघका मध्यस्थपणे कार्यकरणेमे तत्परहूवा, और सङ्घकादि श्रावकभी साधारण नामा श्रावककी तरह सर्वत्र हरेकधर्मकार्योंमें श्रीजिनवल्लभगणिवाचनाचार्यजीकी आज्ञा करकेहि प्रवर्त्तना शुरुकरा, वाद तिस चित्रकूटनगरमें श्रीजिनवल्लभगणिवाचनाचार्यजीनें चतुर्मासकसंबंधि नवमाकल्पकरा और क्रमसें पचास दिनमे संवत्सरीप्रतिक्रमणकियाके वादमे आश्विन मास आया तब आसोजवदि तेरसका श्रीमहावीर देवका गर्भापहार कल्याणक आया सूत्रसिद्ध जाणके, और चैत्यवासीयों करके तिरो-

हित किया हूया जाणके, सर्व सभा समक्ष श्रावकोंको श्रीजिनवल्लभ गणिवाचनाचार्यजीनें कहा, हेश्रावकजनो आज श्रीमहावीरदेवका दूसरा गर्भापहार कल्याणक है, यह गर्भापहार कल्याणकक्रम संख्यामें दूसरा कहाजावे है, और यह गर्भापहार कल्याणकसूत्र सिद्ध है, तथाहि "पंचहत्थुत्तरे होत्था साइणा परिनिव्वुडे" इनहि प्रगट अक्षरों करकेहि सिद्धान्तमें कहनेंसे, और दूसरा वैसा कोइभी विधिचैत्य ईहापर नहि हैं, ईसलियेहि चैत्यवासीयोंके चैत्यमे जाके, जो आज देव वांदनेमें आवे तो अच्छाहे बाद श्रीगुरुमहाराजके मुखकमलसे निकले हूवे वचनोंको आराधन करणेवाले श्रावकोंनें कहा, हेभगवन् जो आपके सम्मत है वहहि हम करणेकु तइयार है, बादमे सर्व पौषहवाले वगैरह श्रावक लोक अति निर्मल शरीर जिनोंका और निर्मल वस्त्र जिनोंका और ग्रहण कियाहै निर्मल देवपूजाका उपकरण जिनोनें ऐसे श्रीगुरुमहाराजके साथ मन्दिरमे जाणेके लिये प्रवर्त्तमान हूवे, बादमे श्रीगुरुमहाराजकोश्रावकसमुदायके साथआतेहूवे देखके, चैत्यवासीनीसाध्वीनेकिसी मनुष्यकोपूछा कि आज इन वसतिवासीयोंकेक्याविशेषपर्वहै, जिससे यहबहुतसे गुरु श्रावक मिलकर जिनमन्दिरजारहे हैं, उतनेकिसीएकमनुष्यने उस चैत्यवासीनी साध्वीकों कहा, सामान्य गणनामें छट्ठा, और क्रमसंख्यामे दूसरा गर्भापहार नामकल्याणक करणेके लिये यहजारहेहैं, अर्थात् चैत्यवासीयोंकरकेतिरोहितकिया हुवा और सूत्र सिद्धवीरगर्भापहारकल्याणकआजहै इसलिये कल्याणकनिमित्तदेव वन्दनाकरणेकोंकल्याणकादिबहुमान निमित्त यह जारहेहैं, बाद तिसचैत्यवासीनी

साध्वीनें वीर गर्भापहार कल्याणक, कल्याणकतरीकेरुनीभीमेनें मेरीउंवरमें नकीया नसुणा नदेखा,

सुविहितमुनीनांदर्शनाभावात्,
चैत्यवासिनांकल्याणकतयानिषेधात्,

सुविहितमुनियोंके दर्शनके अभावसें, चैत्यवासीयोंके तो यह गर्भापहार कल्याणक रूपता करके निषेध करणेंसें, इसलिये तिस चैत्यवासनी आर्यानें अपणें मनमें विचारा कि यहां चित्रकूटनगरमें हमारी प्रवलता विशेष होनेपर पहिले कोइभी सुविहित मार्गवाले श्वेताम्बराचार्यनें आयके वीरगर्भापहारकल्याणकादिशुद्धप्ररूपणा नहि करणेंपाये, और यहां रहके हमारे प्रतिकूल प्रगटपणें शुद्ध धर्मोपदेश सुविहित साधु श्रावकादि मार्गोपदेश वीर गर्भापहार कल्याणकादि शुद्धप्ररूपणारूपकार्य पहिले कीसीसुविहित आचार्यनें आयके नहिं करा और यह वीरगर्भापहारकल्याणक आराधन आदि धर्मकार्य हमारे मन्दिरमें हमारे प्रतिकूल प्रगटपणें कीसीनें ऐसा पहिले वर्त्ताव नहिं कीया, और इस समय (इस वखतमें) "एएजूअप्पहाणायरिआ सुद्धपरूवगा सुविहियमग्ग विहारिण वाऊ इव अप्पडिवद्धा सारय सलिलं व सुद्धहियया, चरणकरणोवजुत्ता भवेणएए संमुहेण कोवि पडिसेहिउं समागमिस्सइ सवेवि कायरा इचाइचितिऊ ण जेणकेणवि उवायेण अहं पडिसेहामि जहाण आम्हाणं परंपराणं ण हवइ लोवो तहासमायरामि" यह जिनवल्लभगणिआचनाचार्यजी वहुत वडे आडम्वरपूर्वक श्रावकादिसमुदायसाथ आयरहे हैं, और इनोंका

इहापरकोइभीविधिचैत्यहैनहि इसलिये यह जिनवल्लभगणि वाचनाचार्य श्रावकादि समुदाय साथ जगनाहिर रीतिसें आज यहां हमारे मन्दिरमें आकर पहिले पहेल कल्याणका आराधन करेंगें, और हमारी आचरणाविरुद्ध समंतव्यकों पोपण करेंगें, इस वजेसें इहांपर हमारी आचरणा आम्नायमे धक्का पहोंचायेगें, और लोकोमे हमारी हासी निंदा होगी इसवास्ते यह आज कल्याणकका आराधनकरणायुक्तनहि, परन्तु यह आचार्यविशेपश्रुतवानहै युगप्रधानआगमकोंजानतेंहै, और इस समय इहांपर इनोंकेमुताबिक दूसरा कोइभी आचार्यहै नहिं, और इससमय यह युगप्रधानआचार्य है, शुद्ध प्ररूपकहै, सुविहितमार्गमे चलनेवालेहै, वायुकेमुताबिकअप्रतिबद्ध विहार करणेवालें है, सरदऋतुके जलमुताबिक शुद्धहृदयवालें है, चरण करणमे विशेपउपयोगी है, अपने गुणोंसे इहांपर स्वदर्शन परदर्शनमें प्रसिद्धहुवे हैं, नगरवासी सर्व परदर्शनवाले ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य वगेरे लोक भ्रमरकी तरह गुणोंसे रंजित होकर निरतर सेवा करते हैं, परम भक्त हुवे है, हमारे श्रावक समुदायकोंभी सुविहितमार्गका उपदेश द्वारा भाग पाडकर बहुतसें हमारे भक्त श्रावकोंको अपणे भक्त करलिये हैं, बहुतसें हमारे श्रावक लोक स्वेच्छासें शुद्धप्ररूपक शुद्ध चारित्रिया जाणके तथा इनका शुद्धआचारदेखके इस समय इनके भक्त हुवे है, प्रायेकर आधे श्रावक तो हमारे इनके तरफ चले गये है सेस रहे हैं वेभी सायत न चले जावेगे इस हेतुसें इनकों अपनें मंदिरवगेरे धर्मस्थानोंमे नहि प्रवेशकरनेदेना यहहमारे

पक्षके विरोधि है, इनके परिचयसें हमारे पक्षकी हानी होवे है इनका परिचय आगमन वगेरे अछा नहिं है, इसलिये अपने मंदिर मठ वगेरेमें इनको इनोंकीविधिसें इनोकेमंतव्य प्रमाणे धार्मिक क्रिया नहिं करणे देना इस समय इनोका वहुत वडा प्रभाव पडे है, इस वजेसें इनोंके स्योभसें इनोंके सामनें हमारे पक्षवाले कोइभी इससमय निषेध करणेंके लियें नहिं आवेंगें, इस समय इनोके पक्षकी प्रचुर प्रवलता भइ हैं, हमारे पक्षवाले सर्व कायर हें, इत्यादि उस आर्यानें अपणें मनमें विचार करके स्त्री जाति होणेसें एकदम साहसअवलंवनकरके वोली के इस समय जिसतिसउपायकरकेमेंमनाकरुं, जिस्सें हमारीपरम्परा आचरणाका लोप न होवे, और लोकोमे हमारी निंदा हासीभी न होवे, वैसा वरताव करुं, वादमें वह आर्यामन्दिरके दरवजेमें आडी गिरके रही, अर्थात् मन्दिरके दरवाजेमें आडी मार्ग रोकणेके लिये सोगइ" वादमें मन्दिरकेदरवाजेपरआये हुवे आचार्यश्रीकों देखके आचार्यश्रीके प्रति पूर्वोक्त दुष्ट चित्तवाली आर्यानें कहा कि, जो आपश्री इस हमारे मन्दिरमे मेरा अपमान करके प्रवेश करेंगें, तो में अवश्य इहांपर मरुंगी मरुंगी, वैसा अप्रीतिका कारण जाणके देखके वादमे पूज्यश्री वहांसें पीछे लोटके अपणें स्थानपर आये, वादमे धर्मांतराय मिटानेके लिये और आचार्यश्रीकी आज्ञा आराधनेके लिये धर्मिष्ट परमभक्त श्रावकोनें कहा, हे भगवन् वहुतसें हमारे घर वडे वडे हैं, वास्ते कोइ घरके ऊपर मज्जलमे चउवीसमहाराजका चित्रितपट्टघरके देववंदनादि सर्वधर्मकार्यकरें, और गर्भापहार कल्याणककी आराधनाकी

जावेतो ठीकहै, आचार्यश्रीनें कहा अहोश्रावको यह धर्म-कार्य किया जाय इस समय क्या संदेह है, अर्थात् निसंदेह अवश्य करणीय यह धर्म कार्य है ऐसा निश्चय तुमजाणों, यह धर्मकार्य अवश्य आजहि करणेमे आवेगा, यह आचार्यश्रीका वचन श्रवण कर, बादमे आचार्यश्रीके साथ श्रावकादि संघनें विस्तार पूर्वक विधिसहित गर्भापहार कल्याणक आसोज वद १३ के रोज आराधन करा, इसलिये समाधान हुवा, दूसरे दिन गीतार्थ श्रावकोंनें विचार करा, वह यह है अविधि मार्गमे प्रवृत्ति करनेवालोंके साथ रहेनेसें, विधि मार्गके विरोधि पक्षवालोके सह संबध होनेंसें अथवा रखनेसें जिनोक्तविधिबरोबरकरणेकुं नहिं समर्थहैं इसलिये जो आचार्यश्रीके सम्मत होवे तो 'उपरितले च देवगृह द्वयं-कार्यते' ऊपरके मजलमें दोय जिनमन्दिर कराया जायतो ठीकहैं, और अपणे समाधि होवे, यह अपणा अभिप्राय आचार्यश्रीको निवे-दन करा, तब आचार्यश्रीभी बोले, यथा—

जिनभवन जिनबिम्बं, जिनपूजां जिनमतं यः कुर्यात् ।
तस्य नरामरशिवसुखफलानि करपल्लवस्थानि ॥ १ ॥

व्याख्या–जिनमन्दिर जिनप्रतिमा जिनपूजा जिनधर्मकु जो पुरुष करे, उसपुरुषके मनुष्यदेव मोक्षकासुखरूपफल हस्त-पल्लवमें रहे हुवे हैं, ॥ १ ॥ इस देशना करके श्रद्धा प्रधान श्रावकोंने जाणा कि जो हमारा विचार है वह श्रीगुरुमहाराजकों वांछितहिहै, यह लोकोंमें बात भइ के जैसे इन वाचनाचार्य जिनवल्लभगणिके भक्तश्रावकलोकदूसरा मन्दिरकरावेंगे, इस बातकुं सुणके, प्रहलादननामक श्रावकसें बडाचैत्यवासीश्रावकबहुदेव नाम सेठने श्रीजिनवल्लभगणि वाचनाचार्यजीकों सुणाणेके लिये

प्रह्लादनादि श्रावक समुदायप्रति कहां इये आठ मुंडेवाले दोय मन्दिर करावेगा, और राजके माननीक होगा, यह वात श्रीजिनवल्लभगणिजीनें सुणीं, दूसरे दिनमें बाहिर स्थंडिल भूमि जातां आचार्यश्रीकों मार्गमें चैत्यवासी श्रावक वहुदेवनाम सेठ मिला, तब आक्षेपसहितज्ञानदिवाकरश्रीजिनवल्लभगणि मिश्रनें कहा, हेभद्रवहुदेव गर्वनहिंकरणा, इन हमारे श्रावकोके अन्दरसें कोइकश्रावक धन समृद्धहोकर तुमारे कहे प्रमाणे कार्यकरणेवालाहोगा, और वह तेरेकुं वंधे हुवे कु छु डावेगा, वह कार्य वैसाहि हुवा, और आचार्यश्रीके प्रसादसें सज्जन प्रकृतिवाला साधारण नामश्रावक राजाके अधिकतर माननीयहुवा, और वह वहुदेवनामा सेठचैत्यवासीश्रावक राजासंवंधि किसी अपराधमें आनेपर, उस दुष्टमुखवाले सेठके ऊपर नरवर्मराजा नाराजहुवा, और उससेठकु उंठके साथ वांधा, उंठकी तरह विलाप करते हुवे सेठकुं राजपुरुष धारानगरीमें नरवर्मराजाके पास लातें हैं, इस अवसर पर धारानगरीमे कोइ कार्यके लिये सरलप्रकृतिवाला साधारणनामश्रावक सुविहित पक्षीय गयाहुवाथा, सर्वजगतके लिये समभावसें हितकारी प्रवृत्तिवालासज्जन साधारणनामा श्रावकनें राजपुरुषकों मनाकरके निष्कारण उस सेठका कष्ट हटाकर राजाकुं वीनति करके अगीकार करी है सज्जनोंकी चेष्टा जिसनें ऐसा श्रीजिनवल्लभाचार्यका भक्त साधारण नामश्रावकनें राजाका मनमनाकर अपराध आश्रित धन वगेरे देके, इसरांक वहुदेवसेठकुं वंधनसे छुडाया, और उत्साह सहित श्रावकोंनें दोयमन्दिरभी वनाना सरु किया,

और देव गुरुके प्रसादसें दोनुं मन्दिर तइयार भये, वहां मंदिरमें ऊपरके मजलमें श्रीपार्श्वजिनमंदिर और नीचेके मज्जलमे श्रीभव्योंके नेत्रोंको और मनको हरणेवाला अतिशय उंचाशिखर बद्ध तोरण सहित सोनेमयी दंडकलशोकी परपरा और प्रभामंडलसें खंडन करा है अत्यंत गाढअंधकार जिसनें ऐसा ५२ जिनालय श्रीमहावीर जिनका मंदिर कराया, बादमें श्रीजिनवल्लभगणि वाचनाचार्यजीनें विस्तारसें सर्व विधिपूर्वक बडे उछवकेसाथ प्रतिष्ठा करी

सर्वत्र प्रसिद्धि भइ, अहो येहि गुरुहैं येहि गुरुहै, अर्थात् श्रेष्ठ गुरुराज ऐसेहि होने चाहिये, त्यागी वैरागी सुविहित जैनाचार्य ऐसेहि होते है, इत्यादि प्रसिद्धि स्वदर्शन परदर्शनके लोकोंमें भइ और कोइ एक दिनके समय लोकोंमे इस प्रकारके सर्व शास्त्र-विशारद श्वेताम्बराचार्य आये है, इस प्रकारकी बडी प्रशंसाकुं सुणके, एक ब्राह्मण जोतिपी पंडितमानी श्रीजिनवल्लभगणि-वाचनाचार्यजीके पासमें आया, उसको बैठणेके लिये श्रावकोनें आसन दिया, इस ब्राह्मणको श्रीगुरुमहाराजनें पूछा कि हे भद्र आपका रहना किस ठिकाणे है, कौनसे शास्त्रमें तुमारा अभ्यास है, ब्राह्मण बोला रहनातो इहाहि है, अभ्यास तो व्याकरण काव्य नाटक अलंकार वगेरे सर्व शास्त्रोमें है, बादमे वाचनाचार्य-श्रीजिनवल्लभगणिजी बोले कि, होवो, विशेष परिचय कौनसे शास्त्रमे है, ब्राह्मणबोला कि विशेष परिचय जोतिष शास्त्रमे है, बादमे वाचनाचार्य श्रीजिनवल्लभगणिजी बोले कि, अछीतरे याद है, तब ब्राह्मणनें कहा, तुमारेकोंभी लग्नके विषयमे कुछभी क्या परिज्ञान है, तब वाचनाचार्य श्रीजिनवल्लभगणिजीने कहा कि,

होगा किंचित्, अर्थात् कुछपरिज्ञानहै, वाद ब्राह्मण आक्षेप-
सहित बोला कि, तो आप कहो, तव वाचनाचार्य श्रीजिनवल्लभ-
गणिजीभी उत्साहसहित हुवे थके बोले, कि हे विप्र कहो, कितने
लग्न कहुं, दश अथवा वीस लग्न कहुं, यह वचन सुणके उस
ब्राह्मणकों आश्चर्य हुवा, उतने दश--वीस संख्यक लग्नोंकुं जलदिसें
कहके, फेर आचार्यश्रीनें कहा, हे विप्र आकाशमंडलमें दोय
हाथ प्रमाणे वादल है, उसकों तुम देखतेहो, ब्राह्मण बोला कि
हे भगवन् देखताहुं, वाचनाचार्यश्रीनें कहा, हे विप्र कहो कितनें
प्रमाणे जल डालेगा, वादब्राह्मण नहिं जानता हुवा, शून्य नजरसें
दिशाकों देखता रहा है, उतनें आचार्यश्रीनें कहा, हे विप्र!
सुणो, दोय घडीवाद यह वादल दोय हाथ प्रमाणकाभी दोय
घडीके अन्दर अन्दर संपूर्ण आकाशमंडलकुं व्यापके, उतनी
वर्षात करेगा, जितने जलकर दोय भाजनपूरा भराजाय उतने-
प्रमाणे वर्षात होगा याने जलगिरेगा, वादमें वहांहि बेठा हुवा
उंचा आकाशकी तरफ मुख है जिसका ऐसा वह ब्राह्मणके सन्मुख
सर्व वेसाहि जलकावरसात हुवा, वादमे वह ब्राह्मण ललाटमें
दोनुं हाथकुं जोडके, अहो यह वडा आश्चर्य है, अहो ज्ञानं
अहो ज्ञानं, यहहि ज्ञान है यहहि ज्ञान है, अर्थात् इसीका नाम
सत्यज्ञान कहते है, इसतरह मुखसें कहता हुवा, मस्तकको धूणता
हुवा, पूज्य आचार्यश्रीके चरणोंमे पडा, और मुखमें कहेणे लगा
कि, जबतक मे इहांपर रहुगा तबतक निश्चे आपश्रीके चरण-
कमलोंमे नमस्कार करके, भोजन करुंगा, अभिमानसहित होणेकर
हे भगवन् मेने आपश्रीको इसतरहके ज्ञानी नहिं जाणेंथे, वाद

यह सर्वत्र प्रसिद्धि भइ, अहो जो यह श्वेताम्बराचार्यहै साति-शायि विशेषज्ञानी होवेहै, बहुरत्ना वसुंधराहै इति । और कोइ एकदिनके समय कभी वडगच्छीयश्रीमुनिचंद्रसूरिजीनें सिद्धान्तोंकी वाचना ग्रहण करणेके लिये, दो शिष्योको वाचनाचार्यश्रीजिनवल्लभगणिजीके पासमे भेजे, वाचनाचार्यश्रीजिनवल्लभगणिजीभि श्रीमुनिचंद्रसूरिसंबंधि उन दोनो शिष्योको संप्रदायगत सिद्धान्तोंकी प्रीतिपूर्वक वाचना देनी सरुकरी, और उन दोनों शिष्योंनेभि अपणे मनमे अशुभ चितवता, यह विचार किया, कि जो वाचनाचार्यश्रीजिनवल्लभगणिके श्रावकोंकु कीसी प्रकारसें अपणे ठगें, अर्थात् इणके ऊपरमे श्रद्धाहटाकर अपणे गुरुमहाराजके रागि बनाकर वादमे अपणे आचार्यश्रीमुनिचंद्रसूरिजीनें परम भक्त श्रावक करे, तो अच्छा होवे; ऐसी बुद्धि करके श्रीजिनवल्लभगणिजीके भक्तश्रावकोकुं रजितकरतेभये, और कभी अपणे गुरुके पासमे प्रच्छन्नवृत्तिसे भेजनेके लिये छाना लेख लिखा, उन दोनो शिष्योंनें, उस लेखकुं वाचनासंबंधिकाफीमे डालके वाचना ग्रहणकरणेंके लिये, वह दोनों शिष्य वसतिमें श्रीजिनवल्लभगणिजी वाचनाचार्यके पासमे आये, वह दोनो शिष्य वदनाकरके, वैठे, जितने वाचनेका पुस्तकखोला उतने नवीन लेख लिखा हुवा देखा, गुणविशिष्टमे मिश्र शब्द है, जिनवल्लभगणि मिश्रने उस लेखकुं ग्रहण किया, और उस लेखकु खोला वे दोनो शिष्यभी वाचनार्यजीके हाथमें पीछा लेख लेनेकु नहिं समर्थ हुवे, उतने उस लेखकों वाचनाचार्यश्रीजिनवल्लभगणिजीनें,

वांचा उस लेखमें यह लिखा हुवा था, कि जिनवल्लभगणेः केचिच्छ्राद्धास्ते वशंनीताः सन्ति, क्रमेण सर्वानपि वशीकरिष्यामः इति मनोवृत्तिरस्ति, जिनवल्लभगणिके भक्त कितनेक श्रावकोंको हमने अपणें वशमे करे हैं, और धीरे धीरे क्रम करके सवहिको हम अपणें वश करेंगें, यह हमारे मनकी धारणावर्ते है, और इहांपर ऊपरोक्त विषयके लिये वृत्तिकार लिखते हैं कि, अयं चार्थो विरुद्धत्वात् यद्यपि शास्त्रौपनिबधयोग्यो न भवति, तथापि चरितोपरोधादुक्तमिति, यह अर्थ (कार्य) विरुद्ध होणेसें जो कि शास्त्रमे लाणे योग्य नहिं है, और लेखके और शास्त्रके कोइ संबंध नहि है, तोभी चरित्तानुवादके उपरोधसें कहा है ऐसा जाणना, वादमें श्रीजिनवल्लभगणिजीने, लेखका दो खंड करके कहा एक श्लोक सो यह है,

आसीज्जनः कृतघ्नः,
क्रियमाणघ्नस्तु सांप्रतं जातः।
इति मे मनसि वितर्को,
भविता लोकः कथं भविता ॥ १ ॥

व्याख्या—प्रथमहिसें लोक किये हूवे उपगारकु हणनेवाले थे, और वर्त्तमान कालमेभी किये हूवे कार्यको नहि मानते हैं ऐसा मेरे मनमे विचार भया है लोककी क्या दशा होगी क्या होनेवाला है ॥ १ ॥ ऐसा कहके वोले अहो ऐसें अशुभ अध्यवसायवाले तुम हो वाचनालेने सैसरा वादविमुखहोके स्वस्थान गये उहा न रहे चले गये, कदाचित् श्रीजिनवल्लभगणि वहिर्भूमी जाते थे तव कोइ विचक्षण पांडित्यकी प्रसिद्धी सुनके मार्गमे

मिला कोडराजाका वर्णन आश्चर्य समस्यापददिया वह यह है कु-रंगः किंभृगोमरकतमणिः किंकिमशनिः वादजिनवल्लभगणिने उसी-वक्त थोडा विचारके समस्या पूर्ण करी उसके आगे कही यथा—

चिरं चित्रोद्याने चरसि च मुखाब्जं पिवसि च,
क्षणादेणाक्षीणां विरहविषमोहं हरसि च ।
नृप त्वं मानाद्रिं दलयसि च किं कौतुककरः,
कुरंगः किं भृंगो मरकतमणिः किं किमशनिः ॥ १ ॥

अर्थ—कोइकवि कोडराजासे कहता है हेराजन् बहुतकालतक विचित्रउद्यानमे स्वेच्छासे विचरतेहो और मुखकमलका पान करतेहो और मृगाक्षियोंका विरह हि विषमोहकुं दूर करते हो और शत्रुलोकोंका मानरूप पर्वतकों तोडते हो यह आश्चर्यकारि क्या कुरग हो (मृग) भृंग २ (भ्रमर) हो क्या, मरकतमणि हो क्या ३ अथवा क्या वज्र हो ४ इति ऐसा सुनके अत्यंतप्रमुदित होके समस्या पूछनेवाला विचक्षण वोलाअहो लोकोमे जो प्रसिद्धि होति है वह निर्मूल नहि होति है यह निश्चय है हेभगवन् आपको जैसे सुने थे वैसेहि आपहैं ऐसी गुणोंकी स्तुतिकरके नमस्कार करके स्वस्थानगया वादगुरु उपाश्रय आये श्रावकोने पूच्छा हेप्रभो आज बहुतसमयकैसे लगा तव साथमे जो शिष्यगयाथा उसने सब बात कही सुनके सबश्रावकलोक बहुत हर्पित भये नेत्रकम-लसुगुरुमाहात्म्यसूर्यसें विकसित भये उस समय गणदेव नामका एकश्रावक सुवर्णकाअर्थीथा जिनवल्लभगणिके पास स्वर्णसिद्धि हैं ऐसासुणके चित्रकूटस्थगुरुकेपासमेंआके सेवाकरणा सरू किया

उसका भाव गणिजीने जाना योग्यजानके भवनिस्तारणी वैराग्य-उत्पन्न करणेवाली संसारसे निर्वेदजननी देशनादिवी जिस्से गणदेव श्रावक अत्यंतसंविग्न निस्पृही भया तव गणिश्रीने फरमाया हे भद्र क्या स्वर्णसिद्धिकहुं गणदेवने कहा हेभगवन् आपके चरणोंकी सेवा करतां विंशतिद्रव्य (वीश रुपिया) की पूंजीसे व्यापार करतां श्रावकधर्म पालन करुंगा जादाधनउपाधिका मूल है गणदेवमें धर्मवर्धनसामर्थ्यथी इसवास्ते लिखेहुवे द्वादशकुलकग्रंथविशेपदेके सिखाके वागडदेशमें भेजणेका उपदेशकरा वागडमें जाके सव वागडदेशके लोक जिनवल्लभगणिजीके रागी गणदेवश्रावकने किये, श्रीजिनवल्लभगणिजीके व्याख्यानमें सव विचक्षण लोक आते हैं वेठते हैं विशेपतः ब्राह्मण आते हैं अपणा अपणा विद्याविपयि संदेह निवर्त्तनकेवास्ते, अथ कदाचित् यह गाथा व्याख्यानमे आइ यथा

धिज्जाईण गिहीणय, पासत्थाईण वा वि दट्ठूणं ।
जस्स न मुज्झइदिट्ठी अमूढ दिट्ठिं तयं विंति ॥ १ ॥

अर्थ—ब्राह्मणजातीय और गृहस्थ और पासत्था वगेरेकों देखके जिसकिदृष्टि नहिं मोहप्राप्तहोवे वह अमूढदृष्टिपणा कहाजावे १, ऐसा निःशंकपणे व्याख्यान किया यथावस्थितपदार्थसुनके ब्राह्मणमनमें क्रोधातुरहोके वाहिरनिकलके एकट्ठेमिले तव विरोधिभि निकट भये ब्राह्मणोंने विचार किया श्रीजिनवल्लभगणिजीके साथ विवाद करके निरुत्तर करके प्रभाव नष्ट करेगें वाद यह स्वरूप श्रीजिनवल्लभगणिजीने जाना परंतु मनमे विलकुल भय नहिंभया, कहाजाताहै अपणाकियाभया सिंहनादसे

मधरीकृतकाननजिसने और उत्कट मदोद्धत हाथीयोंका कुंभस्थ-लरूपतट गिरानेमें बहुतकठोरनखमुखहै जिसका ऐसे सिंहकों कोइ-वक्त पवनसे प्रेरित वृक्षोंके अग्रभागसेगिरेपत्र मात्रके शब्दसें अत्यंतभागते भये भयाहे अंगभंगजिनोंका ऐसे मृगोंसे क्या भयहोताहै अपितु नहिं, व्याख्याकार श्रीसुमति गणि कहतेंहे हमारे गुरु श्रीजिनपतिसूरिजी कि इसी अर्थमे अन्योक्ति है यथा

खरनखशरकोटिस्फोटिताग्रेभकुंभ,
स्थलविगलितमुक्काराजिविभ्राजिताजिः ।
हरिरधिगरिमा किं तर्जितोऽ तर्जितो वा,
ऽनिलचलदलपातत्वंगदंगैः कुरंगैः ॥ १ ॥

अर्थ—कठोरनखरूपबाणोंकी कोटिके अग्रभागसें विदारण कियाहै कुंभस्थल जिमने उस्सें निकलीमोतियोंकिश्रेणिसें सोभित पृथ्वी करि है जिसने ऐसा हरिनाम केसरिसिंघ हे सो परवतके समीपकी भूमीमे वायुसें चलता पत्रोंके पातसें कूदते भये हरिणोंसे क्या तर्जित होता हे ॥ १ ॥ बाद गणिजीने एक श्लोक भोजपत्रमें लिखके कोइ विवेकीकों देके मिले भये ब्राह्मणोंमें मुख्यविप्रके पासभेजा तब उसब्राह्मणने श्लोककाअर्थ विचारके मनमे विचार किया वहवृत्तयह है

मर्यादाभंगभीतेरमृतरसभवा धैर्यगांभिर्ययोगा-
न्न क्षुभ्यते च तावन्नियमितसलिलाः सर्वदैते समुद्राः ।
आहोक्षोभ व्रजेयुः कचिदपि समये दैवयोगात्तदानी,
न क्षोणी नाद्रिचक्रं न च रविशशिनौ सर्वमेकार्णवं स्यात् १

व्याख्या–अमृतरसकी (पक्षे चंद्रकी) उत्पत्तिवाले और सदाकाल नियमित जलवाले एसे यह समुद्रों धैर्य और गांभीर्य गुणके योगसें और मर्यादाभंगके भयसें, प्रथम कविभी क्षोभ नहिं पाये हैं, और हा हा इति खेदे दैवयोगसें कोइ वखतमें कभी क्षोभपावे तो पृथ्वी न रहे पर्वतोंका समूह पण न रहे और तिससमय चंद्रसूर्य भि न रहे, परन्तु यह सर्व एक समुद्ररूप होवे, ? अहो हम लोक एकेक विद्याके धारणेवाले हैं, अर्थात् एकेक शास्त्रके विषयकों जानतें हैं, सामान्यपणें (अस्पष्टपणें) विशेष प्रगटतर स्पष्टतर स्पष्टतम एकेक शास्त्रके विषयको हम लोक नहिं जानते हैं, और यत् किंचित् सामान्यपणें हम लोक एकेक शास्त्रके विषयके अधिकारी हैं, परन्तु यह श्वेताम्बराचार्यश्रीजिनवल्लभसूरिजी तो सर्वविद्यानिधान हैं, अर्थात् चउद विद्याके पारंगामीहैं, स्वसिद्धान्त परसिद्धान्त षट्शास्त्रादिरहस्यसहित प्रगटतर स्पष्टतम विषयको जानतें हैं, अत यह श्वेताम्बराचार्य श्रीजिनवल्लभसूरिजी संपूर्ण सर्वशास्त्रके अधिकारी हैं, इसलिये कैसे इण श्रीमान् जिनवल्लभसूरिजीकेसाथ विवाद करणेकुं शक्तिमान् होवें, अर्थात् श्वेताम्बराचार्य श्रीमान् जिनवल्लभसूरिजीके साथ शास्त्रार्थ करणेकी शक्ति हमारी नहिहै, इनके साथ हम शास्त्रार्थ करणेको समर्थ नहि हैं, इसतरे वृद्ध ब्राह्मणनें विचारके, सबहि ब्राह्मणोंको कहा, अहो, अहो ब्राह्मणों तुम लोक हृदयचक्षु करके क्या नहि देखो हो, अर्थात् क्या नहि जानोहो, तुम लोक सबहि एकेक मलिन (अस्पष्टतर अस्पष्टतम) विद्याके धारणेवाले हो, और वह श्वेताम्बराचार्य

संपूर्ण मर्व विद्याओंका निधान है, अत इस श्वेताम्बराचार्यके साथ तुमारा विवाद केसा, अर्थात् सर्वविद्यापारगामी श्वेताम्बराचार्य श्रीमज्जिनवल्लभसूरिजी सर्वोत्कृष्ट अद्वितीय कवीश्वरके साथ अहो विद्वानो विवादकरणा तुमको न शोभे, यदि जो आत्मोन्नति यशःख्याति और विशेषगुणप्राप्तिकीचाहना हो तो तुमको विवाद करणा युक्त नहिं, इत्यादि वचनसमूहसें प्रतिबोधके सर्व ब्राह्मणोंकों शांत किये, बाद वे मर्व विद्वान् ब्राह्मण तिम वृद्धब्राह्मणके सुवच-नोंको सुणके, शान्तिभावको प्राप्तहोके, नम्र हुवेथके विनयसहित श्रीगुरुमहाराज श्रीजिनवल्लभ गणिजीके चरणकमलोंमे आकर गिरे, अपणा अपराध क्षमा करवाके विनयपूर्वक श्रीमज्जिनवल्लभसूरिजी-की सेवा करणे लगे, सर्व विद्वान् ब्राह्मणलोक, अन्यदा धारा-नगरीमे श्रीनरवर्मराजाकी राजसभामें देशान्तरसें दोय विदेशी पण्डित आये, और तिनविदेशीपण्डितोंने श्रीनरवर्मराजाके पण्डितोंके सामनें पूर्णकरणेकेलिये यहसमस्यापदकहा, जेसे कि, "कंठे कुठारः कमठे ठकार" इति समस्यापदं इस समस्या-पदकुं सुणके, बाद अलग अलग श्रीनरवर्मराजाके पण्डितोंनें अपणी अपणी बुद्धिअनुसार पूरण करी, परन्तु तिन विदेशी पण्डितोंका मन हर्षित न हूवा, मनभाफक समस्या पूरण न होनेसें, यह स्वरूप किसी पुरुषने जाणके, श्रीनरवर्मराजाके आगे कहा, हे देव इन दोनों विदेशीय पंडितोंकों आपके पंडितोंकी पूरणकरी भइ समस्या नहिं रुचे है, श्रीनरवर्म राजाने कहा, अहो पुरुष तुं कहे अब इससमय कोइ समस्या पूर्णके लिये दूसरा उपाय हैं, जिम उपाय करके इन दोनों विदेशी पंडितोंका मनरंजितहोवे, तब

किसी विवेकी पुरुषनें श्रीनरवर्मराजाके प्रति कहा, हे देव चितोड-मे श्वेताम्बराचार्य श्रीमज्जिनवल्लभगणिजी सर्वविद्यानिधान सुणनेंमें आवे है, यह वृत्तांत सुणके, श्रीनरवर्मराजानें उसीसमय चितोडके प्रति दोय ऊंठ शीघ्रगतिवाले लेखसहित भेजे, और सज्जनसाधारण नामक श्रावकके ऊपर लेखलिखा कि हेसज्जनसाधारण श्रावक तुमारे वहा विद्वज्जनचूडामणि सर्व विद्यानिधान श्रीमज्जिनवल्लभगणिजी सुणतें हैं, वास्ते यह लेख तुमारेकु लिखा है, मनोहर तुमारे गुरुमहाराजके पास विद्वानोंके मनको हरण करे इस प्रकारसें पूरण करवाके, "कंठे कुठारः कमठे ठकार" इति, यह समस्या पीछी जलदि आवे वैसा उपाय करणा परन्तु अन्यथा करणा नहिं, इस प्रकारका लेख तिन दोय ऊंठवाले पुरुषोंनें संध्यासमयमे सज्जन साधारण नामक श्रावकके हाथमे दीया, और वह श्रीनरवर्मराजा-संबंधि लेख साधुसाधारण श्रावकने प्रतिक्रमणवेलामें श्रीगुरुमहाराजके सामनें वाचा, उसलेखका परमार्थ श्रीमान्गणिमिश्रनें जाणा, और जाणनेंके वाद प्रतिक्रमण करणेके अनन्तरहि जलदिसें समस्या पूरण करी, जैसे कि—

"रे रे नृपाः श्रीनरवर्म भूप, प्रसादनाय क्रियतां नतांगैः॥
कंठे कुठारः कमठे ठकारश्चक्रे यदश्वोग्रखुराग्रघातैः" ॥१॥

व्याख्या—हे राजाओ जिस श्रीनरवर्मराजासंबंधि घोडोंके तीक्ष्ण खुरोंके अग्रभागके प्रहारोंसे, कमठमेठकार है उस प्रमाणे तुमलोकभी अपणे कंठपर (खधेपर) कुहाडा धारण करो श्रीनरवर्मराजाको प्रसन्न करणेके लिये नम्र होके शरीरकी रक्षा करणी

चाहते हो तो ॥ १ ॥ यह समस्यापूरणकरके साधारणश्रावककों पत्र दिया उसने उंठवालोसैंदिया राजाको साधारणश्रावकनें एक पत्र भि लिखके दिया तब लेखवाहक लेख लेके रात्रिहीमें शीघ्र धारानगरी पोहचै दूसरे दिन समस्या विदेशी विद्वानोंको सुनाई बहुत हर्षितभये मन प्रसन्न भया और बोले इस सभामें ऐसा विद्वान् कोइ नहि है जिसने यह समस्या पूरी होवे अपि तु और किसीने पूरण करि है समस्या पूरण करनेवाला अद्वितीय विद्वान् है ऐसैं प्रशंसा करते-भये उन विद्वानोंको वस्त्रादिकसै सत्कार करके राजाने विसर्जन कीये श्रीजिनवल्लभगणिवरभि स्वाध्याय ध्यानमें मग्न घोर ब्रह्मचर्यमे रहनेवाले उद्यत विहारी कितनेक दिनोंके बाद चित्रकूट (चितोड)से विहार कर धारानगरी पधारे भव्य कमलोंकों विकसित करते ऐसै तब राजाको किसीने कहा महाराज ? समस्यापूर्त्ति करणेवाले श्वेतांबर गणिवर इहा पधारे है तब अतिशायिविद्वत्तता गुणसैं आकर्षित हृदय ऐसे, राजा बोले अहो शीघ्र बोलावो तब राजपुरुषोंने सत्कारपूर्वकबुलाये जिनवल्लभगणि राजसभामे आये राजा आदरसहित नमस्कार करके हाथ जोडके आगे बैठा गणिवरभि राजाको धर्मलाभरूप आशीर्वाद देके अभिनंदित किया तब राजा बोले भो विद्वज्जनचूडामणे ? हे महाराज ? मेरे मनमें संतोषहोणेके वास्ते (३) तीन लाखद्रव्य अथवा तीन ग्राम लेवो तब श्रीजिनवल्लभगणिवाचनाचार्यबोले हे महाराज ? व्रतियोंको धनसंग्रहका निषेध हमारे शास्त्रमे विशेषकरके लिखा है ऐसा आगम भि है ।

"दोससयमूलजालं" पुव्वरिसि विवज्जियं जइ दंतं,
अत्थंवहसि अणत्थं, कीनस निरत्थं तंवयंचरसि ॥ १ ॥

द्रव्य सइकडो दोषोंका मूल है पापोपादानमें मुख्य हेतु हैं दुर्गतिका मुख्यकारण है साधुवोंके सर्वथा त्याग होवे है गृहस्थोंके परिग्रहप्रमाणव्रत होता है आचार्य उपदेश करते हैं पूर्वरिपियोंने मनाकिया धन जो रखे तो व्रतनिरर्थक होवे, महाराज ! हम श्रमण हैं धनकों हाथसेंभि नाहिं स्पर्शकरते हैं लेणा रखना कैसे होवे, राजा गणिवरके चरणोंमे मस्तक लगाके नमस्कार करके बोले भो महात्मन् ? निर्लोभियोंमें शिरोमणि आप हों तथापि तीन लाख द्रव्य लिये सिवाय मेरे मनमें समाधि न होवै इस वास्ते कृपा करके मेरे मनमें जेसे बने वेसा समाधिउत्पन्नकरणा आप जैसे उत्तम पुरुषोंका अनुग्रह है, तव श्रीगणिवर वोले जब आपका महान् आग्रह हे तव चित्रकूट नगरमें श्रावकोंने दो जिनमंदिर बनवाये हैं उहां पूजाके वास्ते दो लाख द्रव्य आपकी मंडिसें दिरादो, वाद राजा संतोष प्राप्त होके वोला शाश्वत दान रहेगा वाद उसीतरह द्रव्य दोलाख दिया तथा श्रीजिनवल्लभगणि विद्वान् परोपगारी धार्मिक कार्यकरणेमे तत्परहे ऐसी सर्वत्र प्रसिद्धि भई । वाद श्रीनागपुरनगरमें श्रावकोंने नवीनदेवघर और श्रीनेमिनाथस्वामीका नवीन विंव कराया है ओर उण श्रावकोंका यह अभिप्राय भया कि महाचारित्रिया श्रीजिनवल्लभगणिवरोंकों गुरुकरे और गणि श्रीके हाथसे प्रतिष्ठा करावेगे ऐसा विचारके वडे आदरमें सर्वकी सम्मतिमें महान्वहुमानमें श्रीजिनवल्लभगणिजीकों वीनति

करी बुलाये तब पूज्योंने विहार किया क्रमसें ग्रामानुग्राम विचरते नागपुर गये संघने प्रवेशोत्सव नहोत ठाठसें किया बाद शुभ लग्नमें जिनमंदिर ओर श्रीनेमिनाथ स्वामीके बिंबकी प्रतिष्ठा किया शासनो न्नति भइ गणिवरकी करिभइ प्रतिष्ठाके प्रभावसे नागपुरके श्रावक-लक्षाधिपति भये लोकोंमें श्रीजिनधर्मकी ख्याति बहुत भई श्रीनेमि-नाथस्वामीके रत्नोंका मुकुट तिलक कुंडल अंगद श्रीवत्स कंठमें मणि-रत्नकी माला हांसवगेरह आभरण कराये पूजा प्रभावना विशेष करते भये तथा राजपुरिके श्रावकोंकाभि वैसा अभिप्राय भया कि हमभि श्रीजिनवल्लभगणिजीको गुरुपणे अगीकार करे और जिनमंदिरब-नावे प्रतिमाजी नवीन भरावे प्रतिष्ठा करवावें बाद सब कि सम्म-तिसें वैसाहि कीया दोनु नगरोंके जिनमंदिरोंमें रात्रिको वलिबाकुल रखणाऔरदेणा रात्रिमें स्त्रीप्रवेश रात्रिमे प्रतिष्ठाका करणा इत्यादिक अविधिका निषेध करके मुक्तिमारगकी प्रवृत्तिसाधक विधिवाद लि-खके प्रवृत्ति कराई, बाद मरोटके श्रावकोंने श्रीगणिवरोंको वीनति करी तब श्रीजिनवल्लभगणिजी विहार करते विक्रमपुरमे होके मरोट पधारे श्रद्धावान श्रावकोंने भक्तिसे यतनास्थानादियुक्त स्वाध्याय-ध्यानादिकके भिन्न २ स्थान है जिसमे ऐसा उपाश्रय उतरनेकुं दिया वसतिमे रहे श्रावकोंने कहा भगवन्! आपके मुखकमलसें जिनवाणी-मकरंदका पानकरणेकी इच्छा है तब भगवान् बोले श्रावकोंको युक्त है शास्त्रश्रवणकरणा, "सोचा जाणइ कल्लाणं, सोचा जाणइ पावगं०" इत्यादि दशवेकालिक है सुणके कल्याण जाणते है सुणके अकल्याण जानते है धर्म अधर्म पुण्य पाप कर्त्तव्य अकर्त्तव्य जिनवचन

सुणनेसे जाना जाता है इनोंमें जो श्रेय होवे वह अंगीकार करणा। इसलिये उपदेशमाला प्रारंभकरें तब श्रावकोंने वीनति किया प्रभो? पहले सुना है पूज्य बोले और सुणनाउचित है शुभ दिनमें व्याख्यान करणा प्रारभ किया।

संवच्छर मुसभजिणो छ मासे वद्धमाण जिणचंदो।
इअविहरिया निरसणा जइज्जएओवमाणेणं ॥ १ ॥

अर्थ—रिषभदेवसामी १ वर्ष तप किया और वर्द्धमानस्वामीने ६मासी तपकरा निराहार विचरे इसी तरह मुनियोको तपमेयत्न करणा इस एकगाथाका व्याख्यानमे छमहिना व्यतीतभया तथापि श्रावकोंको वहोतसिद्धांतोंका उदाहरणरूपअमृतरससै तृप्ति नहिं भइ और कहने लगे श्रीभगवान् तीर्थंकरदेवहि ऐसा वचनामृतसै श्रोताजनोंके श्रवणकुं सुखउत्पन्नकरणेमें समर्थहोतेहैं सत्यहै आप श्रीतीर्थंकरसदृशहैं कहाभि है "तित्थयरसमोसूरि०" इत्यादि अन्यथा ऐसी अमृतवरसावणीवाणी इसतरहकीव्याख्यान लब्धि कहांसे होवै इस प्रकारसें अत्यंत संतुष्टमनश्रावक देशना सुनके होतेभये वहोतअनुमोदन करतेभये अपार हर्षप्राप्त भये अन्यदा चैत्यघरमें व्याख्यान वांचके वहुत श्रावकजिनोंके साथथे ऐसे गणिवर उपाश्रय आतेथे इस प्रस्तावमें मार्गमें एक पुरुष वहोत परिवारसे परिवरा हुवा स्त्रीयो गीत गातिहै घोडेपर सवार है पाणिग्रहणको जारहाहै पूज्यपादने देखा तबसंविग्नशिरोमणि ज्ञानदिवाकर संसारकी असारता विचारते ऐसै श्रीगणिवरने कहा अहो देखो देखोसंसारकी क्षणदृष्टनष्टता कैसीहै जिसकारणसें येस्त्रियां विकस्वरमानहे मुखारविंदजिनोका ऐसी गान करति जारहि है येहि

स्त्रियां वक्षस्थल (छाति) कूटती महाआक्रंदशब्दकरतिहि इमी मार्गसै पीछी आवेगी वाद पूज्य उपाश्रयगया उतने वह पाणिग्रहणकरणेवाला अपणे सासरे पोहचा ऊपरके मजलपरचढणे लगा उतने पादस्खलित भया अर्थात् पग डिगगया इस्सै नीचे घरटके ऊपर गिरा घरटके कीलेसैं पेटफटगया ओर उसीसमय देहत्याग करदिया तदनंतर वै स्त्रियो रोति भइ उसी मार्गसे पिछी आतिभइ देखी तब श्रावक लोक बोले अहो श्रीगुरुमाहाराजका ज्ञान कैसा त्रिकालविपयि है सब श्रावक लोक धर्ममे स्थिरभये ऐसै श्रावकोंकाधर्ममें स्थिर परिणाम उत्पन्न करके विहार करके और नागपुर गये श्रीजिनवल्लभगणिजीने उहां विशेषधर्मकी प्रवृत्ति करी इस अवसरमे श्रीदेवभद्राचार्य विहार क्रमसे करते करते श्रीअणहिल्लपत्तनमें आये उहा आके विचारकरा कि, श्रीप्रसन्नचंद्राचार्यजीने अतमसमय मेरेमै कहाथा कि तुम श्रीजिनवल्लभगणिको श्रीअभयदेवसूरिजीके पदमे स्थापन करणा, पट्टपर बैठाना वह प्रस्ताव अब वर्ते है ऐसा विचारके श्रीनागपुरमें जिनवल्लभगणिको विस्तारसैं पत्र लिखके भेजा पत्रमेंयहलिखा तुमको परिवारसहितश्रीचित्तोडतरफ विहार करणा ओर चित्रकूट जलदी पोहचना जिस्से हमभि आके विचाराहुवाकार्यकरें ऐसा पत्रपोहचणेसे गणिवरने नागपुरसैविहारकराचित्रकूट पोहचे श्रीदेवभद्राचार्यभिपरिवारसहितपत्तनसे विहारकरचित्रकूटआये पंडितसोमचंद्रमुनिकोभि पत्र लिखके बुलाया परतु नहि आसके वाद वडे आडंबरसें महान् विस्तारसैं श्रीदेवभद्राचार्यजीने श्रीअभयदेवाचार्यजीके पट्टपर श्रीजिनवल्लभगणिको-

बैठाये अर्थात् आचार्यपदमेंस्थापितकिये तब अनेकलोकयुग प्रधान-श्रीअभयदेवसूरिजीके भक्तश्रीजिनवल्लभसूरिजीकुं देखकेमहान्उत्सा-हसैधर्ममेंमोक्षमार्गमे प्रवर्त्तमान भये श्रीदेवभद्राचार्यादिकपद-स्थापनाकरके अपणेकुं कृतकृत्य मानता श्रीअणहिल्ल पाटणनगेरह-स्थानोमे विहारकरतेभये, श्रीजिनवल्लभसूरिजीने अपणे आयुपका प्रमाण जोतिषसैं गिना छ वरस हाल आयुप है ऐसा गणितसें आया तब विचार किया इतने कालमें बहोतभव्यलोकोंको प्रतिबोधकरेंगे इस प्रकारसे विचरते अछितरहसै ग्रामनगरादिकमें उपदेश करते भव्य प्राणियोंकों सन्मार्गमें प्रवर्तावते श्रीवीर-परमेश्वरके शासनको सोभित करते ६ छ मास व्यतिक्रांत भये तब अकसात् शरीरमे अस्वास्थ्य भया अर्थात् बेमारि भइ यह क्याहे ऐसा जितने विचारके ओर गणित करके विचारा उतने आंकविसरणहुवा जाना छ महिनोंके ठिकाने छ वरस आये तब श्रीपूज्योंने कहा इतनाहि आयुप है बाद निश्चय करके वह महापुरुप श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराज समस्तसंघके साथ खामणा करके मिछामिदुकडदेके आराधना करके सर्व जीवोंके साथ खामणा कर सर्वपापको आलोयपडिकमके च्यार सरण अंगीकार किया तीन दिनका अनशन याने संथारा करके इग्यारहसे सिडसठ (११६७) के सालमें कार्त्तिक वदि द्वादशी १२ को रात्रिके चोथे पहरमें पंचपरमेष्ठिनवकारका सरणकरते भये श्रीजिनवल्ल-भसूरीश्वरजी महाराज समाधिसें आयु पूर्णकरके चोथे देवलोक पधारे सुरसुख प्राप्त भये ऐसे महापुरुष प्राकृतके अद्वितीय कवि इस

भारतवर्षमें अंतिम भये परंतु उन महापुरुषोनें जो जो शास्त्र रचे सो परिचय लिखते हे निर्मल चारित्रके निधान मरुकोटमें सात वरस आते जाते एकंदर निवास करके सर्व आगम परिशीलित करके समस्त गछीयोंने अगीकार किये ऐसे पदार्थवर्णन द्रव्यानुयोग वगेरहके शास्त्ररचे सो लिखते हैं सूक्ष्मार्थसार १ सिद्धात सार २ विचार-सार ३ षडशीति ४ सार्धशतक कर्मग्रथ ५ पिंडविशुद्धि ६ पौषधविधि-प्रकरण ७ प्रतिक्रमणसमाचारी ८ संघपट्टक ९ धर्मशिक्षा १० द्वाद-शकुलक ११ प्रश्नोत्तरशतक १२ शृंगारशतक १३ नानाप्रकारका विचित्र चित्रकाव्यसार १४ सइकडो स्तुतिस्तोत्रवगेरह लघु अजित सांतिस्तोत्र प्रमुख वहुत प्रकरण चरित्र प्राकृतसंस्कृतरूप रचे वह। कीर्त्तिरूपपताका सकलपृथ्वीमंडलभारतीयजनोको मंडनकरति है सोभित्त करति है विद्वानोंके मनोंको हर्षित कररहीहै ऐसे श्री-जिनवल्लभसूरिजी महाराजकाकिंचित्मात्र चरित्रलिखके जो पुन्य उपार्जनकरा उस्सेंभव्यजीवजिनमार्गमे प्रवृत्तिकरके अजरामर-स्थानपावो इति।

अत्राह कश्चित् साक्षेपं, जिनवल्लभायोपस्थापनोपसंपदाचार्य-पदेषु कतमत्, श्रीनवागीवृत्तिकारकश्रीअभयदेवसूरिभिः समर्पि, अर्थात्, इहापर आक्षेपसहित कोई तपोटमताश्रितादिवादी कहे है, श्रीनवांगवृत्तिकारकश्रीमद्अभयदेवसूरिजीमहाराजकेपट्टधर शिष्य श्रीजिनवल्लभसूरिजीमहाराजको वडीदीक्षा १ उपसंपदा २ आचा-र्यपद ३ इन तीनवस्तुओंमेसें नवागटीकाकार श्रीमद् अभयदेव-सूरिजी महाराजनें किस वस्तुकों अर्पण किया,

उत्तर, श्रीखरतरगच्छकी पट्टावली ग्रंथमें लिखा है कि, तत्पट्टे त्रिचत्वारिंशत्तमः श्रीजिनवल्लभसूरिः स च प्रथमं कूर्चपुरगच्छीयचैत्यवासीजिनेश्वरसूरेः शिष्योऽभूत्, ततश्च एकदा दशवैकालिकं पठन् सन् औषधादिकं कुर्वाणं अतिप्रमादिनं स्वगुरुं विलोक्य उद्विग्नचित्तः संजातः तदनंतरं स्वगुरुमापृच्छय शुद्धक्रियानिधीनां श्रीअभयदेवसूरीणां पार्श्वेऽगात्, तदुपसंपदं गृहीत्वा तेषामेव शिष्यश्च संजात, क्रमेण सकलशास्त्राण्यऽधीत्य महाविद्वान् बभूव, तथा पिंडविशुद्धिप्रकरण, षडशीतिप्रकरण, प्रमुखाऽनेकशास्त्राणि कृतवान् तथा अष्टादशसहस्रप्रमितवागडश्राद्धान् प्रतिबोधितवान् तथा पुनश्चित्रकूटनगरे श्रीगुरुभिः चंडिका प्रतिबोधिता जीवहिंसात्याजिता, धर्मप्रभावात्सधनीभूतसाधारणश्राद्धेन कारितस्य द्विसप्ततिजिनालयमंडितश्रीमहावीरस्वामीचैत्यस्य प्रतिष्ठा कृता तथा तत्रैव पुरे संवत् सागररसरुद्र (११६७) मिते श्रीअभयदेवसूरिवचनादेवभद्राचार्येण तेषां पदस्थापना कृता व्याख्या—श्रीमहावीरस्वामीकी संतानपाटपरंपरामें ४२ वें पाटे नवांगटीकाकार श्रीअभयदेवसूरिमहाराज हुवे, उनके पाटपर ४३ वें श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराज हुवे, प्रथमकूर्चपुर गच्छीयचैत्यवासीय श्रीजिनेश्वरसूरिजीके शिष्य थे, एक दिन दशवैकालिकसूत्रकोपढतेहुवे अतिप्रमादीऔषधादि करनेवाले अपने गुरु जिनेश्वरसूरिजीको देखकर उद्विग्नचित्त हुवे, उसके अनंतर अपने गुरुसें पूछकर शुद्धक्रियाकेनिधाननवांगटीकाकार श्रीमद् अभयदेवसूरिजी महाराजके पासगए, उनसें उपसंपदग्रहण करके उन्हींके याने नवांगटीकाकारश्रीअभयदेवसूरिजी महाराजके शिष्य

श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराज हुवे, अनुक्रमे सकलशास्त्रोंको पढकर महाविद्वान् हुवे तथा पिंडविशुद्धिप्रकरण, संघपट्टक प्रकरण, धर्मव्यवस्था प्रकरण, षडशीति, सूक्ष्मार्थसार्धशतक प्रकरण, श्रीजिनवल्लभसूरिसमाचारी, इत्यादि अनेक प्रकरण शास्त्र किये, तथा अढारे हज्जार वागडदेशमें श्रावक नवीन जैनी किये, और चित्रकूट नगरमें श्रीजिनवल्लभसूरिजीमहाराजनें चण्डिकादेवीको प्रतिबोधी और जीवहिंसा छुडाई तथा धर्मप्रभावसें धनपाला हुवा साधारण नामका श्रावकनें कराया हुवा ७२ जिनालयमंडित श्रीमहावीर स्वामीके चैत्य (मंदिर)की प्रतिष्ठा करी उसी चित्रकूटस्थानमें वि० संवत् ११६७ में श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजको आचार्यपद नवागटीकाकार श्रीमद् अभयदेवसूरिजी महाराज देवलोक होनेसे उनके वचनसें उन्होंके संतानीय श्रीदेवभद्राचार्य महाराजनें दिया, याने नवागटीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजी महाराजके पाटपर मुख्य श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराजकों आचार्यपदमें स्थापित किये,

नवागटीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजी महाराजने श्रीभगवतीसूत्रकी टीकाके अतमे अपने पूर्वजोंकी पाटपरपरा इसतरह लिखी है कि—

चांद्रे कुले सद्वनकक्षकल्पे,
महाद्रुमो धर्मफलप्रदानात् ,
छायान्वितः शस्तविशालशाखः,
श्रीवर्द्धमानो मुनिनायकोऽभूत् ॥ १ ॥

तत्पुष्पौ विलसद्विहारसद्गंधसंपूर्णदिशौ समंतात् ,
बभूवतुः शिष्यवरावऽनीचवृत्ति श्रुतज्ञानपरागवंतौ ॥ २ ॥

एकस्तयोः सूरिवरो जिनेश्वरः
ख्यातस्तथाऽन्यो भुवि बुद्धिसागरः ।
तयोर्विनेयेन विबुद्धिनाप्यलं
वृत्तिकृतैषाऽभयदेवसूरिणा ॥ ३ ॥
तयोरेव विनेयानां, तत्पदं चानुकुर्वतां,
श्रीमतां जिनचंद्राख्यसत्प्रभूणां नियोगतः ॥ ४ ॥
श्रीमज्जिनेश्वराचार्यशिष्याणां गुणशालिनां ।
जिनभद्रमुनींद्राणामस्माकं चांघ्रिसेविनः ॥ ५ ॥
यशश्चंद्रगणेर्गाढ, सहाय्यात्सिद्धिमागता,
परित्यक्ताऽन्यकृत्यस्य, युक्ताऽयुक्तविवेकिनः ॥ ६ ॥

व्याख्या—श्रीआचारगसूयगडांगसूत्रकी टीकाके अंतमें—"इत्याचार्यशीलांकविरचिताया श्रीआचारागटीकाया द्वितीयश्रुतस्कंधः समाप्तः इत्यादि, टीकाकार श्रीशीलांकाचार्यमहाराजनें लिखा है, किन्तु श्रीमहावीर स्वामीसे लेकर अपनें सब पूर्वजोके नाम वा गुरु दादा गुरुके नाम तथा अपना निग्रंथ गच्छ कोटिकगच्छादिनाम या विशेषण नहिं लिखा है, इसी तरह श्रीठाणांगआदिनवांगसूत्रटीकाके अतमे श्रीअभयदेवसूरिजी महाराजनेभी श्रीमहावीरस्वामीसें लेकर अपने सब पूर्वजोंके नाम तथा निग्रंथगच्छ, कोटिकगच्छ, वज्रशाखा-चंद्रकुल, बृहत्गच्छ, खरतरगच्छ, ६ ये सब नाम या विशेषण प्रायः नही लिखें हैं, कितु किसी अज्ञके प्रश्नके उत्तरमे कोई बुद्धिमान् संक्षेपप्रशंसासें अपने कुलका नाम तथा उसमें अपने पितादादेका नाम जैसा बतलाता है वैसा नवांगटीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजी-

महाराजनेभी बालजीवोंके कुतर्क वा उनकी अज्ञानताको दूर करनेके लिये उपर्युक्त श्लोकोंमें संक्षेपप्रशंसासें अपने कुलका नाम चंद्रकुल उसमें अपनें दादा गुरुका नाम श्रीवर्द्धमानसूरिजी, उनके शिष्य अपने गुरुका नाम श्रीजिनेश्वरसूरिजी, श्रीबुद्धिसागरसूरिजी, उनके लघुशिष्य श्रीअभयदेवसूरिजीने यह श्रीभगवतीसूत्रकी टीका करी श्रीजिनेश्वरसूरिजीके तथा श्रीबुद्धिसागरसूरिजीके पाटे बडे शिष्य श्रीजिनचंद्रसूरिजीकी आज्ञासें और श्रीजिनेश्वरसूरिजीके शिष्य श्रीजिनभद्रसूरिजीके तथा श्रीअभयदेवसूरिजीके चरणसेवक श्रीयशश्चंद्रगणिजीके सहायसें टीका करनेंमे आई, यह श्रीअभयदेवसूरिजी महाराजनें अपनी गुरुशिष्यपरम्परा स्पष्ट लिख बतलाई है, और यह पाटपरपरा खरतर गच्छवालोंकी है, उसमे नवांगटीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजी हुवे, तपगच्छके श्रीमुनिसुंदरसूरिजीमहाराजविरचित श्रीउपदेशतरंगिणी ग्रंथमे-"नवांगटीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजी उनके शिष्य श्रीजिनवल्लभसूरिजी प्रशिष्य श्रीजिनदत्तसूरिजी इन प्रभाविक आचार्योंकी स्तुतिद्वारा खरतरगच्छवालोंकी गुरुशिष्यप्रशिष्यपाटपरपरा दिखलाई है कि—

"व्याख्याताऽभयदेवसूरिरऽमलप्रज्ञो नवांग्या पुनः,
भव्यानां जिनदत्तसूरिरऽददद्दीक्षां सहस्रस्य तु ॥
प्रौढिं श्रीजिनवल्लभो गुरुरऽधीज्ज्ञानादिलक्ष्म्या पुनः,
ग्रंथान् श्रीतिलकश्चकार विविधान् चंद्रप्रभाचार्यवत् ॥ १ ॥

व्याख्या–निर्मलबुद्धिवाले श्रीअभयदेवसूरिजी महाराजनें नवअंगसूत्रोंकी टीका करी, उनके प्रशिष्य श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराजने

हजारों भव्यजीवोंको दीक्षा दी और चंद्रप्रभाचार्यकी तरह (श्री) शोभा या लक्ष्मीके तिलकसमान नवांगटीकाकारके शिष्य श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराज ज्ञानादिलक्ष्मीसें प्रौढताको धारण करतेहूवे, विविध (अनेक) ग्रंथोंको करते भये, और श्रीकल्पांतर्वाच्यामें तपगच्छके श्रीहेमहंससूरिजी महाराजने भिन्न भिन्न गच्छके प्रभाविक आचार्योंके अधिकारमें लिखा है कि, "खरतरगच्छे नवांगीवृत्तिकारक श्रीअभयदेवसूरि थया, जिये शासनदेवीना वचनथी थंभणाग्रामे सेढीनदीनें उपकंठे जयतिहुअणबत्तीसी नवीन स्तवना करके श्रीपार्श्वनाथजीनी मूर्त्ति प्रगट कीधी धरणेन्द्र प्रत्यक्ष थयो शरीरतणो कोढरोग उपशमाव्यो नवअंगनीटीका कीधी तच्छिष्य श्रीजिनवल्लभसूरिजी थया जिये निर्मल चारित्र सुविहित संवेगपक्ष धारण करी, अनेक ग्रंथतणो निर्माण कीधो तच्छिष्य युगप्रधान श्रीजिनदत्तसूरि थया जिये उज्जैनी चित्तोडना मंदिरथी विद्यापोथी प्रगट कीधी देशावरोंमे विहारकरते रजपूतादिकनें प्रतिबोधीनें सवालाख जैनी श्रावक कीधा इत्यादि"—और श्रीसूक्ष्मार्थ सार्धशतक मूलग्रंथके अंतमे लिखा है कि—

जिणवल्लह गणिरइयं, सुहुमत्थवियारलवमिणं सुयणा,
निसुणंतु सुणंतु सयं, परे विबोहिंतु सोहिंतु ॥ १ ॥

श्रीचित्रवालगच्छके श्रीधनेश्वरसूरिजी महाराजविरचित श्रीसूक्ष्मार्थ सार्धशतक मूलग्रंथकी टीकामे लिखाहै कि—श्रीजिनवल्लभगणिनामकेन मतिमता सकलार्थसंग्राहिस्थानांगाद्यंगोपांग पंचाशकादिशास्त्रवृत्तिविधानावाप्तावदातकीर्त्तिसुधाधवलितधरामंडलानां श्रीमदऽभयदेवसूरीणां शिष्येण कर्मप्रकृत्यादिगंभीरशास्त्रेभ्यः समुद्धृत्य रचितमिदं॥

अर्थ—सकल अर्थके संग्रहवाले स्थानांगआदिनवअंगसूत्र । और उपांगसूत्र पचाशकआदिप्रकरणशास्त्र इन्होंकी टीकाकरणेसे प्राप्त स्वच्छ कीर्तिरूप सुधासे उज्ज्वल किया है पृथ्वीमंडल जिन्होंने ऐसे श्रीमद् अभयदेवसूरिजी महाराज उनके शिष्य मतिमान् श्रीजिनवल्लभगणि है नाम जिनका उन्होंने कर्मप्रकृति आदि गंभीर शास्त्रोंसे उद्धार करके यह सूक्ष्मार्थ सार्धशतक मूलप्रकरण ग्रंथ रचा है । इस तरह चित्रवालगच्छके श्रीधनेश्वरसूरिजीमहाराजने नवांगटीकाकार श्रीमद् अभयदेवसूरिजी उनके शिष्य श्रीजिनवल्लभ (गणि)सूरिजी, यह गुरु-शिष्यपरंपरा लिखदिखलाई है तो इन उपर्युक्त शास्त्रप्रमाणोंसें चंद्रकुलके श्रीवर्धमानसूरिजी उनके दो शिष्य श्रीजिनेश्वरसूरिजी तथा श्रीबुद्धिसागरसूरिजी, उनके बडे शिष्य श्रीजिनचन्द्रसूरिजी तथा लघुशिष्य नवांगटीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजी उनके शिष्य श्रीजिनवल्लभसूरिजी, उनके शिष्य श्रीजिनदत्तसूरिजी इत्यादि खरतरगच्छवालोंकी गुरु-शिष्यपरंपरामे नवांगटीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजी महाराजने श्री-जिन-वल्लभसूरिजी महाराजको उपसंपद अर्पण करके अपने शिष्यकिये, इत्यादि इसविषयमे उपर्युक्त शास्त्रप्रमाणोंको देखकर पूर्वपक्षी अपनी शंका दूर करें और निम्नलिखित प्रश्नोंके उत्तर शास्त्रप्रमाणोंसे प्रकाशित करें—

१ [प्रश्न] तुमने लिखा कि—“जिनवल्लभगणिजीने बडी दीक्षा उपसंपद इत्यादि” तो हमभी लिखतेहैं कि—“जगचंद्रसूरिजीको बडीदीक्षा १, उपसंपद २ और आचार्यपदवी ३ इन तिनमेसे चि-

त्रवालगच्छके श्रीधनेश्वरसूरिजीके शिष्य श्रीभुवनचंद्रसूरिजी उनके शिष्य शुद्धसंयमी श्रीदेवभद्रगणिने कौनसी वस्तु दी ॥

२ [प्रश्न] श्रीजगच्चंद्रजी बड़ी दीक्षा उपसंपदादि ग्रहण किस गच्छके और किस नवीनशुद्धसंयमी गुरुके शिष्य हुए मानते हो

३ [प्रश्न] श्रीधर्मरत्नप्रकरण ग्रंथमें चित्रवालकगच्छके श्रीभुवनचद्रसूरि उनके शिष्य श्रीदेवभद्रगणि उनके शिष्य श्रीजगचंद्रसूरि उनके शिष्य श्रीदेवेन्द्रसूरिने यह उपर्युक्त अपने पूर्वजोंकी गच्छ नामसहित गुरु–शिष्यपरंपरा मानना वतलाया है अन्य नहीं तो श्रीदेवेन्द्रसूरिजी उक्तकथनसे विरुद्ध अपने मनसे वृहत्गच्छ तथ श्रीमणिरत्नसूरि उनके शिष्य श्रीजगच्चंद्रसूरि यह गुरु–शिष्यपरंपर मानना क्यो वतलाते हैं ?

४ [प्रश्न] श्रीदेवेन्द्रसूरिजीके उक्तकथनसे विदित होता है कि श्रीजगचंद्रसूरिजीने उपसंपद दीक्षादि लेकर–चैत्रवालगच्छको तथ उस गच्छके श्रीदेवभद्रगणिजीको और उनके पूर्वजोंकी परंपराको स्वीकार किया और अपने प्रथम गुरु श्रीमणिरत्नसूरिजीको तथा उनके पूर्वजोंकी परंपराको और उनको गच्छको त्यागा, तो फिर पट्टावलीमें उन गुर्वादिकोंको क्यों मानते हो ?

५ [प्रश्न] श्रीसत्यविजयजीने और श्रीयशोविजयजीने तथा श्रीनेमसागरजीने वा उनके गुरूने यतिपनके शिथिलाचारको त्याग कर क्रियाउद्धार किया तो योग १, वड़ीदीक्षा २, उपसंपद ३, पन्यासपद ४, उपाध्याय पद ५, किस दूसरे शुद्धसंयमी गुरुके

अर्थ—सकल अर्थके संग्रहवाले स्थानागआदिनवअंगसूत्र और उपांगसूत्र पंचाशकआदिप्रकरणशास्त्र इन्होंकी टीकाकरणेसें प्राप्त स्वच्छ कीर्तिरूप सुधासे उज्ज्वल किया है पृथ्वीमंडल जिन्होंने ऐसे श्रीमद् अभयदेवसूरिजी महाराज उनके शिष्य मतिमान् श्रीजिनवल्लभगणि है नाम जिनका उन्होंने कर्मप्रकृति आदि गंभीर शास्त्रोंसे उद्धार करके यह सूक्ष्मार्थ सार्धशतक मूलप्रकरण ग्रथ रचा है। इसतरह चित्रवालगच्छके श्रीधनेश्वरसूरिजीमहाराजने नवागटीकाकार श्रीमद् अभयदेवसूरिजी उनके शिष्य श्रीजिनवल्लभ (गणि)सूरिजी, यह गुरु-शिष्यपरपरा लिखदिखलाई है तो इन उपर्युक्त शास्त्रप्रमाणोंसें चंद्रकुलके श्रीवर्धमानसूरिजी उनके दो शिष्य श्रीजिनेश्वरसूरिजी तथा श्रीबुद्धिसागरसूरिजी, उनके बडे शिष्य श्रीजिनचन्द्रसूरिजी तथा लघुशिष्य नवांगटीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजी उनके शिष्य श्रीजिनवल्लभसूरिजी, उनके शिष्य श्रीजिनदत्तसूरिजी इत्यादि खरतरगच्छवालोंकी गुरु-शिष्यपरपरामे नवांगटीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजी महाराजने श्री-जिन-वल्लभसूरिजी महाराजको उपसंपद अर्पण करके अपने शिष्यकिये, इत्यादि इसविषयमे उपर्युक्त शास्त्रप्रमाणोंकों देखकर पूर्वपक्षी अपनी शका दूर करे और निम्नलिखित प्रश्नोंके उत्तर शास्त्रप्रमाणोंसे प्रकाशित करें—

१ [प्रश्न] तुमने लिखा कि—"जिनवल्लभगणिजीने वडी दीक्षा उपसंपद इत्यादि" तो हमभी लिखतेहैं, कि—"जगचंद्रसूरिजीको वडीदीक्षा १, उपसंपद २ और आचार्यपदवी ३ इन तिनमेंसे चि-

हजारों भव्यजीवोंको दीक्षा दी और चंद्रप्रभाचार्यकी तरह (श्री) शोभा या लक्ष्मीके तिलकसमान नवांगटीकाकारके शिष्य श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराज ज्ञानादिलक्ष्मीसें प्रौढताको धारण करतेहुवे, विविध (अनेक) ग्रंथोंकों करते भये, और श्रीकल्पांतर्वाच्यामें तपगच्छके श्रीहेमहंससूरिजी महाराजने भिन्न भिन्न गच्छके प्रभानिक आचार्योंके अधिकारमें लिखा है कि, "खरतरगच्छे नवांगीवृत्तिकारक श्रीअभयदेवसूरि थया, जिये शासनदेवीना वचनथी थंभणाग्रामे सेढीनदीनें उपकंठे जयतिहुअणबत्तीसी नवीन स्तवना करके श्रीपार्श्वनाथजीनी मूर्त्ति प्रगट कीधी धरणेन्द्र प्रत्यक्ष थयो शरीरतणो कोढरोग उपशमाव्यो. नवअंगनीटीका कीधी तच्छिष्य श्रीजिनवल्लभसूरिजी थया जिये निर्मल चारित्र सुविहित संवेगपक्ष धारण करी, अनेक ग्रंथतणो निर्माण कीधो तच्छिष्य युगप्रधान श्रीजिनदत्तसूरि थया जिये उज्जैनी चित्तोडना मंदिरथी विद्यापोथी प्रगट कीधी देशावरोंमें विहारकरते रजपूतादिकनें प्रतिबोधीनें सवालाख जैनी श्रावक कीधा इत्यादि"—और श्रीसूक्ष्मार्थ सार्धशतक मूलग्रंथके अंतमें लिखा है कि—

जिणवल्लह गणिरइयं, सुहुमत्थवियारलवमिणं सुयणा,
निसुणंतु सुणंतु सयं, परे विबोहिंतु सोहिंतु ॥ १ ॥

श्रीचित्रवालगच्छके श्रीधनेश्वरसूरिजी महाराजविरचित श्रीसूक्ष्मार्थ सार्धशतक मूलग्रंथकी टीकामें लिखाहै कि—श्रीजिनवल्लभगणिनामकेन मतिमता सकलार्थसंग्राहिस्थानागाद्यंगोपाग पंचाशकादिशास्त्रवृत्तिविधानावाप्तावदातकीर्त्तिसुधाधवलितधरामंडलानां श्रीमदऽभयदेवसूरीणां शिष्येण कर्मप्रकृत्यादिगंभीरशास्त्रेभ्यः समुद्धृत्य रचितमिदं॥

अर्थ—सकल अर्थके संग्रहवाले स्थानांगआदिनवअंगसूत्र । और उपांगसूत्र पचाशकआदिप्रकरणशास्त्र इन्होंकी टीकाकरणेसे प्राप्त स्वच्छ कीर्तिरूप सुधासे उज्ज्वल किया है पृथ्वीमंडल जिन्होंने ऐसे श्रीमद् अभयदेवसूरिजी महाराज उनके शिष्य मतिमान् श्रीजिनवल्लभगणि है नाम जिनका उन्होंने कर्मप्रकृति आदि गंभीर शास्त्रोंसे उद्धार करके यह सूक्ष्मार्थ सार्धशतक मूलप्रकरण ग्रंथ रचा है । इस तरह चित्रवालगच्छके श्रीधनेश्वरसूरिजीमहाराजने नवांगटीकाकार श्रीमद् अभयदेवसूरिजी उनके शिष्य श्रीजिनवल्लभ (गणि)सूरिजी, यह गुरु-शिष्यपरपरा लिखदिखलाई है तो इन उपर्युक्त शास्त्रप्रमाणोंसें चंद्रकुलके श्रीवर्धमानसूरिजी उनके दो शिष्य श्रीजिनेश्वरसूरिजी तथा श्रीबुद्धिसागरसूरिजी, उनके वडे शिष्य श्रीजिनचन्द्रसूरिजी तथा लघुशिष्य नवांगटीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजी उनके शिष्य श्रीजिनवल्लभसूरिजी, उनके शिष्य श्रीजिनदत्तसूरिजी इत्यादि खरतरगच्छवालोंकी गुरु-शिष्यपरपरामें नवांगटीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजी महाराजने श्री-जिन-वल्लभसूरिजी महाराजको उपसंपद अर्पण करके अपने शिष्यकिये, इत्यादि इसविषयमे उपर्युक्त शास्त्रप्रमाणोंकों देखकर पूर्वपक्षी अपनी शंका दूर करें और निम्नलिखित प्रश्नोंके उत्तर शास्त्रप्रमाणोंसे प्रकाशित करें—

१ [प्रश्न] तुमने लिखा कि—"जिनवल्लभगणिजीने वडी दीक्षा उपसंपद इत्यादि" तो हमभी लिखतेहैं कि—"जगचद्रसूरिजीको वडीदीक्षा १, उपसपद २ और आचार्यपदवी ३ इन तिनमेसे चि-

त्रवालगच्छके श्रीधनेश्वरसूरिजीके शिष्य श्रीभुवनचंद्रसूरिजी उनके शिष्य शुद्धसंयमी श्रीदेवभद्रगणिने कौनसी वस्तु दी ॥

२ [प्रश्न] श्रीजगचंद्रजी बड़ी दीक्षा उपसंपदादि ग्रहण करके किस गच्छके और किस नवीनशुद्धसंयमी गुरुके शिष्य हुए मानते हो

३ [प्रश्न] श्रीधर्मरत्नप्रकरण ग्रंथमें चित्रवालकगच्छके श्रीभुवनचंद्रसूरि उनके शिष्य श्रीदेवभद्रगणि उनके शिष्य श्रीजगचंद्रसूरि उनके शिष्य श्रीदेवेन्द्रसूरिने यह उपर्युक्त अपने पूर्वजोंकी गच्छनामसहित गुरु-शिष्यपरंपरा मानना बतलाया है अन्य नहीं तो श्रीदेवेन्द्रसूरिजी उक्तकथनसे विरुद्ध अपने मनसे बृहत्गच्छ तथा श्रीमणिरत्नसूरि उनके शिष्य श्रीजगचंद्रसूरि यह गुरु-शिष्यपरंपरा मानना क्यों बतलाते हैं ?

४ [प्रश्न] श्रीदेवेन्द्रसूरिजीके उक्तकथनसे विदित होता है कि श्रीजगचंद्रसूरिजीने उपसंपद दीक्षादि लेकर-चैत्रवालगच्छको तथा उस गच्छके श्रीदेवभद्रगणिजीको और उनके पूर्वजोंकी परंपराको स्वीकार किया और अपने प्रथम गुरु श्रीमणिरत्नसूरिजीको तथा उनके पूर्वजोकी परपराको और उनको गच्छको त्यागा, तो फिर पट्टावलीमें उन गुर्वादिकोंको क्यों मानते हो ?

५ [प्रश्न] श्रीसत्यविजयजीने और श्रीयशोविजयजीने तथा श्रीनेमसागरजीने वा उनके गुरुने यतिपनके शिथिलाचारको त्याग कर क्रियाउद्धार किया तो योग १, बडीदीक्षा २, उपसंपद ३, पन्यासपद ४, उपाध्याय पद ५, किस दूसरे शुद्धसंयमी गुरुके

पास ग्रहण किया और किसकिस दूसरे शुद्धसंयमी गुरुको धारण करके उनके शिष्य हुए ?

६ [प्रश्न] जिसके गच्छमें पूर्वकालमें दो, तीन, चार पीढ़ीपर कई जनोंने क्रियाउद्धार किया है और उनके शिष्यप्रशिष्यादि साधु साध्वी वर्तमानकालमे बहुत विचरते हुए नजर आते हैं उनके गच्छमे कोई वैराग्यभावसे यतिपनेके शिथिलाचारको त्यागके क्रियाउद्धार करके साधुकी रीतिसे विचरता है उसको दूसरेके पास उपसंपद लेनेकी और दूसरेका शिष्य होनेकी आवश्यकता नही है ऐसी शास्त्रकारोंकी आज्ञा मानते हो तो उन क्रियाउद्धारकारक सुसाधुकी निरर्थक निंदा करनेवाले और बालजीवोंको भरमानेवाले, शास्त्रविरुद्ध वादी या द्वेषी दुर्गतिके भाजन हो या नहीं ?

श्रीजिनेश्वरसूरये दुर्लभेन. राज्ञा पत्तने चैत्यवासिविजयेन खरतरविरुदं सहस्रे समानामऽशीत्यधिके प्रादायि न वा ? अर्थात् अणहिलपुरपाटणमें (सुविहित) शुद्धक्रियावंत साधुओंको नहीं रहने देनेके लिये मिथ्याअभिमानी श्रीजिनमदिरोंमें रहनेवाले चैत्यवासी यतियोंका बडाभारी व्यर्थ कदाग्रह (जोर) को हटानेसे खरेतरे याने खरतरविरुदश्रीजिनेश्वरसूरिजी (नवागटीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजीके गुरु) महाराजको सवत् १०८० मे दुर्लभराजा तथा भीमराजाके समयमे मिला या नहीं ?

[उत्तर] इस विषयका निर्णय अनेक ग्रंथोंके प्रमाणोंसे श्रीप्रश्नोत्तरमंजरी ग्रथमे लिख दिखलाया है अतः उस ग्रंथमे देखलेना । और इस विषयमें शंका रखनी सर्वथा अनुचित है । क्योंकि इस

अनाभोगको दूर करनेके लिये तपगच्छनायक श्रीसोमसुंदरसूरिजी-के शिष्य महोपाध्याय श्रीचारित्ररत्नगणिजीके शिष्य पंडित श्रीमत् सोमधर्मगणिजीमहाराजने स्वविरचित उपदेशसप्ततिका नामक महाप्रमाणिक ग्रंथमें लिखा है कि–

पुरा श्रीपत्तने राज्यं, कुर्वाणे भीमभूपतौ ।
अभूवन् भूतलाख्याताः, श्रीजिनेश्वरसूरयः ॥ १ ॥
सूरयोऽभयदेवाख्या, स्तेषांपदे दिदीपिरे ।
येभ्यः प्रतिष्ठामापन्नो, गच्छः खरतराऽभिधः ॥ २ ॥

भावार्थ–(पुरा) पूर्वकालमें याने संवत् १०८० में अणहिलपूर पाटणमें दुर्लभ तथा भीमराजाके राज्यके–समयमें चैत्यवासी यतियोंका सुविहित मुनियोंको शहरमें नही रहनेदेनेका बडाभारी व्यर्थ कदाग्रह (ज़ोर) को हटानेसे और अत्यंत शुद्धक्रिया आचारसे खरेतरे याने खरतरविरुद धारक श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराज भूमंडलमे प्रख्यात हुए । उनके पाटे जयतिहुअणस्तोत्रसे श्रीस्थंभनपार्श्वनाथ प्रतिमा प्रगट कर्ता नवांग–टीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजीमहाराज खरतरगच्छमें महाप्रभाविक हुए, जिनसे खरतर-नामकागच्छलोकमे–प्रतिष्ठाको प्राप्त हुआ । इत्यादि अधिकार लिखा है और श्रीप्रभावक चरित्रमेंभी लिखा है कि–

जिनेश्वरस्ततः सूरिरऽपरो बुद्धिसागरः ।
नामभ्यां विश्रुतौ पूज्यै, र्विहारेऽनुमतौ तदा ॥ १ ॥
ददे शिक्षेति तैः श्रीमत्, पत्तने चैत्यवासिभिः ।
विघ्नं सुविहितानां स्यात् तत्राऽवस्थानवारणात् ॥ २ ॥

उसके स्थानमें द्वेपसे १२०४ में ऊष्ट्रिक मत निकला कहना, यहभी द्वेषीके प्रत्यक्ष द्वेषभाववाले महामिथ्या कपोलकल्पित अनुचित आक्षेपवचन है। १२०४ में श्रीजिनदत्तसूरिजीसे खरतरगच्छ खरतरविरुद्ध खरतरमतकी उत्पत्ति हुई इत्यादि-कल्पित अनेक मिथ्याप्रलापोंसे अपने झूठे कदाग्रह मंतव्यको सिद्ध करना कि नवांगटीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजी महाराज खरतरगच्छवालोंकी गुरुशिष्यपरपरामें नहीं हुए। परंतु उपर्युक्त शास्त्रपाठोंसे प्रत्यक्ष विरुद्ध इन महामिथ्या प्रलापोंसे अपने झूठे मंतव्यका जय कदापि नहीं कर सकते हैं। वास्ते अपने पूर्वज श्रीसोमधर्मगणिजीके शास्त्रसंमत उपर्युक्त सत्यवचनोंसे सर्वथा विपरीत महाद्वेषीके कपोलकल्पित अनेक तरहके असत्यवचनोंसे पराजय फलको वेरवेर प्राप्त होना ठीक नही है। अस्तु यदि ऐसाही आग्रह है तो निम्नलिखित प्रश्नोके उत्तर आग्रही सत्यप्रकाशित करें—

[१] अंचलगच्छकी पट्टावली आदिग्रंथोंमे लिखा है कि-संवत् १२८५ में श्रीजगच्चंद्रसूरिजीसे (गाढक्रियतापसः) याने तापलमत—तपोट्मत—(चांडालिका तुल्या) पुष्पवती प्रभू पूजाका मत निकला और श्रीविजयदानसूरिजीके शिष्य धर्मसागर गणिसे संवत् १६१७ मे तपोष्ट्रिकमतकी उत्पत्ति हुई श्रीहीर विजयसूरिजीसे संवत् १६३९ मे गर्दभी मतोत्पत्ति हुई इसतरहके तपः गच्छ के १८ नाम हेतुवृत्तातसहित लिखे हैं उनको आग्रही लोग सत्य मानते हैं या मिथ्या ?

२ [प्रश्न] क्रमशश्चित्रवालकगच्छे—कविराजराजिनभसीव,

श्रीभुवनचंद्रसूरिर्गुरुरुदियाय प्रवरतेजाः ॥ १ ॥
तस्य विनेयः प्रशमैकमंदिरं देवभद्रगणिपूज्यः, ।
शुचिसमयकनकनिकषो बभूव भुनिविदितभूरिगुणः ॥ २ ॥
तत्पादपद्मभृंगा निस्संगाश्चंगतुंगसंवेगाः ।
संजनितशुद्धबोद्धा जगति जगचंद्रसूरिवराः ॥ ३ ॥
तेषामुभौ विनेयौ श्रीमान् देवेंद्रसूरिरित्याद्यः ।
श्रीविजयचंद्रसूरिर्द्वितीयकोऽद्वैतकीर्तिभरः ॥ ४ ॥
स्वाऽन्ययोरुपकाराय श्रीमदेवेंद्रसूरिणा ।
धर्मरत्नस्य टीकेयं सुखबोधा विनिर्ममे ॥ ५ ॥

ये श्लोक श्रीजगचंद्रसूरिजीके मुख्यशिष्य श्रीदेवेंद्रसूरिजीने अपनी रची हुई श्रीधर्मरत्नप्रकरणकी टीका उसकी प्रशस्तिमे लिखे हैं इन श्लोकोंमे तथा श्रीजगचंद्रसूरिजीके शिष्य श्रीविजयचंद्र-सूरिजी उनके शिष्य श्रीक्षेमचन्द्रकीर्तिसूरिजीने संवत् १३३२ में श्रीबृहत्कल्पसूत्र—कीटीका रची है उसकी प्रशस्तिमेभी चित्रवाल-गच्छमे श्रीधनेश्वरसूरिजी उनके शिष्य श्रीभुवनचन्द्रसूरिजी उनके शिष्य श्रीदेवभद्रगणिजी उनके शिष्य श्रीजगचद्रसूरिजी इत्यादि लिखा है किंतु न तो अपना या श्रीजगचंद्रसूरिजीका बृहत्गच्छ ना तपगच्छ ऐसा नाम या विशेषण लिखा और न तो उनके गुरुका नाम—श्रीमणिरत्न–सूरिजी लिखा और न तो श्रीजगचंद्र-सूरिजीने जावज्जीव आचाम्ल तप किया लिखा और न तो सवत् १२८५ मे अमुक राजाने तपगच्छनाम या तपगच्छ विरुद दिय लिखा तथा ३२ दिगम्बराचार्योंको अमुक विवादमे जीतनेसे

अमुक नगरके अमुक राजाने श्रीजगचंद्रसूरिजीको हीरलाविरुद दिया यहभी नहीं लिखा है तथापि आप लोग अपनी तपगच्छकी पट्टावलीसे उक्त वातोंको मानते हो तो श्रीसमवायांगसूत्रकी टीकाके-अंतमें (श्रीमत्सूरिजिनेश्वरस्य जयिनो दर्प्पीयसां वाग्मिनां) इस श्रीअभयदेवसूरिजीके वाक्यसे तथा अनेक शास्त्रसंमत खरतर-गच्छकी पट्टावलीके लेखसे विदित होता है कि वाचाल और अहं-कारी चैत्यवासियोको जीतनेसे खरेतरे याने खरतर विरुदधारक श्री-जिनेश्वरसूरिजी महाराज भूमडलमें प्रख्यात हुए उनके शिष्य नवां-गटीकाकार श्रीस्थंभनपार्श्वनाथप्रतिमा प्रगटकर्ता श्रीअभयदेवसूरिजी महाराज हुए जिनसे खरतर नामका गच्छ प्रतिष्ठा को प्राप्त हुवा इन अपने पूर्वजोंकी लिखी हुई सत्यवातोंको क्यों नहीं मानते हो ?

३ [प्रश्न] संवत् १२८५ वर्षके पहले रचे हुए किस ग्रंथमें श्री-जगचंद्रसूरिजीका बृहत् या वड़गच्छ वा वृद्धगच्छ लिखा है ?

४ [प्रश्न] धर्मसागरउपाध्यायके ग्रंथोमें आगमविरुद्ध अनेक कदाग्रह वचनोंको तथा, द्वेषसे परगच्छवालोंकी निंदारूप कपोल-कल्पित महामिथ्या कटु वचनोंको उनके गुर्वादिकने अपने रचे द्वादशजल्पपदआदिग्रंथोमें जलशरणद्वारा मिथ्याठहराये है या नहीं ? और उन मिथ्यावचनोंको कोई माने वह गुरुआज्ञा लोपी हो ऐसा लिखा है या नही ? इन उपर्युक्त प्रश्नोंके उत्तर धर्मसागरादि-मताश्रिततपोटमतवाले सत्यप्रकाशित करे। इत्यलं किं बहुना ?

और यह ऊपरोक्त प्रश्नोत्तर और प्रश्न सप्रमाणसत्यतापूर्वक दिये है सो सद्गुणीवरोके भक्तिनिमित्त गुणानुरागसे गुणानुरागी

भव्योंके उपगारार्थ और धर्मानुरागी भव्योके सत्यधर्म आराधनके लिये विशिष्टगुणवान् आचार्योंपर दुर्लभबोधिजीवोंके करे हुवे आक्षेप दूर करनेके लिये भावदयापूर्वक देनेमे आया है, नतु द्वेषभावसे है और भगवानकी आज्ञानुसार साम्नाय सप्रमाण शास्त्रानुसार धर्माराधन करते हूवे सबहि गच्छवाले श्रीसर्वज्ञदेवकी आज्ञाके आराधक हैं और अक्षरप्रमाणविना पुरुषप्रमाणविना पूर्वापर संबंध शोच्यांविना हरेक विषयमें द्वेषसें विना विचारके प्रमाणविना रागद्वेष करणेसे झूठा दूषण देनेसें और उत्सूत्र प्ररूपणाकरनेसे महान्कर्मबंध होवे है और धर्मार्थीयोंकों भवभीरुता रखनीचाहिये, नहि तो इसतरह करणेसें महान् संसारवृद्धिहि होणाहै, और श्रीमहावीरस्वामी श्रीगौतमस्वामी श्रीसुधर्मास्वामी श्रीजंबूस्वामी प्रभवस्वामी आदि पाटपरंपरा क्रममे ३८ में पाटे श्रीउद्योतनसूरिजी हूवे इहातक प्राये सर्वगच्छोंकी पट्टावली एकसरखी है, और केवल श्रीपार्श्वनाथस्वामीके संततिवालोंकी पट्टावली सो अलग हि सभवे है श्रीउद्योतनसूरिजीसें ८४ गच्छोंकी स्थापना भई, यह स्थापना श्रीउद्योतनजीने अपणे स्वहस्तसें की है, और ८४ गच्छ इन गच्छोंमे सुविहित क्रियाकरणेवाले शुद्धप्ररूपक कंचनकामनीके त्यागी पृथग् पृथग् आचार्यादिक हूवे है और होतेहै होवेगे सो सर्व आचार्यादिक ८४ गच्छवाले धर्मार्थी गुणानुरागी भव्योंके मानने पूजने योग्य है, और श्रीउद्योतनसूरिजीके ज्येष्ठातेवासी श्रीवर्धमानसूरिजीकी संतति चली सो इस समयभी खरतर गच्छ नामसें प्रसिद्ध है और खरतर यह नाम १०८० में श्री जिनेश्वरसूरिजीकु दुर्लभराजाके समक्ष पंचासरा देवलमे सभा समक्ष खुददुर्लभराजाने दिया है तबसैं खरतर यह नाम- श्रीवर्धमानसूरिजी

तृतीयशिष्याः श्रुतवारिवार्द्धयः
परीषहाक्षोभ्यमनःसमाधयः,
जयन्ति पूज्या विजयेन्दुसूरयः
परोपकारादिगुणौघसूरयः ॥ ५ ॥
प्रौढं मन्मथपार्थिवं त्रिजगतीजैत्रं विजित्येयुषां,
येपां जैनपुरे पुरेण महसा प्रक्रांतकांतोत्सवे,
"स्थैर्यं मेरुरगाधतां च जलधिः सर्वंसहत्वं मही,
सोमः सौम्यमहर्पतिः किल महत्तेजोकृत प्राभृतं ॥ ६ ॥
वापं वापं प्रवचनवचोवीजराजीविनेय
क्षेत्रे क्षेत्रे सुपरिमिलिते शब्दशास्त्रादिसीरैः ॥
यैः क्षेत्रज्ञैः शुचिगुरुजनाम्नायवाक्सारणीभिः,
सिक्त्वा तेने सुजनहृदयानंदिसंज्ञानसस्यं ॥ ७ ॥
यैरप्रमत्तैः शुभमंत्रजापैर्वेंत्तालमध्ये प्रकलिस्ववश्यं,
अतुल्यकल्याणमयोत्तमार्थसत्पूरुषः सत्वधनैरसाधि ॥ ८ ॥

किंबहुना !

ज्योत्स्ना मंजुलया यया धवलितं विश्वंतरामंडलं,
या निःशेपविशेपविज्ञजनताचेतश्चमत्कारिणी
"तस्यां श्रीविजयेन्दुसूरिसुगुरुर्निष्कृत्रिमायां गुणः,
श्रोणः स्याद्यदि वासवः स्तवकृतौ विज्ञः स वाचां पतिः ९

तत्पाणिपंकजरजःपरिपूतशीर्षाः
शिष्यास्त्रयो दधति संप्रति गच्छभारं ॥
श्रीवज्रसेन इति सद्गुरुरादिमोऽभूत्
श्रीपद्मचंद्रसुगुरुस्तु ततो द्वितीयः ॥ १० ॥

तार्त्तीयीकस्तेषां, विनेयपरमाणुरऽनणुशास्त्रेऽस्मिन्,
श्रीक्षेमकीर्त्तिसूरिर्विनिर्ममे विवृतिकल्पमिति ॥ ११ ॥
श्रीविक्रमतः क्रामति, नयनाग्निगुणेन्दु १३३२ परिमिते वर्षे,
ज्येष्ठश्वेतदशम्यां, समर्थितैषा च हस्तार्के ॥ १२ ॥

और इस पाठसे यह विदित हूवा कि श्रीउद्योतनसूरिजी श्रीपद्मचंद्रसूरिजी चित्रवाल एसा गच्छका नाम उत्पन्न करनेवाले श्रीधनेश्वरसूरिजी उस चित्रवालगच्छमें कालक्रमसे श्रीभुवनेन्दुसूरिजी हूवे, और दोनु पक्ष शुद्धजिनोंका एसे उनोके शिष्य श्रीदेवभद्रसूरिजी इनोंके तीन शिष्य हूवे जिसमे पहिले श्रीजगचंद्रसूरिजी दूसरे श्रीदेवेन्द्रसूरिजी तीसरे श्रीविजयेन्दुसूरिजी और श्रीजगचंद्रसूरिजीके पदमें श्रीदेवेन्द्रसूरिजी हूवे इनोंनें श्राद्धदिनकृत्यवृत्ति धर्मरत्नप्रकरणवृत्ति वगेरे ग्रंथ बनाये हैं इन ग्रंथोंकी अंतप्रशस्तिमें इस तरह लिखा है।

क्रमशश्चित्रवालकगच्छे, कविराजराजिनभसीव,
श्रीभुवनचंद्रसूरिर्गुरुरुदियाय प्रवरतेजाः ॥ १ ॥

इत्यादि पूर्वोक्तप्रमाणे इहापर जाणलेना इन श्रीदेवेन्द्रसूरिजीके शिष्य श्रीविद्यानंदसूरिजी वगेरे पाट चले हैं सो प्रसिद्ध है, और श्रीजगचंद्रसूरिजी दूसरे श्रीविजयेन्दुसूरिजी इनके तीन शिष्य पहिले श्रीवज्रसेनसूरिजी दूसरे श्रीपद्मचंद्रसूरिजी तीसरे श्रीक्षेमकीर्त्तिसूरिजी इनोंनें श्रीवृहत्कल्पकी वृत्ति १३३२ में रचि है उसमे इसतरे लिखा है, और इनोकी पाटपरंपरा आगे इस तरह चली है, तद् यथा

श्रीदेवेन्द्रमुनीन्दोर्विद्यानन्दादयोऽभवन् शिष्याः,
लघुशाखायां तु गुरोर्विजयेन्दोश्च त्रयः पट्टे ॥ १४० ॥

श्रीवज्रसेनसूरिः, पद्मेन्दुः क्षेमकीर्तिसूरिश्च,
रदविश्वते १३३२ वर्षे, विक्रमतः कल्पटीकाकृत् ॥ १४१ ॥
अथ हेमकलशसूरिस्तत्पदमौलिर्गुरुर्यशोभद्रः,
रत्नाकरस्ततोपि च, शिष्यो रत्नप्रभश्चाऽस्य ॥ १४२ ॥
मुनिशेखरस्तदीयः, शिष्यः श्रीधर्मदेवसूरिरपि,
श्रीज्ञानचन्द्रसूरिः, सूरिः श्रीअभयसिंहश्च ॥ १४३ ॥
अथ हेमचंद्रसूरिर्जयतिलकाः सूरयस्ततो विदिताः,
जिनतिलकसूरयोऽपि च, सूरिर्माणिक्यनामा च ॥ १४४ ॥
कालानुभाववशतः शाखापार्थक्यचेतसो ह्यधुना,
सर्वे ते गुणवन्तो ददतां भद्राणि मुनिपतयः ॥ १४५ ॥

इस तरह श्रीजगचंद्रसूरिजीके दो शिष्योसें दो शाखा निकली वृद्धशाखा और लघुशाखा पूर्वोक्तप्रमाणे इनका स्वरूप जाणना और श्रीमान्‌जगचंद्रसूरिजीको महातपाविरुद तथा चारित्र-स्वीकारविषयी यह ख्याति है, सो इस तरे श्रीभुवनचंद्रसूरिजीके वचनसें वस्तुपाल तेजपालकी उत्पत्ति भइ कालक्रमसें राजाके मंत्री भये बाद कुलक्रमागतमर्यादा साचवनेके लिये अपणे गच्छके उपाश्रयमे रहे हूवे श्रीदेवभद्रसूरिजीके सुशिष्य श्री जगचन्द्रसूरिजी शिथिलचर्यामें विद्यमान थे, उनको वन्दनादि करनेके लिये हर-हमेस वस्तुपालमंत्री स्वपरिवारसहित जातेथे इसतरह कितनाक दिन-के बाद कोइ एक दिनके समे भाविभावके वशसें अकस्मात् वन्दना निमित्त श्रीजगचंद्रसूरिजी के पास आया तिससमय श्रीजगचंद्रसू-रिजीके पासमें पण्यस्त्री चेठी थी इस तरहका अनुचित व्यवहार प्रत्य-

क्षदेखनेपरभी प्रणायानेअभाव नहिं करके शुद्धभावपूर्वक विधिसहित मुनिवेषमें रहे हूवे श्रीजगचंद्रसूरिजीकों वंदनापूर्वक पच्चक्खाण वगेरे करके गया और अपणेकार्यमें लगा बाद जातिकुलादिसंपन्न आचार्यके मनमें अत्यंतलज्जा अनुचितकार्यका महान् पश्चात्ताप-पूर्वक तीव्रसंवेगउत्पन्नहोनेसें यह विचारकिया हाइतिखेदे इस अनुचित मेरेकर्त्तव्यको धिग् हो अहो इति आश्चर्ये गुणहीन साध्वा-चाररहितकेवलवेषयुक्त मेरेकुं यह महर्द्धिकशुद्धश्रावकवस्तुपालमंत्री निःशंकपणें भावपूर्वक वंदना करके स्वस्थानगया और कुछ॰ कहा नहि अहो यह मुनिवेषधर्मका हि प्रभाव है इत्यादिशुभ-भावना भावतां दृढसंवेगपूर्वक क्रियोद्धारविधिसें सर्वपरिग्रहका उसीवक्त त्याग करके सुविहितमुनिमार्ग अंगीकार किया अप्रति-बध विहार करते हूवे तीर्थयात्रानिमित्तगिरनारगये वहां तीव्र-तपसंयमादिकरतेंरहेहैं तिसअवसरमें वहांपर यात्रानिमित्त वस्तु-पाल मत्रीभी स्वपरिवारसहित आया तब वहा उग्रतप करते हूवे देखके शुद्ध मुनि जाणके स्वपरिवारसहित भावसें विधिपूर्वक वंदना करके आगे बेठे मुनि धर्मोपदेश देकर निवृत्तहूवे, बाद विनयसहित वस्तुपालने पूछा कि आपश्रीके गुरु कोण है और उनोंका क्या नाम है तब श्रीजगचंद्राचार्य बोले कि हेधर्मप्रिय श्रावक मेरा गुरुका नाम श्रीवस्तुपाल मंत्री है, यह सुणते हि मंत्री चमकके बोलाकि यह अनुचित क्या फरमाते हैं, आपश्री मुनिराज हैं औरमें तो आपका श्रावक हूं दास हु आपश्रीतो मेरे गुरु हैं और पूजनीक हैं वंदनीक हैं, मे आपका गुरु कैसा, तब आचार्य बोले की

हेमंत्रिनूतेरेकारणसे मेरेकों प्रतिबोधहूवाहै, जिससें जिसको प्रतिबोध होवे वह उसका गुरु होवे है, इस लिये मेने तेरेको कहा, और इसकारणसें ते मेरागुरुहि है और व्यवहारसें मेरा श्रावक हैं सुणके विशेपखुशीहूवा और आपहि मेरे शुद्धगुरु है इत्यादि कहके विशेप वंदना पूर्वक व्रतादि धर्मस्वीकार करके उनीका भक्त शुद्ध श्रावकभया, इसकाविशेप चरित्र ग्रंथान्तरसें जानना शत्रुंजय गिरनार आदि तीर्थोंकी यात्रा करते भये विहार क्रमसें मेवाड देशमें गये वहां उदेपुरके पास नदीमें उष्णकालके मध्यान्हसमयनिरन्तर वेलुकी आतापना करते हूवेरहै तव कोइएकदिनके समय वहां नदीमें अकस्मात् कार्यनिमित्त मंत्री सहित रांणेका आणाभया, वहां नदीमें मृतकवत् निचेष्टित पडेहूवे आचार्य कों देखके रांणाजी बोलोकि यह इससमय नदीमें कौंण अनाथ मृतक पडा है तव श्रावक मंत्री रांणेजीको बोला कि हेमहाराज यह अनाथ मृतक नहि किंतु यह जैनी आचार्य है इससमय यहां नदीमें निरन्तर यह महात्मा निस्पृही वेलुकी आतापना तपस्या करते है घोरतपस्वी है शरीरकी भी जिनोंको वांछा नहिं है एसे यहमाहात्मा है इत्यादि गुणसुणके देखके श्रीमहाराणानें खुशी होके श्रीजगच्चंद्राचार्य कों महातपाविरुददिया, इनोंके दोशिष्यभये एसी प्रसिद्धख्याति है, और इनोंके शिष्योंकी पाटपरपरा शाखा कुल गछ वगेरे ऊपर लिखा है और ऊपरोक्तप्रसिद्धख्याति और ऊपरोक्त ग्रथोंसें तोविदितहोताहेकि श्रीमुनिसुंदरसूरिजीनें पूर्वापर संवध और ऊपरोक्त ग्रन्थोका विचार या- अवलोकन नहिं क-

रके उद्योतनसूरिजीसर्वदेवसूरिसेंलेकरश्रीसोमप्रभसूरि मणिरत्नसूरिजी पर्यंत दूसरे गछकी पट्टावली श्रीमान्जगचंद्राचार्यके नामाक्षरसाथ लगायी है सो अयुक्त है और खरतरविरुद श्रीअभयदेवसूरिजी तच्छिष्यश्रीजिनवल्लभसूरिजी तच्छिष्यश्रीजिनदत्तसूरिजीके विषयमें विशेषसंकादूरकरनेकी इच्छा होवे सो भव्यमध्यस्थ आत्मार्थी भवभीरु प्राणियोंको १ प्रश्नोत्तरमंजरीका तीसरा भाग २ पर्युषणानिर्णयउत्तरार्ध भाग ३ आत्मभ्रमोच्छेदनभानु ४ समाचारीशतकादि ग्रन्थोंको देखें और व्यर्थरागद्वेषके जरीये कदाग्रह करना उचित नहीं है, संसारवृद्धिके कारणोंसें विवेकी प्राणियोंको अपनाबचावकरना उचित है, संसारकी वृद्धिका मार्ग यह है,

मज्जं विसयकसाया, निद्दाविकहा य पंचमी भणिया,
एए पंचप्पमाया, जीवं पाडंति संसारे ॥ १ ॥
पखापखीमें पचमरे, सो नर मतके हीन,
सारधर्मनिरपक्ष है, सवहीमें लयलीन ॥ २ ॥

निस्कलंक चांद्रादिकुल निग्रन्थकोटिकादिगच्छ वज्रादिशाखा सुविहित आचार्योंपर आक्षेप निंदादि करणेसें महान् कर्मबंध होता है, कर्मोंके मुलायजा नही है, और कर्मोंके उदय आनेपर पसतावेंगें, इसलिये कर्मबंधका विवेक रखना उचित है, इत्यलं विस्तरेण ॥ नमोऽस्तु भगवते शासनाधीश्वराय श्रीवर्द्धमानाय सर्वातिशयसमन्विताय चतुष्षष्टिसुरेन्द्रपरिपूजिताय चतुर्मुखाय अष्टप्रातिहार्यमहिताय नमोनमः समस्तविघ्नतमोभास्कराय श्रीगौतमगणहारिणे नमोऽस्तु

भारत्यै श्रीश्रुतज्ञानअधिष्ठायिकायै, नमोनमः श्रीसद्ज्ञानदातृभ्योः श्रीगुरुभ्यः नमोऽस्तु श्रीश्रमणसंघभट्टारकाय नमोऽस्तु पितामहचरित्रशोधिकायै परमसंविग्नसूरिमुख्यपंडितपरिषदे, इति श्रीमज्जिनकीर्तिरत्नसूरिशाखाया तत्परपरायां च क्रमात् वरीवर्त्यते, सच्चारित्रचूडामणिर्भगवान् श्रीमज्जिनकृपाचंद्रसूरीश्वरः तच्छिष्यविद्वच्छिरोमणिः श्रीमदानंदमुनिवर्यसंकलिते लोकभाषोपनिबद्धे तल्लघुगुरुभ्राता। उपाध्याय श्रीजयसागरगणिसंस्कारिते श्रीमद्युगप्रधानश्रीजिनदत्तसूरीश्वरचरिते श्रीमद्अभयदेवसूरिश्रीजिनवल्लभसूरिचरित्राधिकारवर्णनो नामचतुर्थःसर्गः साक्षेपपरिहारसहितः परिपूर्त्तिभावमगमत्।

॥ अथ पंचमसर्गः ॥

॥ तत्रादौ मंगलाचरणम् ॥ अर्हंतो ज्ञानभाजः सुरवरमहिताः सिद्धिसौधस्थसिद्धाः पंचाचारप्रवीणाः प्रगुणगणधराः पाठकाश्चागमानां ॥ लोके लोकेशवंद्या सकलयतिवराः साधुधर्माभिलीनाः पंचाप्येते सदाप्ता विदधतु कुशलं विघ्ननाश विधाय ॥ १ ॥ चिंतामणिः कल्पतरुर्वराकौ कुर्वन्तु भव्या किमु कामगव्याः ॥ प्रसीदतः श्रीजिनदत्तसूरेः, सर्वे पदाहस्तिपदे प्रविष्टाः ॥ २ ॥

इदानीं श्रीजिनदत्तसूरिविरचिताः सार्धशतकसंख्याका 'मूलगाथाः'-छायया च समन्विता वक्तुम् आरभंते ॥

गुणमणिरोहणगिरिणो, रिसहजिणिंदस्स पढमसुणिवइणो सिरिउसभसेन गणहारिणोऽणहे पणिवयामि पओ ॥ १ ॥

अर्थः–गुणरूपमणिके रोहणाचलऐसे श्रीऋषभदेवस्वामी प्रथम-

तीर्थंकरके प्रथमगणधरश्रीऋषभसेनके निर्दोषचरणकमलोंमें नमस्कार करूं ॥ १ ॥

अजियाइजिणिंदाणं, जणियाणंदाणं पणय पाणीणं ।
थुणिमो दीणमणोहं, गणहारिणं गुणगणोहं ॥ २ ॥

अर्थः–अजितनाथस्वामीको आदिलेके उत्पन्नकिया है आनन्द जिन्होंने और तीनजगत्में रहनेवाले प्राणियोंने नमस्कार किया है जिन्होंको ऐसे तीर्थंकरोंके गणधरोंको अदीनमन ऐसा मै नमस्कार करता हूं ॥ गुणगणके समूहकी स्तुति करता हूं ॥ २ ॥

सिरिवद्धमाण वरनाण, चरणदंसणमणीणं जलनिहिणो ।
तिहुवणपहुणो पडिहणिय, सत्तुणो सत्तमो सीसो ॥ ३ ॥

अर्थः–श्रीवर्धमान प्रधानज्ञानदर्शनचरित्रमणिके समुद्र तीन जगत्के स्वामी कर्मशत्रुवोंको हननेवाले ऐसे तीर्थंकरके प्रधान शिष्य ॥ ३ ॥

संखाईए विभवे साहिंतो जो समत्तसुयनाणी ।
छउमत्थेण न नज्जइ, एसो न हु केवली होइ ॥ ४ ॥

अर्थः–असंख्याता भव कहते हुए जो सम्पूर्ण श्रुतज्ञानी छद्मस्थ नहीं जानसके यह केवली नहीं है ऐसे ॥ ४ ॥

तंतिरियमणुयदाणवदेविंदनमंसियं महासत्तं ।
सिरिलाण सिरिनिहाणं गोयमगणहारिणं वंदे ॥ ५ ॥

अर्थः–तिरियञ्च, मनुष्य, भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषि, वैमानिक इन्द्रोंसे नमस्कृत महासात्विक शोभायुक्त ज्ञानादिलक्ष्मीके निधान ऐसे श्रीगौतमस्वामीको मैं नमस्कार करूं ॥ ५ ॥

जिनवद्धमानमुनिवइ, समप्पियासेसतित्थभारधरणेहिं ।
पडिहय पडिवक्खेणं, जयंम्मि धवलाइयं जेण ॥ ६ ॥

अर्थः—श्रीजिनवर्धमानस्वामीतीर्थंकरोंने अर्पणकिया सर्व तीर्थका भार धारण करनेवाले ऐसे प्रतिपक्षको दूर किया जिन्होंने जगत्में उज्ज्वल है यश जिन्होंका ऐसे ॥ ६ ॥

तं तिहुयणपणयपयारविंद, मुद्दामकामकरिसरहं ।
अनहं सुहम्मसामिं, पंचमट्ठाणट्ठियं वंदे ॥ ७ ॥

अर्थः—तीनजगत्करके नमस्कृतहै चरणकमलजिन्होंका बन्धनरहितकामहस्तीके लिये सिंहसदृश निष्पाप दोषरहित पंचमगणधर सुधर्म. स्वामीको मैं नमस्कार करूं ॥ ७ ॥

तारुन्ने विहु नो तरलतार, अत्थि पिच्छरीहिं मणो ।
मणयं वि मुणिय पवयण, सब्भावं भामियं जस्स ॥ ८ ॥

अर्थः—यौवनअवस्थामेंभी चंचलनेत्रवाली स्त्रियोंकरके जिनका मन थोडाभी चलितनहीं हुआ ऐसे जानाहैप्रवचनका सद्भाव जिन्होंने ऐसे ॥ ८ ॥

मणपरमोहि पमुहाणि, परमपुरपट्ठिएण जेण समं ।
समइंकंताणि समत्त, भव्वजणजणिय सुक्खाणि ॥ ९ ॥

-अर्थः—मनःपर्यव -परमअवधिप्रमुख (१०) दसवस्तु मोक्षनगर प्राप्त भए जिन्होके साथ चलीगई ऐसे समस्त भव्य प्राणियोंको उत्पन्न किया है सुख जिन्होंने ऐसे ॥ ९ ॥

तं जंबुनामनामं, सुहम्मगणहारिणो गुणसमिद्धं ।
सीसं सुसीसनिलयं, गणहरपयपालयं वंदे ॥ १० ॥

अर्थः—जम्बुस्वामी है नाम जिन्होंका ऐसे श्रीसुधर्मास्वामी गणधरके गुणसमृद्ध सुशिष्यस्थान ऐसेशिष्य गणधरपदके पालनेवालोंको नमस्कार करूं हूं ॥ १० ॥

संपत्तवरविवेयं, वयत्थिगिहिजंबुनामवयणाओ ।
पालिययुगपवरपयं, पभवायरियं सया वंदे ॥ ११ ॥

अर्थः—पाया है प्रधानविवेक जिन्होंने व्रतके अर्थी गृहस्थाश्रममें रहे जम्बुकुमरके वचनसे चारित्र लियाजिन्होंने ऐसे पालनकिया है युगप्रधानपदजिन्होंने ऐसे प्रभवस्वामी आचार्यको मैं निरंतर नमस्कार करूं हूं ॥ ११ ॥

कट्ठमहो परमो यं, तत्तं न मुणिज्जइत्ति सोऊणं ।
सज्जंभवंभवाओ, विरत्तचित्तं नमंसामि ॥ १२ ॥

अर्थः—अहो यह परमकष्ट है तत्व नहीं जानते हैं ऐसा सुनके शय्यंभवभट्ट संसारसे विरक्त भया है चित्त जिसका ऐसे चारित्र लेके युगप्रधानपद पाया जिन्होंने ऐसे शय्यंभवसूरिको मैं नमस्कार करता हूं ॥ १२ ॥

संजणियपणयभद्दं, जसभद्दं मुणिगणाहिवं सगुणं ।
संभूयंसुहसंभूई, भायण सूरि मणुस्सरिमो ॥ १३ ॥

अर्थः—उत्पन्न किया है नमस्कार करनेवालोंको कल्याण जिन्होंने ऐसे मुनिगणके स्वामी गुणसहित यशोभद्रसूरि और सुखसम्पदाके भाजन ऐसे सभूतिविजयआचार्यका स्मरण करें ॥ १३ ॥

मणवयणकायगुत्तं, तं वंदे भद्दगुत्तगणनाहं ।
जइ जिमइ जईं जम्मंडलीए, पत्तो मरइं तेहिं समं ॥२३॥

अर्थः—मनवचनकायकरके गुप्त ऐसे भद्रगुप्तआचार्यको नमस्कार करूं, जो यतिः जिन्होंकी मंडलीमें प्राप्त भोजन करै उन्होंके साथ मरण पावे ऐसे ॥ २३ ॥

छम्मासिएण सुकयाणुभावओ जायजाइसरणेणं ।
परिणामओ णवज्जा, पव्वज्जा जेण पडिवन्ना ॥ २४ ॥

अर्थः—छै महीनोंका होनेसे सुकृतके प्रभावसे भया है जातिस्मरण जिसको ऐसे परिणामसे निरवद्य प्रव्रज्या अंगीकार करी जिसने ऐसे ॥ २४ ॥

तुंववणासंनिवेसे, जाएणं नंदणेणं नंदाए ।
धणगिरिणो तणएणं, तिहुयणपहुपणयचरणेणं ॥२५॥

अर्थः—तुंववनसंनिवेशमें धनगिरिका पुत्र नंदासे उत्पन्न भया ऐसा तीनभवनके प्रभुके चरणोंमें नमस्कार किया है जिसनें ऐसे अथवा तीनभवनके लोगोंने नमस्कार किया है जिसको ऐसे ॥२५॥

इग्गारसंगपाढो, कओदढं जेण साहुणीहिंतो ।
तस्स झ्झायझ्झयणुज्जएण, वयसा छवरिसेणं ॥ २६ ॥

अर्थः—इग्यारहअंगकापाठ साध्वियोंसे सुनके दृढकंठकिया है जिसने स्वाध्यायअध्ययनमें उद्यत ६ वर्षकी उमर जिसकी ऐसा ॥२६॥

सिरिअज्जसींहगिरिणा, गुरुणा विहिओ गुणाणुरागेणं ।
लहुओ वि जो गुरूओ, नाणदाणओ सेससाहूणं ॥२७॥

अर्थः—श्रीआर्यसिंहगिरिगुरूने गुणानुरागकरनेसे लघुवयकोंभी पाठकपदमें स्थापित किया ऐसा और साधुओंको ज्ञानदेनेवाला ऐसा ॥ २७ ॥

उज्जेणीए गहिअव्वओ, लहुगुज्झगेहिं वरिसंते ।
जो सुजइत्ति निमिंतियपरिक्खिओ पत्ततव्विज्जो २८

अर्थः—गृहीतव्रतउज्जैनीनगरीमें यक्षोंनेवरसातके समयमें परीक्षाकरनेके लिये आमंत्रणकिया और शोभन यह यति है ऐसा जानके देवोंने विद्या दिया ॥ २८ ॥

उद्धरिया जेण पयाणुसारिणा गयणगामिणीविज्जा ।
सुमहापईन्नपुव्वाओ, सव्वहा पसमरसिएण ॥ २९ ॥

अर्थः—जिसने पदानुसारीसुमहाप्रकीर्णपूर्वसे सर्वथा समपरिणाममें रक्त ऐसोंने आकाशगामिनीविद्याका उद्धारकिया ऐसे ॥ २९ ॥

दुक्कालंमि दुवालस, वरसियंमि सीयमाणे संघंमि ।
विज्जाबलेणमाणियमन्नं, जेणन्नक्खित्ताओ ॥ ३० ॥

अर्थः—बारहवर्षकेदुःकालमे संघखेदपातेहुएको विद्याके बलसे और ठिकानेसे अन्नप्राप्तकिया ऐसे ॥ ३० ॥

सुररायचायविब्भमभमुहाधणुमुक्कनयणबाणाए ।
कामग्गिसमीरणविहियपात्थणावयणघट्टणाए ॥ ३१ ॥

अर्थः—इन्द्रधनुषके जैसा भ्रूरूप धनुषसे फेंका है नेत्रप्रान्तरूप बाण जिसने ऐसी कामाग्नि - वायुसेकरी है प्रार्थना वचनरूप चेष्टा जिसने ऐसी ॥ ३१ ॥

अकयगुरुणिण्हवेणं सूरिसयासंमि जिणमयं सोउ ।
परिवज्जिय सावज्जं पवज्जागिरिं समारूढो ॥ ४१ ॥

अर्थः—नहींकिया है गुरूकानिषेधजिसने ऐसा आचार्यके पास जैनधर्म सुनके सावद्यका त्यागकिया और प्रव्रज्यापर्वतपर आरूढ भया अर्थात् दीक्षा लिया ॥ ४१ ॥

सीहत्तानिक्खंतो सीहत्ताए य विहरिओ जोउ ।
साहियनवपुव्वसुओ संपत्तमहंत्त सूरिपओ ॥ ४२ ॥

अर्थः—सिंहके जैसा निकले औरसिंहके जैसाही विचरे और कुछ अधिक नव पूर्वपढे और आचार्यपद पाया ऐसे ॥ ४२ ॥

सुरवरपहु पुट्ठेणं महाविदेहंमि तित्थनाहेणं ।
कहिउ निगोयभूयाणं भासओ भारहे जोउ ॥ ४३ ॥

अर्थः—इन्द्रने प्रश्नकिया महाविदेहक्षेत्रमें तब सीमन्धरस्वामीने कहा निगोदके जीवोंका स्वरूपकहनेवाला भरतक्षेत्रमें इसवक्तमें आर्यरक्षित सूरिः है ॥ ४३ ॥

जस्स सयासे सक्को माहणरूवेण पुच्छए एवं ।
भयवं फुड मन्नेसि अ मह कित्तियमाउयं कहसु ॥४४॥

अर्थः—जिसके पासमें इन्द्रः ब्राह्मणके रूपसे इस प्रकारसे पूछे हे भगवन् आप प्रगट जानते हैं मेराआयुष्य कितनाहै सो कृपाकरके कहो ॥ ४४ ॥

सक्को भवन्ति भणिओ मुणिओ जेणाउयप्पमाणेण ।
पुट्ठेण निगोयाणं वि वण्णणा जेण निद्दिट्ठा ॥ ४५ ॥

अर्थः—इन्द्रसें भगवान्ने आयुःका प्रमाण कहा बाद इन्द्रने निगोदका स्वरूप पूछा आचार्यने कहा ॥ ४५ ॥

हरिसभरनिम्भरेणं हरिणा जो संथुओ महासत्तो ।
जेण सपयम्मि सूरी वि ठाविओ गुणिसु बहुमाणो ॥४६॥

अर्थः—हर्षके समूहसे निर्भर इन्द्रने जिस महासात्विककी स्तुति करी जिस आचार्यनें अपनें पदमें आचार्य स्थापा गुणीमें बहुमान होवे है ऐसा विचारके ऐसे ॥ ४६ ॥

रक्खियचरित्तरयणं पयडियजिणपवयणं ।
वंदामि अज्ज रक्खियमलक्खियंतं क्खमासमणं ॥४७॥

अर्थः—चारित्ररत्नकीरक्षाकियाहै जिसने जैनसिद्धान्तका प्रथम अनुयोग कियाजिसने प्रशान्तमनजिसका ऐसे गंभीर अंतःकरणजिन्होंका ऐसे क्षमाश्रमणआर्यरक्षितसूरिःको मैं नमस्कार करूं ॥४७॥

तयणुजुगपयरगुणिणो जाया जायाणं जे सिरोमणिणो ।
सन्नाणचरणगुणरयणजलहिणो पत्तसुयनिहिणो ॥४८॥

अर्थः—उन्होंके अनन्तर आचार्योंमें शिरोमणिः सद्ज्ञान चरणगुणरत्नोंकेसमुद्र, पायाहैश्रुतनिधानजिन्होंने ऐसे युगप्रधान आचार्यभए ॥ ४८ ॥

परवादिवारवारणवियरणे जे मियारिणो गुरुणो ।
ते सुगहिय नामाणो, सरणं मए हंतु जइपहुणो ॥४९॥

अर्थः—परवादीरूपहाथियोंकोविदारण करनेमें सिंहके जैसे ऐसे जे गुरुः सुगृहीतनामधेय उनआचार्योंका मेरेको शरण होवो॥४९॥

जैसा जैनसिद्धान्तकोधारणकरनेवाला ऐसा युगप्रवर जिनदत्तआचार्यने कहा सूत्रोंका तत्त्वार्थरत्नोंको धारनेवाला ऐसा ॥ ५८ ॥

तं संकोइयकुसमयकोसिअकुलममलमुत्तमं वंदे ।
पणयजणादिन्नभदं, हरिभद्दपहुं पहासंतं ॥ ५९ ॥

अर्थः—वह संकोचित किया है कुसमय कौशिकका कुल जिसने और नमस्कार किया है जिन्होने ऐसे लोगके कल्याण करनेवाले निर्मलउत्तम प्रकाश करते हुए ऐसे हरिभद्रआचार्योंको मैं नमस्कार करूं ॥ ५९ ॥

आयारवियारणवयण, चंदियादलियसयलसंतावो ।
सीलंको हरिणंकुव्व सोहइ कुमुयं वियासंतो ॥ ६० ॥

अर्थः-आचारविचारणरूपवचनचन्द्रिकासे दूर किया है सम्पूर्ण संताप जिन्होंने ऐसे कुमुदको विकसित कर्ता चंद्रके जैसा सीलंकाचार्य शोभते हैं ॥ ६० ॥

तयनंतरं दुत्तरभवसमुद्दमज्जंतभव्वसत्ताणं ।
पोयाणुव्व सूरीणं, जुगपवराणं पणिवयामि ॥ ६१ ॥

अर्थः—तदनंतर दुस्तरभवसमुद्रमें डूबतेहुएभव्यप्राणियोको तारनेमें जहाजके जेसे युगप्रधान आचार्योंको नमस्कार करूं ॥ ६१ ॥

गयरागरोसदेवो, देवायरिओ य नेमिचंद गुरु ।
उज्जोयणसूरिगुरु, गुणोह गुरुपारतंतगओ ॥ ६२ ॥

अर्थः—गतरागद्वेषदेवके जैसे देवाचार्यनेमिचंद्रसूरि और उद्योतनसूरि गुरुपारतंत्रगत गुणोके समूह ऐसे ॥ ६२ ॥

सिरिवद्धमाणसूरी, पवद्धमाणाइरित्तगुण निलओ ।
चियवासमसंगयमवगमित्तु वसहिहिं जोवसउ ॥६३॥

अर्थः–श्रीवर्धमानसूरि प्रवर्धमानविशेषगुणकास्थान चैत्यवासको असंगत जानके वस्तीवासअंगीकार किया अर्थात् श्रीउद्योतनसूरिजीकेपास चारित्र उपसम्पत किया ॥ ६३ ॥

तेसिं य पयपउमसेवारसिओ भमरुव्व सव्व भमरहिओ।
ससमयपरसमयपयत्थसत्थवित्थारणसमत्था ॥ ६४ ॥

अर्थः–श्रीवर्धमानसूरिके चर्णकमलकी सेवामे रसिक भ्रमरसदृश सर्वभ्रमरहित स्वसमयपरसमयपदार्थसमूहके विस्तारणमे समर्थ ऐसे ॥ ६४ ॥

अणहिल्लवाडए नाडइव्व, दंसिय सुप्पत्त सदोहे।
पउरपए बहुकविदूसगे य, सन्नायगाणुगए ॥ ६५ ॥

अर्थः–अणहिल्लपाटननगरमे नाटकसदृश दिखाया सत्पात्रका समूहजिन्होने बहुतपद और बहुतविदूपक जिसमे ऐसा सत् नायक अनुगत रहतेभी ॥ ६५ ॥

सड्ढियदुल्लहराए, सरसइ अंकोवसोहिए सुहए ।
मज्झे रायसहं पविसिऊण, लोयागमाणुमय ॥ ६६ ॥

अर्थः–श्रीमंतदुर्लभराजा मध्यस्थरहते सरस्वती अंकउपशोभित सुख देनेवाली राजसभामे प्रवेशकरके लोक आगम, अनुमत ॥६६॥

नामायरिएहिं सम, करिय वियारं वियाररहिएहिं ।
वसइहिं नियासो साहूण, ठाविओ ठाविओ अप्पा ॥६७॥

अर्थः—विचाररहित ऐसे नामसे आचार्य ऐसे शूराचार्यादिकोंके साथमें विचारकरके साधुओंके वस्तिवास स्थापितकिया बहुतजीवोंको सन्मार्गमें स्थापा ॥ ६७ ॥

परिहरिय गुरुक्कमागयवरवत्ताए य गुज्जरत्ताए ।
वसहि निवासो जेहिं फुडी कओ गुज्जरत्ताए ॥ ६८ ॥

अर्थ—कितनेकसमयमें गुरुक्रमसेआयाहुआ प्रधानवर्त्ताव जिसगुर्जरदेशमे चैत्यवासका परिहारकरके वस्तीनिवास जिन्होंने प्रगटकिया ऐसे जिनेश्वरसूरिआचार्य और ॥६८॥

तिजगयगयजीवबंधूणं, य बंधु बुद्धिसागरसूरी ।
कयवायरणो वि न जो, विवायरणकायरो जाओ ॥६९॥

अर्थः—तीनजगत्के जीवोंकाबंधु ऐसा जो बुद्धिसागरसूरि शास्त्रार्थरूप संग्राम किया है जिसने ऐसेभी विवादरणमें कायर न भए ऐसे ॥ ६९ ॥

सुगुणजणजणियभद्दो, सूरि जस्स विणेयगणप्पढमो,
सपरेसिं हियासुरसुंदरी कहा जेण परिकहिया ॥ ७० ॥

अर्थः—सद्गुणी लोगोकों कल्याण किया है जिन्होंनें ऐसे जिन्होंके शिष्यगणोंमे प्रथम शिष्य अपने और स्वपरकेहितकरनेवाली ऐसी सुरसुंदरी कथा जिसने रची ऐसे जिनभद्रसूरिः (गुणभद्र) ॥७०॥

कुमयं वियासमाणो विहडावियकुमयचक्कवायगणो ।
उदयमिओ जस्सीसो, जयंमि चंदुव्व जिणचंदो ॥७१॥

अर्थः—भव्य कुमुदको विकासमानकर्ता कुत्सितमतरूप चक्रवाकके

समूहको वियोगकर्ता उदयप्राप्तभये श्रीजिनेश्वरसूरिके शिष्य जगत्में चन्द्रके जैसे श्रीजिनचंद्रसूरिको मै नमस्कार करूं ॥ ७१ ॥

संवेगरंगसाला विसालसालोवमा कया जेण।
रागाइवेरि भयभीय भवजण रक्खणनिमित्तं ॥७२॥

अर्थः—श्रीः जिनचन्द्रसूरिने विशालसालाके जैसी उपमा ऐसी संवेगरंगशालानामकी ग्रंथपद्धति रची रागादिवैरियोंके भयसे डरे-हुए भव्य प्राणियोंकी रक्षाके निमित्त ऐसे ॥ ७२ ॥

कयसिवसुहत्थि सेवो, भयदेवो वगयसमय पयक्खेवो।
जस्सीसो विहियनवंगवित्ति जलधोय जललेवा ॥ ७३ ॥

अर्थः—किया शिवसुखके आर्थियोंने सेवनजिन्होंका ऐसे अभयदेव-सूरि, जाना है सिद्धान्तका परमार्थजिन्होंने ऐसे नवाङ्गवृत्तिरूप जलसे धोया है अज्ञानरूप लेप जिन्होंने ॥ ७३ ॥

जेण नवंगविवरणं, विहियं विहिणा समं सिवसिरीए।
काउं नवंगविचरणं, विहियमुझ्झियभवजुवइसंजोगं ॥७४॥

अर्थः—जिसअभयदेवआचार्यने ठाणङ्गादि नवअङ्गका विवरण किया विधिः और शिवलक्ष्मीके साथ नवाङ्गका विचार करनेके लिए भवयुवतिके संयोगको छोडके शिवस्त्रीका आश्रय किया जिन्होंने ॥ ७४ ॥

जेहिं बहुसीसेहिं, शिवपुरपहपत्थियाणं भघाणं।
सरलो सरणी समगं कहिओ ते जेण जस्सि तयं॥७५॥

अर्थः—बहुत शिष्योंकरके सहित ऐसे श्रीअभयदेवसूरिः महा-

राजने मोक्षनगरके मार्गमे चलेहुए भव्योंको शरलमार्ग कहा जिससे वह सुखसे जावे ॥ ७५ ॥

गुणकणमवि परिकहिउं, न सक्कई सक्कई वि जेसिं फुडं।
तेसिं जिणेसरसूरीणं, चरण सरणं पवज्जामि ॥ ७६ ॥

अर्थः—जिन्होके सामने अच्छाकवि भी गुणका कण कहनेको नही समर्थ होवे है उन जिनेश्वरसूरि के चर्णोका शरण मै अंगीकार करूं ॥ ७६ ॥

युगपवरागमजिणचंदसूरि विहिकहिय सूरि मंतपयो।
सूरी असोगचंदो, महमणकुमुयं विकासेउ ॥ ७७ ॥

अर्थः—युगप्रधर आगम जिन्होका ऐसे श्रीजिनचंदसूरि आचार्य-का जो सूरिमंत्रपद उसका विधि कहा जिन्होंने ऐसे अशोकचंद-सूरिः मेरे मनकुमुदको विकासित करो ॥ ७७ ॥

कहिय गुरु धर्म्मदेवो, धम्मदेवो गुरुउवझ्झाओअ।
मझ्झावि तेसिं य दुरंत दुहहरो सो लहु होउ ॥ ७८ ॥

अर्थः—कहा गुरुधर्मदेव वेंहि गुरुः उपाध्यायपदधारक ऐसे मेरेभी दुरन्त दुःखके हरनेवाले ऐसे उनके प्रसादसे शीघ्रकल्याणकी प्राप्तिः होवे ॥ ७८ ॥

तस्स विणेओ निद्दलिअगुरुगओ जो हरिव्व हरिसीहो।
मझ्झगुरु गणि पवरो, सो महमणवंच्छियं कुणउ ॥ ७९ ॥

अर्थः—धर्मदेव उपाध्यायके शिष्य कुत्सितमतरूप बडे हाथीको दलन करनेमे सिंह जैसे हरिसिह आचार्य मेरेगुरुः गणिप्रवर वह मेरेको मनोवाछित देवो ॥ ७९ ॥

तेसिं जिट्ठो भाया, भायाणं कारणं सुसीसाणं ।
' गणि सव्वदेव नामो, न नामिओ केणइ हट्ठेण ॥ ८० ॥

अर्थः-उन्हींका वडाभाई सुशिष्योंके भाग्यका कारण सर्वदेव नाम उपाध्याय जिन्होंको किसीने वादमे नहीं नमाया वलात्कारसे ॥ ८० ॥

सूर ससिणो वि न समा, जेसिं जं ते कुणंति अत्थमणं ।
नक्खत्त गया मेसं मीणं मयरं विभुंजते ॥ ८१ ॥

अर्थः-सूर्यः चन्द्रमाभी जिन्होंके समान नहीं है कारण अस्त होते है नक्षत्र गतिमे मेष, मीन, मकर राशिको भोगवते हैं ॥८१॥

जेसि पसाएण मए, मएण परिवज्जियं पयं परमं ।
निम्मलपत्तं पत्त, सुहसत्त समुन्नइ निमित्तं ॥ ८२ ॥

अर्थः-जिन्होंके प्रसादसे मैंने मदरहित परमपद निर्मल पात्रपना पाया शुभ प्राणियोंकी उन्नतिका कारण ॥ ८२ ॥

तेसिं नमो पायाणं, पायाणं जेहि रक्खिया अह्मे ।
सिरिसूरिदेवभद्दाणं, सायरं दिन्नभद्दाण ॥ ८३ ॥

अर्थः-उन्होंके चरणोमे नमस्कार होवे जिन्होने हमको संसारसे बचाया श्रीदेवभद्रसूरिको आदरसहित नमस्कार करें कैसे है देवभद्रसूरि किया है कल्याण जिन्होने ॥ ८३ ॥

सूरिपदं दिन्न मसोगचंदसूरीहिं चत्तभूरीहिं ।
तेसि पय मइ पहुणो, दिन्नं जिणवल्लहस्स पुणो ॥ ८४ ॥

अर्थः-अशोकचदसूरिने दिया है आचार्यपद बहुतमोको छोडके

जिन्होंने ऐसे मेरे प्रभुः जिनवल्लभगणिको आचार्यपद दिया ॥८४॥

अत्थगिरि मुवगएसिं, जिणजुगपवरागमेसु कालवसा।
सूरमिव दिट्ठिहरेण विलसियं मोह संतमया ॥ ८५ ॥

अर्थः–जिनयुगप्रवरागम कालवशसे सूर्यके जैसा अस्त होगया दृष्टिको हरनेवाला मोह अंधकार फैला ऐसे ॥ ८५ ॥

संसारचारगाओ, निव्वण्णेहिं पि भव्व जीवेहिं।
इच्छंतेहिमवि मुक्खं, दीसइ मुक्खारिहो न पहो ॥ ८६

अर्थः–संसारबन्दीखानेसे निर्वेदपाए भव्यजीव मोक्षमार्गकी इच्छा कर्तेहुओंको मोक्षमार्ग देखनेमें नहीं आता है ॥ ८६ ॥

फुरियं नक्खत्तेहिं महा गहेहिं तओ समुल्लसियं।
वुड्ढीरयणि परेण वि, पाविआ पत्तवसरेण ॥ ८७ ॥

अर्थः–नक्षत्र स्फुरित हुआ महाग्रह उल्लसित भया इस अवसरमें रजनी करनेभी वृद्धिः पाई ऐसा ॥ ८७ ॥

पासत्थकोसिअकुलं, पयडीहोऊण हंतु मारद्धं।
काएकाएय विघाए भावि भयं जं ण तं गणइ ॥ ८८ ॥

अर्थः–पासत्थ रूप चैत्यवासी कौसिककुल प्रत्यक्ष होके हनना प्रारंभ किया छकायरूप काकोंके विघातमे भावीभय नहीं गिने ऐसे ॥ ८८ ॥

जाग्गंति जणा थोवा, सपरेहिं निव्वुइं समिच्छंत्ता।
परमात्थ रक्खणत्थं सद्दं सद्दस्स मेलंता ॥ ८९ ॥

अर्थः–अपने और परके सुखकीइच्छा करतेभए लोग थोडे

जागते हैं परमार्थरक्षणके लिये शब्दको शब्दसेमिलाते हुए ऐसे ॥ ८९ ॥

नाणासत्थाणि धरंतितेओ, जेहिं वियारिऊण परं ।
मुसणत्थ मागयं, परि हरंति निज्जीव मिह काउं ॥९०॥

अर्थः—नानाप्रकारके शास्त्रोंको धारते हैं वे तो जिन्होंसे विचारके परको मोपणके अर्थ आया हुआ उनोंको निर्जीव करके छोडते हैं ऐसे ॥ ९० ॥

अविणासिय जीवं ते, धरंति धम्मं सुवंसनिप्पण्णं, ।
सुक्खस्स कारणं भय निवारणं पत्त निवाणं ॥ ९१ ॥

अर्थः—अविनाशि जीव सद्वंशमे निष्पन्न हुए ऐसे वह धर्मको धारण करे है भय निवारण सुखका कारण निर्वाण पाया जिन्होंने ऐसे ॥ ९१ ॥

धरिय किवाणा केई, सपरे रक्खंति सुगुरु फरयजुआ।
पासत्थ चोर विसरो, वियार भीयो न ते मुसई ॥९२॥

अर्थः—केईक धारण किया है दया कृपारूप तलवार जिन्होंने और सद्गुरुरूप ढाल युक्त ऐसे स्वपरकी रक्षा करते हैं पार्श्वस्थरूप चौरोंका फैलाव विचारसे डराहुआ वह नहीं लूट सकते हैं ९२

मग्गुमग्गा न्नज्जंति, नेय विरलो जणो त्थि मग्गण्णू ।
थोवा तदुत्तमग्गे, लग्गंति न वीससंति घणा ॥ ९३ ॥

अर्थः—मार्ग उन्मार्गको वहुत लोग नहीं जानते हैं कोई विरला

मनुष्य जानता है उस कथितमार्गमें थोडे लोग लगे हैं बहुत लोग विश्वास नहीं करते हैं ॥ ९३ ॥

अन्ने अण्णत्थीहिं सम्मं, सिवपहमपिच्छरेहिंपि।
सत्था सिवत्थिणो चालियावि, पडि पडिया भवारण्णे ९४

अर्थः-और केचित् अन्यार्थियोंके साथ शिवपथकी अपेक्षा करते हुएभी शिवार्थी सार्थ चलाहुआभी भवारण्यमें गिरे-॥९४॥

परमत्थ सत्थ रहिएसु, भव सत्थेसु मोह निद्दाए।
सुत्तेसु मुसिज्जंतेसु, पोढ पासत्थ चोरेहिं ॥ ९५ ॥

अर्थः-परमार्थ शस्त्ररहित भव्य प्राणीका साथ मोहनिद्रा करके सोते भएको प्रौढ पार्श्वस्थ चौरोंने लूटेभए ऐसे ॥ ९५ ॥

असमंजसमेआरिस, मवलोइअ जेण जाय करुणेण।
एसा जिणाणमाणा, सुमरिया सायरं तइआ ॥ ९६ ॥

अर्थः-पूर्वोक्त ऐसा असमंजस देखके उत्पन्नभई हैकरुणा जिसको ऐसा उसवक्तमे आदरसहित तीर्थकरोंकी आज्ञाका स्मरण कराया जिन्होंने ऐसे ॥ ९६ ॥

सुहसीलतेण गहिए, भव पल्लिंतेण जगडि अमणाहे।
जो कुणइ कूजियत्तं, सोवण्णं कुणई संघस्स ॥ ९७ ॥

अर्थः-सुखशील चोरोंने ग्रहणकिया भवरूपपल्लीके मध्यमें अनाथ प्राणियोंको रोकके रक्खे जिसमे ऐसा जो पुकार करे वह संघमें प्रशंसा पावे ॥ ९७ ॥

तित्थयर रायाणो, आयरिआरक्खिअव्व तेहिं कया।
पासत्थ पमुह चोरो, वरुद्ध घण भव सत्थाणं ॥ ९८ ॥

अर्थः—तीर्थंकरराजाने आचार्यको आरक्षकके जैसाकिया पासत्था प्रमुख चौरोंसे रोकाहुआ है बहुत भव्य समूह ऐसा ॥ ९८ ॥

सिद्धिपुर पत्थियाणं, रक्खट्ठायरिअवयणओ सेसा।
अहिसेअवायणा चारिय, साहुणो रक्खगा तेसिं ॥९९॥

अर्थः—मोक्षनगरकोचले उन्होंकी रक्षाकेवास्ते आचार्यके वचनसे अभिषेक किया है जिन्होका ऐसे वाचनाचार्य साधु उन्होंका रक्षक ऐसे ॥ ९९ ॥

ता तित्थयराणाए, मयेविये हुंति रक्खणिज्जाओ।
इय मुणिय वीरवित्तिं, पडिवज्जिय सुगुरु संनाहं १००

अर्थः—यह तीर्थंकरकी आज्ञा करके मेरेभी ये रक्षा करने योग्य होवे है ऐसा जानके श्रीवीरकीवृत्ति जानके अथवा वृत्तिको अगीकार करके सुद्गुरूरूपसन्नाह धारण किया अथवा सुगुरुने सन्नाह धारण किया ॥ १०० ॥

करियक्खमा फलिअं धरिअ मक्खयं कयदुरुत्त सर रक्खं।
तिहुअण सिद्धं तं जं, सिद्धंतमासि समुक्खविय ॥ १०१ ॥

अर्थः—अक्षत क्षमारूप ढाल करके किया है दुरुक्त शरका रक्षण जिसने ऐसा तूणीरको धारके तीन भवनमे सिद्ध ऐसे सिद्धान्तरूप खड्गको उठाके ऐसे ॥ १०१ ॥

निघाणबाणमणहं, सगुणं सद्धम्म मविसमं विहिणा।
परलोग सारग मुक्ख कारगं धरियं विप्फुरिय ॥१०२॥

अर्थ—निर्वाण बाण निर्दोषगुणसहित सद्धर्म अविषम ऐसा

विधिः करके परलोककासाधक मोक्षकाकारक देदीप्यमान धारके ॥ १०२ ॥

जेण तओ पासत्थाइ, तेणसेणाविहक्किया सम्मं।
सत्थेहिं महत्थेहिं विआरिऊणं च परिचत्ता ॥ १०३ ॥

अर्थः–उसके बाद जिसने पासत्थादि चौरोंकी सेनाकोभी हटा दिया सम्यक् शास्त्र महार्थसें विचारके त्यागकिया अथवा विदारण करके ऐसे ॥ १०३ ॥

आसन्नसिद्धिया भव सत्थिया, सिवपहंमि संट्ठाविया।
निव्वुइ मुवंति जहते, पडंति नभीय भवारण्णे ॥ १०४ ॥

अर्थः–आसन्न है मोक्ष जाना जिन्होंको ऐसे भव्यसमूह मोक्ष-मार्गमें चले मोक्ष पहुंचे और जैसे भवारण्यमें नहीं पड़े ऐसा १०४

मुद्धाणायणगया चुक्का मग्गाओ जायसंदेहा।
बहुजणपिट्ठिविलग्गा दुहिणो हूया समाहूआ ॥ १०५ ॥

अर्थः–भोले लोग अनायतनमें गये उत्पन्न हुआ है सन्देह जिन्होंको ऐसे सन्मार्गसे च्युतभए बहुत लोग पीछे लगे दुःखी भए ऐसोंको बुलाया जिन्होंने ऐसे ॥ १०५ ॥

दंसियमाययणं तेसिं, जत्थ विहिणा समं हवइ मेलो।
गुरुपारतंतओ समय सुत्थओ जस्स निप्पत्ती ॥१०६॥

अर्थः–दिखाया आयतन उन्होंको जहां विधिकेसाथ सम्बन्ध होवे गुरु परतन्त्रतासे और समयसूत्रसे जिसकी निष्पत्ति है ॥१०६॥

दीसइय वीयराओ, तिलोयनाओ विरायसहिएहिं ।
सेविज्जंतो संतो, हरई तु संसार संतावं ॥ १०७ ॥

अर्थः—और देखनेमें आता है वीतराग तीनलोकके नाथ जो है सो वैराग्यसहित भव्योसे सेव्यमान भए ऐसे संसाररूप संतापको हरे है ॥ १०७ ॥

वाइय मुपगीयं नट्टमपि, सुयं दिट्ठं चिट्ठमुत्तिकरं ।
कीरइ सुसावएहिं, सपरहियं समुचियं जुत्तं ॥ १०८ ॥

अर्थः—वादित्रका बजाना और गाना और नाटकभी सुना देखा इष्ट मुक्तिका करनेवाला सुश्रावक स्वपरहित इकट्ठे होके करे है वह युक्त है ॥ १०८ ॥

रागोरगोवि नासइ, सोउं सुगुरुवदेस मंत पए ।
भवमणो सालुरं नासई दोसो वि जत्थाहि ॥ १०९ ॥

अर्थः—रागसर्पभी सुगुरुका उपदेशरूप मंत्र पद सुनके भग जाता है भव्यमनरूप दर्दुरको जहा दोषरूप सर्प नहीं खाता है ॥ १०९ ॥

नो जत्थुस्सुत्त जणक्कमोत्थि, न्हाणं वलि पइट्ठा'य ।
'जइ जुवइपवेसोवि अ, न विज्जए विज्जए विमुक्को ॥११०

अर्थः—जहा उत्सूत्र लोगोंका क्रम नहीं है स्नात्र, बलि, प्रतिष्ठा और यतिः युवतिका प्रवेशभी रात्रिमे है नही वहा मुक्ति विद्यमान है ॥ ११० ॥

जिणजत्ताण्हाणाई, दोसाणं य रूकयायकीरेति ।
दोसोदयंमि कए तेसिं, सभवो भवहरो होज्जा ॥१११॥

अर्थः—जिनयात्रा स्नात्रादिक दोपक्षयकेवास्ते किए जावे है दोपके उदयमें उन्होंके भवहरणका संभव कैसे होवे है ॥ १११ ॥

जा रत्ति जारत्थिणमिह, रइं जणइ जिणवरगिहेवि ।
सारयणी रयणिअरस्स, हेउ कह नीरयाणं मया ॥११२॥

अर्थः—यह जो रात्रि तीर्थंकरोके मंदिरोंमेंभी जार स्त्रियोंको रति उत्पन्न करे है वह रात्रि पापसमूहका कारण किस प्रकारसे निष्पापोंके इष्ट होवे है ॥ ११२ ॥

साहु सयणासणभोअणाइं, आसायणं च कुणमाणो ।
देवहरएण लिप्पइ, देवहरे जमिह निवसंतो ॥ ११३ ॥

अर्थः—साधुः जैनमंदिरमें सोना बैठना भोजनादि आशातना करता हुआ देवद्रव्यके उपभोगके पापसे लिप्त होवे है जो जिन-मंदिरमें रहता है ॥ ११३ ॥

तंबोलो तं बोलइ, जिणवसहिट्ठिएण जेण खद्धो ।
खद्धे भव दुक्ख जले, तरइ विणा नेअ सुगुरुत्तरिं ११४

अर्थः—तीर्थंकरके मंदिरमे रहेहुये जिसने तांबूल खाया वह संसारमे डूबता है संसारसमुद्रमें डूबताहुआ सुगुरुरूप जहाजसिवाय नहीं तरता है ॥ ११४ ॥

तेसिं सुविहिअजइणोय, दंसिआ जेउ हुंति आययणं ।
सुगुरुजणपारतंतेण, पाविया जेहिं णाणसिरी ॥११५॥

अर्थः—सुविहित साधुओने जो दिखाया वह आयतन होवे है जिन्होने ज्ञानलक्ष्मी सुगुरु जन पारतन्त्रसे पाई है उन्होंके ॥११५॥

संदेहकारि तिमिरेण, तरलिअं जेसिं दंसणं नेयं ।
निव्वुइ पहं पलोअइ, गुरुविज्जुव एस ओसहओ ॥११६

अर्थः—सन्देहकारी तिमिरसे तरलित जिन्होंका दर्शन नहीं है वह गुरु वैद्यके उपदेश औषधसे मोक्षमार्गको देखते है ॥ ११६ ॥

निप्पच्चवाय चरणा, कज्जं साहंति जेउ मुत्तिकरं ।
मण्णंति कयं तं यं, कयंत सिद्धंउ सपरहिअं ॥ ११७ ॥

अर्थः—निर्दोष है चारित्र जिन्होंका ऐसे कर्मक्षयरूप कार्यको साधते हैं सिद्धातसिद्ध स्वपरहित जो कार्यको मानते है वह॥११७॥

पडिसोएण जे पवट्टा, चत्ता अणुसोअगामिनी वट्टा ।
जणजत्ताए मुक्का, मयमच्छर मोहओ चुक्का ॥ ११८ ॥

अर्थः—प्रतिश्रोत मार्गकरके (मोक्षसाधनमार्ग) प्रवर्तमान भया अनुश्रोतगामी मार्ग लोकयात्रा गृहव्यापारादिकसे छूट गये और मद मत्सर मोहसे रहित भए ॥ ११८ ॥

सुद्धं सिद्धंतकहं, कहति वीहंति नो परेहिंतो ।
वयणं वयंति जत्तो, निव्वुइ वयणं धुवं होइ ॥ ११९ ॥

अर्थः—शुद्ध सिद्धांत कथा कहे औरोंसे डरे नहीं वचन ऐसे बोले कि जिन्हासे मोक्षमार्गमे निश्चय प्रवृत्ति होवे ॥ ११९ ॥

तव्विवरीआ अवरे, जइवेसधराविं हुंति नहु पुज्जा ।
तद्दंसणमवि मिच्छत्तमणुक्खणं जणइ जीवाणं ॥ १२० ॥

अर्थः—उक्त गुणवालोंसे विपरीतयतिवेषधारनेवालेभी पूज्य

नहीं होवे उन्होंका दर्शनभी प्रतिक्षण जीवोंके मिथ्यात्व उत्पन्न करे है ॥ १२० ॥

धम्मत्थीणं जेण, विवेयरयणं विसेसओ ठविअं।
चित्तउडे ठिआणं, जं जणइ भवाण निवाणं ॥ १२१ ॥

अर्थः—धर्मार्थी प्राणियोंके जिसने विवेकरत्नविशेषकरके चितौड़-नगरमें रहेहुये हृदयरूप पात्रमें स्थापा जो विवेकरत्न निर्वाणमुक्ति-सुख भव्योंके उत्पन्न करता है ॥ १२१ ॥

असहाएणावि विहिय, साहिओ जो न सेससूरीणं।
लोअणपहे वि वच्चइ, वुच्चइ पुण जिणमयण्णूहिं ॥१२२॥

अर्थः—सहायरहित होकेभी जिसने विधिः मार्ग साधा जो अगीतार्थ और आचार्योंके दृष्टिपथमें नहीं आया ऐसा जैनधर्मका जाननेवाला कहे है ॥ १२२ ॥

घण जणपवाह सरिआण, सोअपरिवत्तसंकडे पडिओ।
पडिसोएण णीओ, धवलेणवसुद्धधम्मभरो ॥ १२३ ॥

अर्थः-बहुत लोगोका प्रवाह जो नदी उसको जो धारानुकूल आवर्तरूप संकटमें पड़ाहुआ प्राणियोंको प्रतिश्रोतमे लाए शुद्ध धर्मको धारणेवाले धवलधौरेयके जैसे ॥ १२३ ॥

कयवहुविज्जुज्जोओ, विसुद्धलद्धोदओ सुमेघुव।
सुगुरुच्छाइय दोसायरप्पहो प्पहयसंतावो ॥ १२४ ॥

अर्थः—किया है बहुत विद्यारूप विजलीका उद्योत उस्से विशुद्ध पाया है उदय ऐसा सुमेघसदृश सुगुरुने दोषाकर चंद्रकी प्रभाका आच्छादन किया और संतापको मिटाया ऐसे ॥ १२४ ॥

सव्वत्थवि वित्थरिय, वुट्ठो कयसस्स संपओ सम्मं ।
नेव वायल्ओ न चलो, न गज्जिओ यो जए प्पयडो॥१२५

अर्थः—सर्वत्र विस्तारपाके वर्षा, अच्छीतरहसे धान वगैरहकी उत्पत्ति करी जिसने वादरूप वायुसे नहीं नष्ट हुआ चंचल नही गाजाभी नहीं ऐसा जगतमें प्रसिद्ध ऐसे ॥ १२५ ॥

कहमुवमिज्जइ जलही, तेणसमं जो जडाणं कय वुड्ढी।
तिहसेहिंपिपरेहिं, मुअड सिरिं पिङ्कु महिज्जंतो ॥ १२६ ॥

अर्थः—समुद्रकी उपमा कैसे करी जावे समुद्र पानीकी वृद्धिः करनेवाला है देवोंने मथा तब लक्ष्मी उत्पन्न भई उसको छोड दी ॥ १२६ ॥

सूरेण व जेण समुग्गयेण, संहरिय मोह तिमिरेण ।
सद्दीट्ठीणं सम्मं, प्पयडो निव्वुई पहो हूओ ॥ १२७ ॥

अर्थः—दूर किया है मोहरूप अंधकार जिनोंने ऐसा ऊगाहुआ सूर्यके जैसा जिणुने सम्यकदृष्टि जीवोंको मोक्षमार्ग दिखाया प्रगट किया ऐसा ॥ १२७ ॥

वित्थरियममलपत्तं, कमलं बहु कुमय कोसिया दुसिया ।
तेयस्सीणमपि तेओ, विगओ विलयं गया दोसा॥१२८॥

अर्थः—विस्तार पाया है निर्मल पत्र जिसका ऐसा ज्ञानरूप कमल बहुत कुमतरूप घुग्घुओं करके दूषित हुवा तथापि तेजस्वि-ओंकाभी तेज नष्ट होनेसे दोष राग द्वेषादि नष्ट होगए ऐसे॥१२८

विमलगुण चक्कवायावि, सवहा विहाटिया विसंघहिया ।
भमरेहिं भमरेहिंपि, पावओ सुमण संजोगो ॥ १२९ ॥

अण्णुण्ण विरह विहुरोह, तत्तगत्ताओताओ तणाइओ।
जायाओ पुण्णवसा, वासपयं पिजो पत्ता ॥ १३८ ॥

अर्थः-परस्पर विरहसे पीड़ित दुःख परंपरासे तपाहुआ शरीर ऐसी वह दुर्बल अंगवाली भई तथापि पुण्यके वससे अपने निवासका स्थान पाया ॥ १३८ ॥

तं लहिअ विअसिआओ, ताओ तवयण सररुह गयाओ।
तुट्ठाओ पुट्ठाओ, समगं जायाओ जिट्ठाओ ॥ १३९ ॥

अर्थः-जिनवल्लभसूरिको प्राप्त होके हर्षित भई विद्या अंगना उन्होंके मुखकमलमें गई संतुष्ट भई पुष्टभई एकही वक्तमें वड़ी होगई ॥ १३९ ॥

जाया कइणोकेके, न सुमइणो परे मिहोवमं तेवि।
पावंति न जेण समं, समंतओ सव कवण णिउं ॥१४०॥

अर्थः-कवि पृथ्वीपर कौन कौन न भए परन्तु यहां जिस प्रभुके साथ उपमा नही पावे है सम्यक् बुद्धिवाले सर्व काव्यके नेता ऐसे ॥ १४० ॥

उवमिज्जंते सन्तो, संतोसमुवचिंति जंमि नो सम्मं।
असमाण गुणो जो होइ, कहणु सो पावए उवमं ॥१४१॥

अर्थः-सज्जन जिसमे उपमान कर्ता सम्यक् संतोष नहीं पावे है कारण समानगुण जो न होवे वह उपमा कैसे पावे ॥ १४१ ॥

जलहिजलमंजलीहिं, जो मिणइ नहं गणं विछु पए हि।
परिचंकमइ सोवि न सक्कइत्ति, जा गुण गणं भणिउं १४२

अर्थः–समुद्रके जलका जो अजलिसे प्रमाण करे आकाशको पगोंसे उल्लघे वहभी जिन्होंके गुणके समूहको कहनेको समर्थ नहीं होवे ॥ १४२ ॥

जुगपवर गुरु जिणेसर, सीसाणं अभयदेव सूरीणं।
तित्थभर धरण धवलाण, मंतिए जिणमयं विमयं १४३

अर्थः–युगप्रधानगुरु श्रीजिनेश्वरसूरिके शिष्य अभयदेवसूरि तीर्थभार धारणमें धौरेय समान उन्होंके पासमें जैन आगमविशेष करके जाना ॥ १४३ ॥

सविणय मिह जेण सुअं, सप्पणयं तेहिं जस्स परि कहियं।
कहियाणुसारओ सवं, समुवगयं सुमइणा सम्मं ॥१४४॥

अर्थः–विनयसहित इहां उन्होंने जिसको स्नेहसहित श्रुत कहा कथित अनुसार जिस सद्बुद्धिवालेने सुना और जाना प्राप्त किया ऐसा ॥ १४४ ॥

निच्छम्मं भव्वाणं, तं पुरओ पयडियं पयत्तेण।
अकय सुकयंगिदुल्लहजिण वल्लह सूरिणा जेण॥१४५॥

अर्थः–कपटरहित भव्योंके आगे वह सिद्धान्त प्रयत्नसे प्रगट किया, नहीं किया सुकृत ऐसे प्राणियोको दुर्लभ ऐसे जिनवल्लभ-सूरिने ॥ १४५ ॥

सो मह सुह विहिसद्धम्म दायगो तित्थनायगो अ गुरू।
तप्पयपउम पाविय, जाओ जायाणुजाओहं ॥ १४६ ॥

अर्थः–वह मेरेको शुभ विधिः सद्धर्मका देनेवाला तीर्थसंघका

नायकगुरु धर्माचार्य उन्होंके चरणकमलको पाके मै गीतार्थोंका अनुसरण करनेवाला भया ॥ १४६ ॥

तमणुदिणं दिण्णगुणं, वंदे जिणवल्लहं पहुं प्पयओ।
सूरिजिणेसरसीसोअ वायगो धम्मदेवो जो ॥ १४७ ॥

अर्थः-दिया है ज्ञानादि गुण जिन्होंने ऐसे जिनवल्लभसूरि प्रभुको निरंतर प्रयत्नसे नमस्कार करें और श्रीजिनेश्वरसूरिके शिष्य वाचक धर्मदेव गणि और ॥ १४७ ॥

सूरीअसोगचंदो, हरिसींहो सवदेवगणिप्पवरो।
सवेवि तविणेया, तेसिं सवेसिं सीसोहं ॥ १४८ ॥

अर्थः-अशोकचन्द्रसूरि हरिसिंहसूरि और सर्वदेवगणिप्रवर सर्वजिनेश्वरसूरिके शिष्य धर्मदेवगणिके शिष्य उन सबोंका मैं शिष्य हूं ॥ १४८ ॥

ते मह सवे परमोवयारिणो वंदणारिहागुरुणो।
कयसिवसुहसंपाता, तेसिं पाए सया वंदे ॥ १४९ ॥

अर्थः-वह मेरे सर्व परम उपगारी नमस्कार करने योग्य गुरु आराध्य हैं किया है शिवसुख संपात जिन्होंने ऐसे उन्होंके चरणोंमें मैं निरंतर नमस्कार करूं ॥ १४९ ॥

जिणदत्तगणि गुणसयं, सपण्णयं सोमचंदविंबं व।
भवेहिं भणिज्जंतं, भवरविसंताव मवहरउ ॥ १५० ॥

अर्थः-जिनदत्तगणि गणधर उन्होंके गुणग्रहणरूप डेढ़सौ (१५०) गाथाका यह प्रकरण पौर्णमासीके चंद्रबिंबके जैसा शीतल स्वभाववाला भव्योंकरके पठ्यमान नाम पढ़ते गुणते सुनते भव-

रूपसूर्यका संताप दूरकरो ॥ १५० ॥ इति ॥ इसतरह गणधरोंका खरूप कह्योके अनन्तर खसंवेदनसें तथा गुरुजन दर्शित संप्रदायसें और ग्रन्थान्तरसें किंचित् युगप्रधानोंका खरूप दिखाते हैं, इस पांचमें आरेके श्रीवीरप्रभुने २३ उदय फरमाये हैं उन तेवीस उद-योंमें क्रमसें धर्मोन्नतिके करणेवाले युगप्रधानपदोपशोभित दो हजार चार (२००४) आचार्य होवेंगे और पांचमें आरेके अंततक वृद्धिहानिके क्रमसें तेवीस वखत धर्मरूपी चंद्रोदय होगा, तत्र त्रयोविंशतिरुदयेषु, वर्षादिकं निर्दर्श्यते, सचैवं ॥ ९० ॥ नमः श्रीवीतरागाय, नमः श्रीभद्रवाहवे, येन श्रीदुःषमाप्राभृतके, त्रयो-विंशतिरुदयैः कृत्वा, चतुरधिकद्विसहस्रयुगप्रधानस्वरूपं वर्षादिसहितं प्रतिपादितमस्ति, तत्संख्या यथा–

पढमेवीस १, बीइतेवीस २, तीइ अडनवई ३, चउत्थे अडसयरि ४, पंचमे पंचसयरि ५, छट्ठे गुणनवई ६, सत्तमे एगसयं ७, अट्ठमे सगसी ८, नवमे पणनवई ९, दसमे सगसी १०, एगारसमे छहुत्तरि ११, बारसमे अट्ठहुत्तरि १२, तेरसमे चउणवई १३, चउदसमे अट्ठ-उत्तरसयं १४, पनरसमे तिउत्तरसयं १५, सोलसमे सत्तोत्तरसयं १६, सत्तरसमे चउरुत्तरसयं १७, अट्ठारसमे पन्नरोत्तरसयं १८, इगुणवीसमे तित्तीसाहीयसयं १९, वीसमेसयं २०, एगवीसमे पणनवई २१, बावीसमे नव-नवई २२, तेवीसमे चालीसा २३, एवं चउरुत्तर दुस-हस्सा २००४

तथा प्रवचनसारोद्धारप्रकरणे चतुपष्ठ्यधिकद्विशततमद्वारे

जातुप्पसहोसूरी, होहिंती जुगप्पहाण आयरिआ,
अज्जसुहम्मप्पभिई, चउरहीया दुन्निसहस्सा ॥ १ ॥

वृत्त्यैकदेश, आर्यः स चासौ सुधर्मस्तत्प्रभृतयः, प्रभृतिग्रहणात्, जंबूस्वामिप्रभवसिय्यंभवाद्यागणधरपरपराः गृह्यन्ते इत्यादि, अपरं च कालसप्ततिकादीपोत्सवकल्पे च तथासिद्धिप्राभृतिकायां

बारसवरसेहिं गोयम, सिद्धो वीराओवीसेहिं सुहम्मो, चउसट्ठीए जंबू, वोच्छिन्नातत्थदसट्ठाणा ॥ ३५ ॥ मण-परमोहि पुलाए, आहारग खवग उवसमे कप्पे, संजम-तिअ केवल सिझणा जंबूंमिवुच्छिन्ना ॥ ३६ ॥ सिज्जं भवेण विहिअं, दसवेयालिअ अट्ठनवइ वरसेहिं, सत्तरि-सएहिं १७० चुक्काचउपुव्वा भद्दबाहुंमि ॥ ३७ ॥ तुहिंछु थूलभद्दे, दोसयपन्नरेहिं २१५ पुव्वअणुओगो, सुहुममहा-पाणाणिअ आयमसंघयण संठाणा ॥ ३८ ॥ पणसय चुलसीइसु ५८४, वयरेदसपुव्वा अद्धकीलियसंघयणं, छसोलेहिअ ६१६ थक्का, दुब्बलिए सड्ढनवपुव्वा ॥ ३९ ॥ वज्जसेणे नवपुव्वा पच्छाकमेण हीरमाणा जावदेवड्ढिगणि-खमासमणे साहियपुव्वसुयं, नवसयअसीए पुत्थयलिहणं, नवसयतेणउएहिं समइक्कंतेवीराओकालगसूरिंहिंतो चउ-त्थीए पज्जूसवणकप्पो, तओपच्छावीराओ वाससहस्सेहिं सच्चमित्ताओ पुव्वसुए वुच्छिन्ने, तओपच्छा उमासाइ हरि-भद्दजिणभद्दगणिखमासमणे सीलांगसूरि जावबीराओ

साहियसोलसएहिं जिणदत्तसूरि कमेणजुगप्पहाणायरि-
आनेया, इचाइजावदुप्पसहोसूरि होहीति तावदत्रवं

एतेपां स्वरूपं यंत्रेण दृश्यम् ॥

त्रयोविंशतिरुदयाः	१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३
त्रयोविंशतिरुदय युगप्रधानसंख्याः	२०, २३, ९८, ७८, ७५, ८९, १००, ८७, ९५, ८७, ७६, ७८, ९४, १०८, १०३, १०७, १०४, ११५, १३३, १००, ९५, ९९, ४० सर्व २००४
त्रयोविंशतिरुदय वर्पसंख्या	६१७, १३४६, १४६४, १५४५, १९००, १९५०, १७७०, १०१०, ८८०, ८५०, ८००, ४४५, ५५०, ५९२, ९६५, ७१०, ६५५, ४९०, ३५९, ४८९, ५७०, ५९०, ४४०, सर्ववर्प २०९८७
त्रयोविंशतिरुदय माससंख्या	१०, १०, ११, ८, ३, ९, ७, १०, १, २, ३, ४, ७, ५, ६, ९, ६, ९, १, ४, ३, ५, ११ सर्व मासवर्प १२
२३ त्रयोविंशति रुदयदिनानि	१७, २९, २०, २९, २९, २२, २७, १५, १८, १२, १४, १९, २२, २५, २९, २०, २४, २, १७, २, ९, ५, १७,

२३ त्रयोविंशति रुदयप्रहराः	७, ७,	१६१
२३ त्रयोविंशति रुदयघटिका	,, ,, ,, ,,	१६१
२३ त्रयोविंशति रुदयपलानि	,, ,, ,, ,,	१६१
२३ त्रयोविंशति रुदयांशानि	,, ,, ,, ,,	१६१

एवंच कालसप्ततिकायां सुहम्माइ दुप्पसहंता तेवीसउदएहिं चउजुअ दुसहस्सा, जुगपवर गुरुतस्ससंखा, इगारलक्खा सहससोलस ॥ २३ ॥ एगावयारि सुचरणा, समयविउ पभावगाय जुगपवरा, पावयणिआइदुतिगाइ वरगुणा जुगप्पहाणसमा ॥ ३४ ॥ तह-संघचउसूरी दुप्पसहो, साहुणीअ फग्गुसिरी, नाइलसड्ढो, सड्ढीसच-सिरी अंतिमोसंघो ॥ ५० ॥ दसवेयालिअ १ जिअकप्पो २ऽऽवस्सय ३, अणुओगदारं ४ नंदिधरो ५ सययं इदाइनओ, छड्डुग्गतवो दुहत्थ-तणू ॥ ५१ ॥ गिहिवयगुरु बारस, चउचउ वरिसो कय अट्ठमो यसोहम्मि सागराउहोइ, तओसिझही भरहे ॥ ५२ ॥ तीर्थोद्धार प्रकीर्णके इत्युक्तं, वीसाए सहस्सेहिं पंचहियसएहिं होइ वरिसाणं पूसेवछसगुत्तेवोछेदो उत्तरज्झाए ॥ १ ॥ इत्यादि विशेषस्तु दुःख-माप्राभृत युगप्रधानगंडिका सिद्धप्राभृतिका तीर्थोद्धालीप्रकीर्णक-सिद्धप्राभृतबृहट्टीका कालसप्ततिकादि ग्रन्थेभ्योऽवसेयः, पुनः यन्त्र-

पत्रेपि जिनवल्लभजिनदत्तादिनामानि समुपलभ्यन्ते, तद् यथा–प्रथमोदययुगप्रधाननामानि, श्रीसुधर्मस्वामी १ श्रीजंबूस्वामी २ श्रीप्रभवस्वामी ३ श्रीसिज्जंभवसूरिः ४ श्रीयशोभद्रसूरिः ५ श्रीसंभूतविजयसूरि ६ श्रीभद्रबाहुस्वामी ७ श्रीस्थूलिभद्रस्वामी ८ श्रीआर्यमहागिरिः ९ श्रीआर्यसुहस्तिसूरिः १० श्रीगुणसुंदरसूरिः ११ श्रीकालिकाचार्य १२ श्रीस्कंदिलाचार्य १३ श्रीरेवतीमित्रसूरिः १४ श्रीआर्यधर्मसूरिः १५ श्रीभद्रगुप्तसूरिः १६ श्रीश्रीगुप्तसूरिः १७ श्रीवज्रस्वामी १८ श्रीआर्यरक्षितसूरिः १९ दुर्बलिकापुष्पसूरिः २० पुष्पमित्र, इत्यपि दृश्यते, इति प्रथमोदय युगप्रधानसूरयः अथ द्वितीयोदययुगप्रधाननामानि एवं दृश्यंते तद् यथा–श्रीवयरसेनसूरिः १ श्रीनागहस्तिसूरिः २ श्रीरेवतीमित्रसूरिः ३ श्रीब्रह्मद्वीपसूरिः ४ श्रीनागार्जुनसूरिः ५ श्रीभूतदिन्नसूरिः ६ श्रीकालिकाचार्यः ७ श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमण ८ श्रीसत्यमित्रसूरिः ९ श्रीहरिभद्रसूरिः १० श्रीजिनभद्रगणिक्षमाश्रमण ११ श्रीशीलांकसूरिः १२ श्रीउमास्वातिसूरिः १३ श्रीउद्योतनसूरिः १४ श्रीवर्धमानसूरिः १५ श्रीजिनेश्वरसूरिः १६ श्रीजिनचंद्रसूरिः १७ श्रीजिनाभयदेवसूरिः १८ श्रीजिनवल्लभसूरिः १९ श्रीजिनदत्तसूरिः २० श्रीमणिमंडितभालस्थलजिनचद्रसूरिः २१ श्रीजिनपतिसूरिः २२ श्रीजिनप्रभसूरिः २३ इति द्वितीयोदय सूरयः, दिनेंद्रांकादत्रनामांतराण्यपि दृश्यन्ते, पुष्पमित्र, संभूतिसूरिः, माढरसंभूति, धर्मरक्तसूरिः, ज्येष्ठगणिः, फल्गुमित्र, धर्मघोष, विनयमित्र, शीलमित्र, रेवतीमित्र, सुमिणमित्र, अरिहमित्र, २३, एषां प्रतिकूलान्यपि कानिचित् कानिचित्

नामान्युपलभ्यंते, अन्यच्च यंत्र मुद्रितपुस्तकेपि एवं दृश्यते-तद्
यथा-श्रीमन्महावीरात् परपरया तोसलीपुत्राचार्य आर्यरक्षित दुर्ब-
लिकापुष्पाचार्य वगेरे

१ सुधर्मास्वामी २० ८ आर्यसुहस्ति २९१
२ जंबूस्वामी ६४ ९ सुस्थितसुप्रतिबद्ध ३७२
३ प्रभवसूरि ७५ १० इन्द्रदिन्न ४२१
४ शय्यभव ९८ ११ दिनसूरि
५ यशोभद्र १४८ १२ शातिश्रेणिक १२ सिहगिरि ५४७
६ संभूतिविजय १५६ उच्चनागरीशाखानि० १३ वज्रसूरि ५८४
६ भद्रबाहूस्वामी१७० १४ वज्रसेन ५२० १४ पद्मरथसूरि
गोदास १५ चद्रवगेरे ४ १५ पुष्पगिरि
७ स्थूलभद्र १६ सामंतभद्र १६ फल्गुमित्र
१७ वृद्धदेवसूरि १७ धनगिरि
८ आर्यमहागिरि २४५ १८ वज्रस्वामी२७भूतदिन्न आर्यरक्षितसूरि
९ बहुलबलिस्सह १९ नंदिलक्ष्मण २८ लोहित्य
१० स्वातिहारितगोत्र २० नागहस्ति२९ दूष्यगणि-देवर्द्धिगणि०
११ श्यामाचार्य ,, २१ रेवती३० देववाचक(नंदिसूत्रनाकर्त्ता)
१२ शांडिल्यजीतधर २२ सिंह (ब्रह्मद्वीपिका शाखा)
१३ जीतधर २३ स्कंदिलाचार्य (माथुरीवाचना)
१४ समुद्र २४ हिमवत्
१५ मंगु २५ नागार्जुन
१६ धर्म २६ गोविंद
१७ भद्रगुप्त

वज्र	१८ प्रद्योतनसूरि	प्रभावकाचार्य
आर्यरक्षित	१९ मानवदेवसूरि	वृद्धवादी सिद्धसेनसूरि प्रियग्रंथसूरिः
शिवभूति	२० मानतुंगसूरि	हरिभद्रसूरि
कृष्णसूरि	२१ वीरसूरि	जिनभद्रगणि०
भद्रसूरि	२२ जयदेवसूरि	शीलाकाचार्य
नक्षत्रसूरि	२३ देवानन्दसूरि	कालिकाचार्य
नागसूरि	२४ विक्रमसूरि	आर्यमिसतसूरि
जेहिलसूरि	२५ नरसिंहसूरि	वप्पभट्टसूरि
विष्णुसूरि	२६ समुद्रसूरि	मल्लवादी
कालकसूरि	२७ मानदेवसूरि	आर्यखपुटाचार्य
संपलित, भद्र	२८ विबुधप्रभसूरि	विनयचंद्रसूरि
आर्यवृद्धसूरि	२९ जयानन्दसूरि	जीवदेवसूरि
संघपालितसूरि	३० रविप्रभसूरि	शांतिसूरि
आर्यहस्ति काश्यपगोत्र	३१ यशोदेवसूरि	हेमचंद्रसूरि
आर्यधर्म (सुव्रतगोत्र)	३२ विमलचंद्रसूरि	देवचंद्रसूरि
आर्यहस्त	३३ देवसूरि	जगचंद्रसूरि
आर्यधर्म	३४ नेमिचंद्रसूरि	मलयगिरिसूरि
आर्यसिंह	३५ उद्योतनसूरि	धनेश्वरसूरि

आर्यधर्म	३६ वर्धमानसूरि	अभयदेवसूरि
आर्यशांडिल्य	३७ जिनेश्वरसूरि	यशोभद्रसूरि
आर्यजंबू	३८ जिनचंद्रसूरि	वर्धमानसूरि
आर्यनन्दित	३९ जिनाभयदेवसूरि	सर्वदेवसूरि
आर्यदेशितगणि०	४० जिनवल्लभसूरि	वादीदेवसूरि
आर्यस्थिरगुप्त०	४१ जिनदत्तसूरि	हरिभद्रसूरि
आर्यकुमारधर्म	४२ जिनचंद्रसूरि	जिनप्रभसूरि
देवगुप्तसूरि	४३ जिनपतिसूरि	जिनभद्रसूरि
देवर्द्धिगणि०	४४ जिनेश्वरसूरि	जिनकुशलसूरि
सत्यमित्रसूरि	४५ जिनप्रबोधसूरि	जिनराजसूरि
उमास्वातिसूरि		जिनपतिसूरि
कालिकसूरि		जिनचंद्रसूरि
हरिभद्रसूरि		श्रीआनन्दघनजी
युगप्रधान०		श्रीदेवचंद्रगणिः
		इत्यादिसूरयः

॥ वीरात् प्रथम उदय ॥

१ सुधर्मास्वामी	२०	६ संभूतिविजयसूरि	१५६
२ जंबूस्वामी	६४	७ भद्रबाहुस्वामी	१७०
३ प्रभवसूरि	७५	८ स्थूलभद्रसूरि	२१५
४ शय्यंभवसूरि	९८	९ महागिरिसूरि	२४५
५ यशोभद्रसूरि	१४८	१० सुहस्तिसूरि	२९१

११ गुण(घन)सुंदरसूरि ३३५	१६ भद्रगुप्तसूरि	५३३	६३
१२ श्यामाचार्य ३७६	१७ श्रीगुप्तसूरि	५४८	७८
१३ स्कन्दिलाचार्य ४१४	१८ वज्रसूरि	५८४	१११
१४ रेवतिमित्रसूरि ४५०	१९ आर्यरक्षितसूरि	५९७	१२७
१५ धर्मसूरि वीरात् ४९४ विक्रमात् २४	२० पुष्पमित्रसूरि	६१७	१४७

॥ द्वितीय उदय ॥

२१ वज्रसेनसूरि	१५०	३३ संभूतिसूरि	८२९
२२ नागहस्तिसूरि	२१९	३४ माढरसंभूतिसूरि	८८९
२३ रेवतिमित्रसूरि	२७८	३५ धर्मरत्नसूरि	९२९
२४ सिंहसूरि	३५६	३६ ज्येष्ठागसूरि	१०००
२५ नागार्जुनसूरि	४३४	३७ फल्गुमित्रसूरि	१०४९
२६ भूतदिन्नसूरि	५१३	३८ धर्मघोषसूरि	११२७
२७ कालिकसूरि	५२४	३९ विनयमित्रसूरि	१२१३
२८ सत्यमित्रसूरि	५३१	४० शीलमित्रसूरि	१२९२
२९ हारिलसूरि	५८५	४१ रेवतिमित्रसूरि	१३७०
३० जिनभद्रसूरि	६४५	४२ सुमंमित्रसूरि	१४४८
३१ उमास्वातिसूरि	७२०	४३ अर्हन्मित्रसूरि	१४९३
३२ पुष्पमित्रसूरि	७८०		

लोकप्रकाशसर्गे ३४ युगप्रधाननामानि यथा, विषमेऽपि च कालेऽस्मिन् भवन्त्येवं महर्षयः, निर्ग्रंथः सदृशाः केचिच्चतुर्थारक-

चर्त्तिभिः ॥ १०० ॥ + + + श्रीसुधर्मोच जंबूश्च, प्रभवः-सूरिशेखरः, शय्यंभवो यशोभद्रः, संभूतिविजयाह्वयः ॥ ११४ ॥ भद्रबाहूस्थूलभद्रौ महागिरिसुहस्तिनौ, घनसुंदरश्यामार्यौ स्कान्दिलाचार्यइत्यपि ॥ ११५ ॥ रेवतीमित्रधर्मोऽथभद्रगुप्ताभिधोगुरुः श्रीगुप्तवज्रसंज्ञार्यरक्षितौपुष्पमित्रकः ॥ ११६ ॥ प्रथमोदयस्यैते विंशतिः सूरिसत्तमाः, त्रयोविंशतिरुच्यन्ते द्वितीयस्याथनामतः ॥ ११७ ॥ श्रीवज्रोनागहस्तिश्च रेवतीमित्र इत्यपि, सिंहोनागार्जुनो भूतदिन्नः कालकसंज्ञकः ॥ ११८ ॥ सत्यमित्रोहारिलश्च जिनभद्रोगणीश्वरः, उमास्वातिः पुष्पमित्रः संभूतिसूरि कुंजरः ॥ ११९ ॥ तथा माढरसंभूतो धर्मश्रीसंज्ञको गुरुः ज्येष्ठांगः फल्गुमित्रश्च धर्मघोषाह्वयोगुरुः ॥ १२० ॥ सूरिर्विनयमित्राख्यः शीलमित्रश्च रेवतिः, स्वप्नमित्रोर्हन्मित्रो द्वितीयोदयसूरयः ॥ १२१ ॥ स्युस्त्रयोविंशतिरेवमुदयानां युगोत्तमाः, चतुर्युक्ते सहस्रे द्वे मिलिताः सर्वसंख्यया ॥ १२२ ॥ एकावतारा: सर्वेऽमी सूरयोजगदुत्तमाः, श्रीसुधर्माश्च जंबूश्च ख्यातौ तद्भवसिद्धिकौ ॥ १२३ ॥ अनेकातिशयोपेता, महासत्त्वा भवन्त्यमी, घ्नन्तिसार्धद्वियोजन्यां, दुर्भिक्षादीनुपद्रवान् ॥ १२४ ॥ इत्यादि लोकप्रकाशमें लिखा है

उक्त च–येषां हि वस्त्रे न पतन्ति यूका, न देशभंगः खलु एषु सत्सु, पादोदकेन गदोपशान्ति, युगप्रधानं मुनयोवदन्ति ॥ १ ॥ तृतीयोदये इत्येतन्नामानि दृश्यन्ते–पादलिप्तसूरि जिनभद्रसूरि हरि-

भद्रसूरि शांतिसूरि हरिसिंहसूरि जिनवल्लभसूरि जिनदत्तसूरि जिन-पतिसूरि जिनचंद्रसूरि जिनप्रभसूरि धर्मरुचिगणि धर्मदेवगणि विनयचंद्रसूरि शीलमित्रसूरि देवचंद्रसूरि हेमचंद्रसूरि श्रीचंद्रसूरि जिनभद्रसूरि समुद्रसूरि सुखसूरि श्रीचारित्रसूरि धर्मघोषसूरि सूर-प्रभसूरि सूरप्रभसूरि जिनशेखरसूरि जिनप्रभसूरि श्रीविमलसूरि मुनिचंद्रसूरि श्रीदेवेन्द्रसूरि समुद्रसूरि श्रीदेवचंद्रगणिः श्रीलाभा-नन्दगणिः श्रीकीर्त्तिसारगणिः इत्यादि अष्टनवतिसंख्यया तृतीयो-दये युगप्रवराः भविष्यन्ति कियन्तः प्राग्भूता च तृतीयस्य वर्ष-संख्या इमा १४६४ सूरिसंख्यापूर्वं निर्दिष्टा श्रीसुधर्मतः समारभ्य सुविहितपरंपरायां चतुरशीतिगछपरंपरायां च ये युगप्रधानाः युग-प्रधानसमा ये च महान्तः प्रभावका सूरयो प्राग्भूता ये च भविष्यन्ति सर्वे ते गुणवन्तो ददातु भद्राणि संघाय, पुनरत्र यु० सूरिणां गृहस्था-दि पर्यायप्रबोधकानि यन्त्रकोष्टकानि सन्ति तदपि यथा दृष्टानि तथा लिख्यंते तथाहि—गृहस्थ, व्रत, युगप्रधानपद, सर्वायु—वर्षसंख्या,

॥ प्रथम उदय वर्ष ११७

प उ	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०
गृ	५०	१६	३०	२८	२२	४२	४५	३०	३०	२४	२४	२०	२२	१४	१८	२१	३५	८	११	१७
व्र	३०	२०	६४	११	१४	४०	१७	२४	४०	३०	३२	३५	४८	४८	४०	४५	५०	४४	५१	३०
यु प्र	२०	४४	११	२३	५०	८	१४	४५	३०	४६	४४	४१	३८	३६	४४	३९	१५	३६	१३	२०
सर्वा	१००	८०	१०५	९२	८६	९०	७६	९९	७०	७०	७०	९६	१०८	९८	१०२	१०५	७०	८८	७५	६७

२३ दत्तसूरि०

वर्त्तिभिः ॥ १०० ॥ + + + श्रीसुधर्मोच जंबूश्च, प्रभवः
सूरिशेखरः, शय्यंभवो यशोभद्रः, संभूतिविजयाह्वयः ॥ ११४ ॥
भद्रबाहुस्थूलभद्रौ महागिरिसुहस्तिनौ, घनसुंदरश्यामार्यौ स्कान्दिला
चार्यइत्यपि ॥ ११५ ॥ रेवतीमित्रधर्मोऽथभद्रगुप्ताभिधोगुरुः श्रीगुप्त
वज्रसंज्ञार्यरक्षितौपुष्पमित्रकः ॥ ११६ ॥ प्रथमोदयस्यैते विंशति
सूरिसत्तमाः, त्रयोविंशतिरुच्यन्ते द्वितीयस्याथनामतः ॥ ११७ ॥
श्रीवज्रोनागहस्तिश्च रेवतीमित्र इत्यपि, सिंहोनागार्जुनो भूतदिन्न
कालकसंज्ञकः ॥ ११८ ॥ सत्यमित्रोहारिलश्च जिनभद्रोगणीश्वरः
उमास्वातिः पुष्पमित्रः संभूतिसूरि कुंजरः ॥ ११९ ॥ तथा माढर
संभूतो धर्मश्रीसंज्ञको गुरुः ज्येष्ठांगः फल्गुमित्रश्च धर्मघोषा
ह्वयोगुरुः ॥ १२० ॥ सूरिर्विनयमित्राख्यः शीलमित्रश्च रेवतिः
स्वममित्रोर्हन्मित्रो द्वितीयोदयसूरयः ॥ १२१ ॥ स्युस्त्रयोविंशति
रेवमुदयानां युगोत्तमाः, चतुर्युक्ते सहस्रे द्वे मिलिताः सर्वसंख्यया
॥ १२२ ॥ एकावतारा: सर्वेऽमी सूरयोजगदुत्तमाः, श्रीसुधर्माश्च
जंबूश्च ख्यातौ तद्भवसिद्धिकौ ॥ १२३ ॥ अनेकातिशयोपेता,
महासत्त्वा भवन्त्यमी, घ्नन्तिसार्धद्वियोजन्यां, दुर्भिक्षादीनुपद्रवान्
॥ १२४ ॥ इत्यादि लोकप्रकाशमें लिखा है

उक्तं च-येषा हि वस्त्रे न पतन्ति यूका, न देशभंगः खलु एषु
सत्सु, पादोदकेन गदोपशान्ति, युगप्रधानं मुनयोवदन्ति ॥ १ ॥
तृतीयोदये इत्येतन्नामानि दृश्यन्ते-पादलिप्तसूरि जिनभद्रसूरि हरि-

भद्रसूरि शांतिसूरि हरिसिंहसूरि जिनवल्लभसूरि जिनदत्तसूरि जिनपतिसूरि जिनचंद्रसूरि जिनप्रभसूरि धर्मरुचिगणि धर्मदेवगणि विनयचंद्रसूरि शीलमित्रसूरि देवचंद्रसूरि हेमचंद्रसूरि श्रीचंद्रसूरि जिनभद्रसूरि समुद्रसूरि सुरसूरि श्रीचारित्रसूरि धर्मघोषसूरि सूरप्रभसूरि सूरप्रभसूरि जिनशेखरसूरि जिनप्रभसूरि श्रीविमलसूरि मुनिचंद्रसूरि श्रीदेवेन्द्रसूरि समुद्रसूरि श्रीदेवचंद्रगणिः श्रीलाभानन्दगणिः श्रीकीर्त्तिसारगणिः इत्यादि अष्टनवतिसंख्यया तृतीयोदये युगप्रवराः भविष्यन्ति कियन्तः प्राग्भूता च तृतीयस्य वर्षसंख्या इमा १४६४ सूरिसंख्यापूर्व निर्दिष्टा श्रीसुधर्मतः समारभ्य सुविहितपरंपरायां चतुरशीतिगछपरंपरायां च ये युगप्रधानाः युगप्रधानसमा ये च महान्तः प्रभावका सूरयो प्राग्भूता ये च भविष्यन्ति सर्वे ते गुणवन्तो ददातु भद्राणि संघाय, पुनरत्र यु० सूरिणा गृहस्थादि पर्यायप्रबोधकानि यन्त्रकोष्टकानि सन्ति तदपि यथा दृष्टानि तथा लिख्यंते तथाहि—गृहस्थ, व्रत, युगप्रधानपद, सर्वायु–वर्षसंख्या,

॥ प्रथम उदय वर्ष ११७

न उ	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०
गृ	५०	१६	३०	२८	२२	४२	४५	३०	३०	२४	१४	२०	२२	१४	१८	२१	३५	८	११	१७
व्र	३०	२०	६४	११	१४	४०	१७	२४	४०	३०	३२	३५	४८	४८	४०	४५	५०	४४	५१	३०
यु प्र	२०	४४	११	२३	५०	८	१४	४५	३०	४६	४४	४१	३८	३६	४४	३९	१५	३६	१३	२०
सर्वा	१०	८०	१०५	६२	८६	९०	७६	९९	१०	१०	१०	९६	१०८	९८	१ २	१०५	१०	८८	७५	६७

२३ दत्तसूरि०

द्वितीय उदय वर्ष १३४६

उ प्र ३३	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३
	९	१९	२०	१८	१४	१८	१२	१०	१७	१४	२०	८	१०	१०	१५	१२	१४	८	१०	११	९	१२	२०
मत	११६	२८	३०	२०	१९	२२	६०	६०	३०	३०	१५	३०	१९	३०	२०	१८	१३	१५	१९	२०	१६	१८	१६
	३	६१	५९	७८	७८	७९	११	७	५४	६०	७५	६०	४९	६०	४०	७१	४९	७८	८६	७९	७८	७८	४५
रवांशु	१२८	११६	१०९	११०	१११	११५	८३	४७	१०१	१०४	११०	९८	७८	१००	७५	१०१	७६	१०१	११५	११०	१०३	१०८	८१

तृतीय उदय वर्ष १४६४ युग प्रधान ९८

यु प्र ९८	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
गृ	९	१०	१६	१५	२०	१५	१०	१२	१५	२०	२५	१२	२६	१४	११
व्र ५०	८२	२०	४०	५०	३०	३०	३०	१२	३०	३०	२५	२०	३०	३०	३०
यु प्र	९	४५	५०	३०	४०	३०	३०	१२	३८	३८	३०	३९	२५	२९	३२
सर्वायु	१००	७५	१०६	९५	९०	७५	७०	३६	८३	८८	९०	७१	८१	७३	७३

इत्यादियन्त्रकोष्टकओरविजाणना, यथादृष्टलिखाहै ऊपरोक्त-युगप्रधानोंकेनामक्रममेभि आगेपीछेपणासंभवेहै, और एक युग-प्रधानकेनाम स्थानमें २–२ नामान्तरभिदेखणेमे आवे है, और प्राये बहुत ठिकाणें एसा है, पर्यायान्तरभिसंभवे है, और युगप्रधानोंकाक्रमभि प्रायेंलिखेप्रमाणें बरोबर नहिं मिले है, और सर्वायुवर्षसंख्यावगेरेभिप्रायेंबरोबरनहिंमिलता है और लिखेहुवे यंत्रादिककेसाहायसें कितनेकयुगप्रधानोंकेकेवल नाम मात्रतो प्राये मिलते है, और पूर्ण विश्वासुकपणे सर्व इष्टसिद्धि नहीं होसके है, परतु मेने तो जैसाअक्षरदेखावैसालिखा है, अब विशेषपणें अधिकृत विषयको लिखदिखातें हैं, कि–सामान्य यंत्र विशेषयुगप्रधानयंत्र सर्वसामान्ययंत्र छुटकरयंत्र इनमे युगप्रधा-नोंका विषय है और यहयंत्रदेखनेमेभिआते हैं प्राचीनभि है तथापि यथास्थितप्रमाणसहनशील नहींहै नमालूम क्या कारण है सो ज्ञानिगम्य है प्रसिद्ध अप्रसिद्धपणेंमें नजाणेंक्या कारण है कितनेक युगप्रधानतो प्रसिद्ध है और कितनेक युग-प्रधान अप्रसिद्ध हैं, इतिहास वगेरेमें, गौण मुख्य नाम नामान्तर भेदहोणेंसे, पठनलिखनकीअभ्यासप्रवृत्तिकेअभावसें, सत्संप्र-

दायके जाणनेवाले अल्पहोणेसें, अथवा लेसकप्रमादसें नाम अंकोंकाअस्तव्यस्तपणाभि होणेसें यंत्र विशेपलाभदायक नहीं संभव है, और विशेप परमार्थतो सत्‌संप्रदायिगीतार्थजाणें, वा केवली महाराज जाणें, प्रश्न युगप्रधान एकहि संप्रदाय विशेप गच्छमें होते हैं या भिन्न भिन्न गच्छमें होवे है, उत्तर–प्रायें भिन्न भिन्न समुदायविशेप गच्छोंमेंहि होवे है, एसासंभव है, एकहि गच्छ विशेपमे होवे ऐसा संभव नहीं है, और युगप्रधानोंकी सुवि- हित समाचारी होवे है, यह निश्चय है, और आगम आचरणाविरुद्ध मनकल्पित स्वकपोलकल्पित समाचारी नहींहोवे- यहभिनिश्चय है, "सव्वगुणेसु अप्पडिवाई" इस वचनसे, और अलग अलग- गच्छोंमें होनेपरभि सुविहित एक समाचारी होणेसें, अनुक्रमें सरलंग दो हज़ार चार (२००४) युगप्रधानोंकी एकपाटपरपरागिण- नेसें, एक गच्छ कहा जावे तो कोइ हरजनहीं है, अन्यथा नहीं संभवे है, सर्वयुगप्रधानोंकावचनसर्वगच्छवालोंकेमाननीयहोवे है, जिसनेयुगप्रधानोंके वचनोंका अनादरकिया उसने जिनाज्ञा भंगकिया यहनिःसंदेहजाणना और गुरुपरम्परासंप्रदायभि एसाहि है और विशेपपरमार्थज्ञानीगम्य है, और श्रीगुरुमहा- राजनें जिन अक्षरोंकोउच्चारणकरके नाम या पदवी दिया होवें वैसाहि कहा जावे और लिखा जावे, प्राचीनसंप्रदायभि ऐसाहि देखनेमे आवे है, इसलिये कितनेक युगप्रधानोंके नामोंके अंतमें, अमुकआचार्य, अमुकसूरि, अमुकगणि, अमुकक्षमाश्रमण, अमुक वाचनाचार्य वगेरे पदान्तवाले, युगप्रधानोकानामदेखनेमें

आवे है, सर्वगच्छके श्रीसंघमें और युगमें प्रधानहोणेसैं अर्थात्-श्रीवीरशासनमें प्रधानहोणेसै, युगप्रधानाचार्य महाराज होतें हैं और युगप्रधानाचार्य महाराजके वस्त्रोंमें जूं नहीं पडे १ जिस देशमें वा नगरादिकमे विचरते होवे उसका भंग न होवे २ चरणप्रक्षालित जलसैं रोगकी शाति होवे ३ दुर्भिक्ष दुःकालादि १० कोशपर्यंत उपद्रव न होवे ४ यह ४ अतिशय संयुक्त होवे हैं, अतः सर्वयुगप्रधानोंके वचनोंमे शंकारहित अप्रतिहतपणें प्रवृत्तिकरणी चाहिये और ऐसे महाप्रभावक युगप्रधान आचार्योंको न माने न पूजे और निंदाअ वर्णवादादि करे वह पुरुष मिथ्यात्वी अज्ञानी है और इस अवसर्पिणीकालके पांचमे आरेमें २३ उदयमें श्रीमहावीरभगवन्तके निर्वाणसै श्रीसुधर्मास्वामीसे लेके यावत् श्रीदुप्पसहसूरिपर्यन्त दो हजार चार युगप्रधान होगा, वाद धर्मान्त होगा, और यह २००४ की संख्या इस तरह होणेसे पूर्णहोगी कि एक युगप्रधानकेस्वर्गजानेपर दूसरा युगप्रधानका पाट महोत्सव होवेगा इसअनुक्रमसैं पांचमे आरेके २१ हजार (२१०००) वर्ष पूर्ण होगा और धर्मांत होगा इस तरह होनेसैं इस समय ५९ मा युगप्रधान विचरते होने चाहिये वि० सं० १९७२ के सालमें पाट महोत्सव है जिनोंका ऐसे सिद्धगेहसूरि नामका चाहीये और विशेष तत्त्वकेवलीगम्य है.

और नवांगवृत्तिकर्त्ता श्रीअभयदेवसूरिजी रचित आगमअष्टोत्तरीके वचनसैं श्रीवीरस्वामीके प्रथमपदमे श्रीगौतमस्वामी द्वितीयपट्टे श्रीसुधर्मास्वामी तृतीयपट्टे श्रीजम्बूस्वामी इत्यादि गणधरपरपरा जाणना और श्रीपुष्पमित्रादि अरिहमित्रपर्यन्त नामके आचार्य पूर्व-

श्रुतगतसत्तामें हो चुके ऐसा संभवे है निश्चयसें तो श्रीज्ञानीमहाराज जाणें और श्रीगणधरसार्धशतकप्रकरण १ श्रीगणधरसार्धशतकबृहत्वृत्ति २ तथा लघुवृत्ति ३ उपदेशतरंगिणीप्रकरण ४ कल्पान्तरवाच्य ५ समाचारीशतक ६ श्रीकौटिकगच्छपट्टावलीप्रकरण ७ उपाध्याय श्रीक्षमाकल्याणगणिकृत खरतरगच्छपट्टावली ८ श्रीगुरुपारतंत्र्य-स्मरण ९ प्राचीन जैन इतिहास वगेरे ग्रंथोंसें श्रीजिनदत्तसूरि आदि आचार्योंको युगप्रधानपद प्राप्त होवे है, अर्थात् युगप्रधानकरके लिखे हैं, और मध्यस्थ आत्मार्थी धर्मार्थी गुणानुरागी भव्य जीवोंके दृष्टिपथमें आयरहे हैं, और इससेंभी प्राचीनप्रमाण ६ ग्रंथोंका ऊपर लिखआयें हैं अखंड गुरुपरम्परा संप्रदायभी ऐसाहि है, इससै यह निश्चय हूवा कि श्रीजिनदत्तादिआचार्ययुगप्रधान हैं, अतः इनमहापुरुषोंकाचरित्रादिवर्णनकरनासम्यक्त्वादि गुणोंकी प्राप्तिमें हेतु भूत अतिउत्तम कार्य है इसलिये श्रीवीरनिर्वाणसै श्रीवर्द्धमानस्वामीके पट्टपर श्रीगौतमसुधर्मादिक युगप्रधानोंसें लेकर श्रीजिनवल्लभसूरिजीपर्यन्त युगप्रधानमहाराजोंकाचरित्रकथोंके अनन्तर क्रम प्राप्त युगप्रधान श्रीजिनदत्तसूरिजीमहाराजका चरित्र कहेतें हैं, तद्यथा—श्रीमंतःप्रभुपुंडरीकगणभृन्मुख्यागणाधीश्वरा-स्त्रैलोक्यार्च्ययुगप्रधानकमलाभूपाभृताः सूरयः, अन्येच प्रवरा मुनी-द्रनिकराः श्रीसाधुसाधुव्रजाः, श्रीकल्पद्रुमजैत्रचारुमहसः कुर्वन्तु-वः सत्फलं ॥ १ ॥ नानालब्धिनिधिनदीपरिदृढश्रीपुंडरीकादिम, ज्ञानध्यानचरित्रसद्गुणगणावासानगारेश्वरान्, संस्तुमः, मयकात्र-वृत्तमिपतः संप्राप्यपुण्यं ततो, भव्यौघः प्रतनोतु सिद्धिकमला-

पाणिग्रहणोत्सवम् ॥ २ ॥ लब्ध्वायदीयचरणांबुजतारसारं, स्वाद्च्छटाधरितदिव्यसुधाममूहं, संसारकाननतटेप्वटतालिनेव पीतो मया अनरगोधरसग्राहः ॥ ३ ॥ वन्दे मम गुरुं तं च, सूरिकृपाचंद्राह्वयं, परोपकारिणां धुर्यं, चित्रं चारित्रमाश्रितम् ॥ ४ ॥ कमलदलविपुलनयनाः, कमलमुखीकमलगर्भसमगौरी, कमलेस्थिताः भगवती, ददातु श्रुतदेवता सौख्यम् ॥ ५ ॥ अधुनैतत्प्रकरणकाराणां श्रीजिनदत्तसूरीणां यथाश्रुति यथास्मृति किंचिच्चरित्रमुत्कीर्त्यते, व्याख्या—अब क्रम प्राप्त और पूर्वनिर्दिष्टप्रकरणके कर्त्ता अंबाप्रदत्त युगप्रधानपदधारक एकलाख तीसहजार घरकुडुम्ब प्रतिबोधक और तीसरे भवमें ‑सकलकर्म निर्जरी मोक्ष जानेवाले और इस पंचमआरेमे सर्वोत्कृष्टपणें श्रीवीरशासनकी तथा धर्मकी तथा संघकी वृद्धि करणे पूर्वक महाउपकारकरणेंवाले मुख्य आचार्य श्रीजिनदत्तसूरीश्वरकास्तुतिधर्मदेसनादिरहितकेवल मूलमात्रचरित्रलेशस्मृतिकेअनुसार जैसासुणा है उसीतरह कुच्छ बिन्दुमात्र कहनेमे लिखनेमे आता है, तथाहि—प्रथम श्रीजिनेश्वरसूरिजीके समयमेंश्रीधर्मदेवउपाध्यायभए उन्होकी गीतार्थी साधवीयोने सिद्धान्तकीजाननेवालीगीतार्था बहुत साध्वियों है उनमें कितनीक साधवीकोंने धवलक नामके नगरमे चतुर्मासक किया था वहा क्षपणक भक्त (आशाम्बर भक्त) हुम्बडगोत्रीय वाछिकश्रावककीस्त्रीवाहडदेवी नामकी पुत्रसहित रहती थी साध्वियोंके पासमें धर्मसुननेको आतीथी साध्वियोभी विशेष करके उसको धर्मकथादिक कहती थी वाहडदेवीभी पुत्रसहित श्रद्धापूर्वक

सुनती थी और साध्वियों पुरुषका लक्षण शुभाशुभ गुरूके उप-
देशसे जानती हैं उसके पुत्रका प्रधान लक्षणदेखके लाभके
निमित्त वाहडदेवीको ऐसा उपदेश दिया कि जिससे कहे माफक
करनेवालीभई बाद श्रमणियोंने वाहडदेवीसे कहा हे धर्मशीले
यह तेरा पुत्र विशिष्ट युगप्रधानके लक्षण धारनेवाला है इसलिये
जो तै इसको हमारे गुरूको देवे तब तेरेको महाधर्मका
लाभ होवे औरसुन यहतेरापुत्रसर्वजगत्कामुकुटभूतपूज्यहोगा
वाहडदेवीने भी आर्यायोंकावचनअंगीकारकियाबादचतुर्मासिके-
अनन्तरश्रीधर्मदेवउपाध्यायको साध्वियोंने कहवाया कि हमको
यहां एकरत्नमिलाहै जो आपके ध्यानमें आवे तो ठीक
होवे इसलिए आप यहां कृपा करके पधारें बाद श्रीधर्म-
देव उपाध्याय धवलक नाम नगरमेंआए उसबालककोदेखा
और निश्चयकिया कि यहसामान्यपुरुष नहीं है किंतु प्रशस्त
लक्षणयुक्त पुण्यशाली बड़ेपदके योग्य होगा उस पुत्रकी मा-
तासे पूछा इस तेरे पुत्रको दीक्षादेवें यह तेरे सम्मत है तब
वाहडदेवी बोली हे भगवन् प्रसन्न होके आप दीक्षा देवें जिससे
मेराभी निस्तार होवे तबउपाध्यायने और पूछा इसकी कितने
वर्षकी उमर है वाहडदेवी बोली ११३२ का जन्म है जब इसका
जन्म हुआ था तब बहुतही प्रशस्तबाते भई थीं जबयहगर्भमें
आया था तब प्रशस्त स्वप्नहुआथा ऐसा सुनके धर्मदेव उपा-
ध्यायने ११४१ के सालमें शुभ लग्नमें दीक्षा दिया सोमचन्द्र ऐसा
नाम स्थापा उपाध्यायोंने सर्वदेवगणीसे कहा तुम्हारे इसकी रक्षा
करनी अर्थात् प्रतिपालना करनी बहिर्भूमिवगेरह लेजाना क्रिया-

कलापका सिखाना इत्यादि, और श्रावककेसूत्रादिपाठ तो उसके पहले घरमें रहे हुएही सीखा है "करेमि भन्ते सामाइयं" इत्यादि पढ़ाना शुरू किया पहिलेहीदिन सोमचन्द्र मुनिको वहिर्भूमि लेगए सर्वदेवगणी ॥ बाद सोमचन्द्रने नहींजाननेसे क्षेत्रमे वनस्पतिके पत्र तोडे तब शिक्षानिमित्त रजोहरणमुखवस्त्रिका लेके सर्वदेवगणी बोले दीक्षा लेके क्षेत्रमें क्या पत्रतोडेजावे हैं इसलिए तैं अपने घरजा तब उत्पन्नभईहैप्रतिभाजिसको ऐसा सोमचन्द्र बोला आपने युक्त किया परन्तु मेरी जो चोटीथी सोआपदीजिए जिससे मैं घरजाऊं ऐसा कहनेसे सर्वदेवगणी को आश्चर्यहुआ और विचारा अहो छोटीउमरका है तथापि कैसा इसने उत्तर दिया इसको क्या कहा जावे बाद उससें कहा हेवत्स ऐसा करनानहीं तब सोमचन्द्र बोला हे भगवन् यह मेरा एकअपराधक्षमा करे बाद गणिवर सोमचन्द्रको उपाश्रयलेआए यहवार्ता धर्मदेवउपाध्यायके आगेभई धर्मदेव उपाध्यायने विचारा योग्यहोगा गुणविशिष्टहोगा इसकी रक्षा अच्छीतरहसे कीजावे गणमें आधारभूत होगा ऐसा विचारके सर्वदेवगणीसेकहा इसकीरक्षा अच्छीतरहसे करनी बादमे विहार-करके पाटन आए लक्षण नाम व्याकरण न्यायपंजकादिशास्त्र पढ़नेशुरूकिए सोमचन्द्रने, एकदा भानडाचार्यकी धर्मशा-लामें पंजिका पढनेके लिए जाते हुए सोमचन्द्रको किसीउद्ध-तने कहा जैसे अहो यह सितपट कपलिका (पुस्तक विशेष) हाथमें किसवास्ते रखते हैं अर्थात् पुस्तक लेके क्यों फिरते हैं

तब सोमचन्द्रबोले तेरेको निरुत्तर करनेके लिए और अपना मुखमण्डनके अर्थ, निरुत्तर होके चला गया कुछ नहीं बोलसका धर्मशालामें गए वहां अनेक अधिकारियोंकेपुत्रपंजिका पढ़ते हैं कोई वक्त आचार्यने परीक्षाके वास्ते पूछा कि भो सोमचन्द्र न विद्यते वकारो यत्र स नवकारः इति यथार्थनाम? नहीं विद्यमान है वकार जिसमें वह नवकार यथार्थ नाम है तब शीघ्रबुद्धिमान सोमचन्द्र बोला आचार्य ऐसा नहींकहे किंतु नवकरणं नवकारः ऐसी व्युत्पत्ति करनी अर्थात् अंगुलियोंके बारहविभ्रोंपर नववेर गुनना वह नवकार कहाजावे पंचपरमेष्ठीके १०८ गुणका स्मरण नवकारमें होता है ऐसा सुनके आचार्यने जाना अत्यन्त यह श्रेष्ठ उत्तर है इसके साथ कोई छात्र नहींबोलसकताहै अन्यदा लोचके दिनमें सोमचन्द्र पढ़नेको नहीं गया और व्याख्यान व्यवस्था तो ऐसी है की जो एकभी विद्यार्थी नहीं आवे और सब विद्यार्थी आजावे तथापि आचार्य पाठ देवेनहीं वाद आचार्य ने पाठ जब नहींदिया तब गर्भसहित अधिकारियोंके पुत्रोंने आचार्यमिश्रसे कहा हे भगवन् सोमचन्द्रके ठिकाने यह पाषाण रखा है आप व्याख्यान कहिए तब उन्होंके उपरोध (आग्रह) से आचार्यने व्याख्यान किया ॥ दूसरे दिन सोमचन्द्र आया पूछा गतदिनमें व्याख्यान मेरे विना क्या आपने कहा तब आचार्य बोले तेरे ठिकाने इन छात्रोंने पाषाण रखा सोमचन्द्र बोला कौन पाषाण है और कौन नहीं है ऐसा अभी जाना जायगा जितनी पंजिका पढीहै मेरेसेभीपूछे इन्होंसेभीपूछें जो यथार्थ व्याख्यान नहीं

करेगा वही पापाण है आचार्य बोले भो सोमचन्द्र तुमको प्रज्ञादि सौरभ्य गुणाढ्य कस्तूरीके जैसा जानता हूं परन्तु इन मूर्ख लोगोंने व्याख्यान करनेमें मेरी प्रेरणा करी इस कारणसे क्षमाकरना ऐसें पंजिका पढी अशोकचन्द्राचार्यने उपस्थापना किया अर्थात् बड़ी दीक्षा दी हरिसिंहाचार्यने सर्वसिद्धान्त पढ़ाए और मन्त्रकी पुस्तके पण्डितसोमचन्द्रकोदी जिसपुस्तकपर हरिसिंहाचार्यने सिद्धा-न्तकी वाचना ग्रहण करी थी वह पुस्तक प्रसन्न होके सोमचन्द्रको दी देवभद्राचार्यनेभी संतुष्टमान होके लिखनेकी सामग्री दी जिससे महावीर चरित पार्श्वनाथ चरितादि चार कथाशास्त्र पट्टीपर लिखे इस प्रकारसे पण्डित सोमचन्द्रगणी ज्ञानी ध्यानी सैद्धांतिक सब लोगोंका मन हरन करनेवाला व्याख्यान करके श्रावकोंके मनमें आल्हाद करते सर्वाचारपालते हुए ग्रामानुग्रामविचरते भए ॥ इधरसे श्रीदेवभद्राचार्यने श्रीजिनवल्लभसूरि देवलोक गए यह सुना विचारकिया अत्यन्तचित्तमेंसंतापभया अहो सुगुरुकापद उद्योतनानहुआथा प्रकाशितकियाथा परन्तु देववशसे थोडे दिनोंमें जिनवल्लभसूरिकाआयुःपूर्णहोगया अब क्याकिया जावे ऐसे विचारते देवभद्राचार्यने औरभी ऐसा विचारकिया जो श्रीजिनवल्लभसूरिजी युगप्रधानकेपट्टपरयोग्यआचार्यस्थापने कर नहीं आदरकियाजावे तब क्या हमारी भक्ति है इसलिये कोईयोग्यव्यक्तिको आचार्यपददेके श्रीजिनवल्लभसूरिजीके पट्टधर कर तब मनोरथसफलहोने वादमें विचारकरने लगे पद योग्य कौन है उतने पण्डित सोमचन्द्रगणीका स्मरण हुआ निश्चय

विचार किया सोमचन्द्रगणीहीयोग्य है श्रावकोंको ज्ञानध्यान क्रियामेंप्रवर्तानेकर आनन्दकारीहै वाद सबकी सम्मतिसे पण्डित सोमचन्द्रको लेख भेजा उसमें लिखा चित्रकूट (चितौड़) नगरमें जल्दीआना जिससे श्रीजिनवल्लभसूरिजीके पट्टपर पद स्थापन होगा ऐसापत्र लिखा उसमें औरभीलिखा नहीं जाना जाय है कौनबैठेगा श्रीजिनवल्लभसूरिजी जब आचार्य भए तब तुम नहीं आए इसवक्त श्रीजिनवल्लभसूरिजीके पट्टपर बैठनेके लिए बहुतसे विशालहैंनेत्र जिन्होके गौरवर्णवाले बड़े २ कान हैं जिन्होंके ऐसे साक्षात मकरध्वजके जैसे गुर्जरदेशमें उत्पन्न भए साधुः उद्यमवानभएहैं परन्तु योग्यतातो गुरूही जाने है ऐसा पत्रभेजा वादमें देवभद्राचार्य और पण्डित सोमचन्द्र औरभी साधुः चित्रकूट आए सबलोग जानते हैं सामान्य प्रकारसे, श्री-जिनवल्लभसूरिजीके पट्टपर आचार्य होंगे परन्तु नहीं जाना जावे है कौनबैठेगा श्रीजिनवल्लभसूरिप्रतिष्ठित साधारण श्रावकने करवाया श्रीमहावीरस्वामीका चैत्यमें पद स्थापन होगा वाद विचारा हुआ लग्नका दिन उसकेपहलेदिन श्रीदेवभद्राचार्यने एकान्तमें सोमचन्द्रगणीसेकहा अमुकदिन तुम्हारेलिए पदस्थापनका लग्न विचारा है पण्डित सोमचन्द्रने कहा जो आपके ध्यानमें आवे सो युक्त है परन्तु जो इसलग्नमे पदस्थापना करेंगे तब बहुत काल जीना नहीं होगा ६ दिनोंके वाद अर्थात् वैशाखवदिछठ शनिश्चरवारको लग्न अच्छाहै उसलग्नमें पदस्थापना करनेसे अपने चारो दिशामे विहारकरनेसे चार प्रकारका श्रीश्रमणादि

संघ श्रीजिनवल्लभसूरिकेरचनसे बहुतहोगा चिरकालजीवित होगा तब श्रीदेवभद्राचार्यबोलेयहीहमविचारतेहैं वह लग्नभी दूर नहीं है बाद उसदिन श्रीजिनवल्लभसूरिके पट्टपर विस्तार विधिसे संध्यासमयलग्नमे पदस्थापनाकिया अर्थात् पण्डित सोमचन्द्रगणीको आचार्यपद दिया श्रीयुगप्रवर जिनदत्तसूरि, ऐसा नामकिया तदनंतर वादित्रवाजते उपाश्रयआए प्रतिक्रमणके अनन्तर वन्दनादेके श्रीदेवभद्रसूरिनेकहा देशनादेओ तब सिद्धान्तोक्त उदाहरणको अनुसरण करके अमृतश्रावणी गीर्वाण वाणी प्रवन्धकरके अर्थात् प्राकृत संस्कृत भाषासे श्रीजिनदत्त-सूरिपूज्योंने ऐसीदेशनाकरीकि जिसको सुनके सब प्रजारजित भई और लोग कहने लगे सिंहोंके स्थानमें सिंहही बैठे हुए शोभे हैं सोमचन्द्रगणिका शरीर छोटा था और श्यामवरण था उन्होंकों देखके जब पदस्थापनाका निर्णय भया तब लोगोने विचारा यह क्या बैठेगा गौरवरण विशाललोचन ऐसे गच्छमे बहुत साधु हैं इत्यादि लोगोंकेमनमेंविचारथा सो सब दूर होगया लोग कहने लगे अहो धन्य है यह देवभद्राचार्य जिन्होने ऐसे रत्नकी परीक्षा करी और हमारे जैसे अल्पबुद्धिवाले आप्तलक्षण क्याजानें वादमें विहार करते हुए और भव्योंको प्रतिबोधते असत्मार्गको दूर करते सद्मार्गमें प्रवृत्ति कराते क्रमसे गुर्जरदेशमे पाटणनगर आए संघने महोत्सवके साथ प्रवेशकराया देशना दिया देशना सुनके लोग कहने लगे यह आचार्य क्या आए हैं साक्षात् बृहस्पति आए हैं साक्षात् गणधरके अवतार हैं अन्य दिनमे श्रीदेवभद्राचार्यने

जिनदत्तसूरिजीसे कहा कितने दिनोंके अनन्तर श्रीपत्तनसे विहार करना श्रीजिनदत्तसूरि बोले इसीतरह करेंगे ॥ अन्यदिनमें जिनशेखरने साधुविषयमें कुछ कलहादिक अयुक्त किया तब देवभद्राचार्यने निकाल दिया बाद जहां जिनदत्तसूरि बहिर्भूमि जाते थे वहां जाके रहा वहां आए भए पूज्योंके पगोंमें पडकर दीनवचनसे जिनशेखर बोला हेप्रभो मेरा यह अन्याय एकवक्त आप क्षमा करें दूसरी वक्त ऐसा नहीं करूंगा तब कृपासमुद्र श्रीजिनदत्तसूरिने जिनशेखरको प्रवेशकराया अर्थात् ले आए उसके बाद देवभद्राचार्यने कहा तुमने युक्त नहीं किया यह दुरात्मा तुमको सुखदेनेवाला नहीं होगा पामायुक्त उष्ट्रके जैसा इसको बाहिर निकालनाही युक्त है तब श्रीजिनदत्तसूरि बोले श्रीजिनवल्लभसूरिके पीछे लगा हुआ यह है अर्थात् साथमें यह रहताथा जबतक यह आज्ञामें वर्तता है तबतक रखते हैं देवभद्राचार्य बोले जैसी इच्छा बाद श्रीदेवभद्राचार्य आदिकने पाटनसे अन्यत्रविहारकिया कितने कालके बाद समाधिसे आयुःपूर्ण करके स्वर्गपधारे, श्रीजिनदत्तसूरिभी पत्तनसे विहारकरनेकीइच्छा करते श्रीदेवगुरूसरणके अर्थ तीन उपवास किए तदनंतर देवलोकसे श्रीहरिसिंहाचार्य आए और बोले किसवास्ते मेरा सरण किया आचार्य बोले कहा विहारकरें तब हरिसिंहाचार्यदेव बोले मरुस्थलादि देशोंमें विहार करना ऐसा कहके अदृश्यहोगए जबतक पूज्य नहीं रहते हैं विहार करनेवाले हैं लब्धोपदेश हैं उतने मरुस्थलमे रहनेवाले मेहर, भापकर, वासल भर्तादिक श्रावक व्योपारकेवास्ते वहा आए

वहां श्रीजिनदत्तसूरिगुरूका दर्शन करके और देशना सुनके संतोष पाया बहुत हर्षित भए और श्रीजिनदत्तसूरिजीको गुरूपने अंगीकार किया भरतआचार्यके पासमें अध्ययन करनेको रहा और मेहरमापकरादि स्वस्थान गए अपने कुटुम्बके आगे गुरूके गुणका वर्णन करे इसवक्तमें शुद्धचारित्र पालनेवाले कलिकालमे सर्वज्ञतुल्य श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराज हैं इत्यादि, बादमे विहारकिया उस देशमें प्रवेशभया और नागपुर (नागौर)में आए वहां श्रावक धनदेवसेठ भक्ति करे आयतन अनायतनादि विचार सुनके धनदेवने कहा हेभगवन् मेराकथनआप करे तो सब श्रावकवर्ग आपके परिवारभूत होजाय तब पूज्योंने नही जानते होवे ऐसे होके बोले हे धनदेवसेठ वह क्या है तब धनदेव बोला हे भगवन् आयतन अनायतन विधि अविधि सर्व विषयमें आप नही कहते है तो सब लोग आपके भक्त होजावे ऐसा सुनके श्रीपूज्योंने कहा हे धनदेव सुनो

तावकीनं, वचनं कुर्मो, उत नु तीर्थ कृतां ।
"यदनायतनं सूत्रे, भणितं तद्रूमहे नियतं" ॥ १ ॥
उत्सूत्र भाषणात्पुनरनन्तसंसारकारणात् बहुशः
किं लोकेन त्वग् रोगिणो, भवेत् प्रचुरमक्षिकासंगः २
"मैवं मंस्था बहुपरिकरो जनो जगति पूज्यतां याति ।
येन बहुतनययुक्तापि शूकरीगूथमश्नाति" ॥ ३ ॥

अर्थः—तुम्हारेवचनकरे अथवा तीर्थकरोंके वचन करे जो सूत्रमें अनायतन कहा है वह हम कहते हैं ॥ १ ॥

उत्सूत्र भाषणकरनेसे अनन्तसंसारपरिभ्रमणकरना होता है तो ऐसे बहुत लोग इकट्ठे होनेसे क्या होवे है केवल भवभ्रमणही होवे है जैसे लगूरोगी पुरुषको बहुतमक्षियोंका संगहोवे तो क्या होवे अपि तु रोगवृद्धि होवे इसीतरह उत्सूत्रभाषण करनेसे संसार-वृद्धि होवे है ॥ २ ॥

ऐसा मत जानो कि बहुतपरिवारवाला मनुष्यलोकमें पूज्यता पावे है किंतु जिस कारणसे बहुत पुत्रयुक्त सूकरी विष्टा खाती है इसवास्ते जिनआज्ञासे विरुद्ध करनेवाला क्या प्रशंसनीय होवे है अपि तु नहीं होवे है ॥ ३ ॥

ऐसा अत्यन्त कर्णकटुक दुःखउत्पादक वचन धनदेवके भया तथापि गुरूको तो युक्तही कहना उहितहे कहाभी है

> "रूशउवा परो मा वा, विसं वा परियत्तउ, भासि-
> अवा हियाभासा, सपक्ख गुणकारिआ" ॥ १ ॥

अर्थः—सुननेवाला नाराज होवे या न होवे परन्तु भासा ऐसी कहनी चाहिये जिसका परिणाम विषपरावर्तन होके अमृतका परिणाम होवे स्वपक्षगुणकारिणी बाधारहित होवे अर्थात् सिद्धान्तसे विरुद्ध नही होवे ॥ १ ॥

ऐसा सिद्धान्तप्रमाणसे आचार्यने कहा तब कितने विवेकी लोगोंने वचन प्रमाण किए और कितने मध्यस्थ रहे बाद नागपुरसे अजमेर तरफ विहार किया क्रमसे अजमेर आए वहां आशधर साधारण, रासल वगैरहः श्रावक रहते हैं श्रीजिनदत्तसूरि देव-वन्दनाके अर्थ वाहणदेव श्रावकका बना हुआ जिनमंदिरमें जाते हैं

अन्यदा वहांका आचार्य उसी चैत्यमें आया पर्यायसे छोटा है वह आचार्य चैत्यमें आए हुए जिनदत्तसूरि का व्यवहार नहीं करे तब ठक्कुर आशधर वगेरेह ने कहा यहा जिनमंदिरमें आनेका क्या फल है जो युक्त प्रवृत्ति न होवे वादमें देव वन्दनादि व्यहवार निवृत्त हुआ तब श्रावको ने अरण राजसे विनती किया हेमहाराज हमारे गुरु श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराज यहां पधारे हैं राजा बोले वहुत श्रेष्ठ है हमारे योग्य कार्य हो सो कहो तब श्रावको ने कहा हे देव कितनीक जमीन चाहिये है जिसमे जिनमंदिर वगैरह देवस्थान बनाए जावे और अपने कुडुम्बके रहनेके लिए घरभी बनाया जावे, वाद अरणराजने कहा दक्षिणदिग्भागमे जो पर्वत है उसपर जितनीजमीनचाहिये उतनी लेलो देवघरवगैरह वहा निशक बनाओ. अपने गुरूका मेरेको दर्शनकराना यह स्वरूप आचार्यके आगे श्रावकोंने कहा आचार्य विचारके बोले अहो जो इस प्रकारसे हमारे दर्शनकी उत्कंठावाला है राजा उनको बुलानेसे गुणहीहोगा वाद गुरुका वचनके अनुकूल हुए श्रावकोंने भव्यदिनमे अर्णराजाका आमन्त्रण किया राजा शीघ्र आए श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराजको राजाने नमस्कार किया आचार्यने आशीर्वाद देके अभिनन्दित किया वह आशीर्वाद यह, है—

"विश्वविश्वविनिर्म्माणस्थितिप्रलयहेतवः ।
संतु राजेन्द्र भूत्यै ते, ब्रह्मश्रीपतिशंकराः" ॥ १ ॥

तथा—"नीतिश्चित्ते वसति नितरां लब्धविश्रांतिरुच्चैः
श्रीरस्याङ्के भुजयुगलमध्याश्रिता विक्रमश्रीः ।

एषोऽत्यर्थं क्षिपति बहुभिर्लोकवाक्यैः प्रियो मा-
मित्यर्णो राड् भ्रमति भुवनं कीर्तिरस्ताश्रया ते" ॥२॥

अर्थः—हे राजेन्द्र सब जगतकी रचना स्थिति और प्रलयके कारण ऐसे ये ब्रह्मा विष्णु शंकर तुह्मारे सम्पदाके लिए हो' ॥१॥

हे राजन् नीति चित्तमें वसे हैं अतिशय विश्रांति पाई है प्रयत्नसे जिसने और लक्ष्मी जिसके अंगमें रहती है और पराक्रम श्रीने दोनों भुजका आश्रय किया है बहुतलोगोंके वाक्यसे यह अर्ण राजा अत्यर्थ मेरी प्रेरणा करता है प्रिय ऐसा मानके कीर्ति तुह्मारा आश्रय नहींमिला है जिसको ऐसी जगतमें फिरती हैं इसका क्या कारण है ॥ २ ॥

इत्यादि सद्गुरुके मुखकमलसे निकली भई वाणी सुनके राजा संतुष्टमान हुआ और बोला आप कृपा करके निरतर यहां ही रहें दर्शनका लाभ होगा, गुरु बोले महाराजने ठीक कहा परन्तु हमारी यह स्थिति है कि हम सर्वत्र विहारकरते हैं लोगोके उपकारके लिए यहां पुनः पुनः आवेगें जैसे आपके समाधान होगा वैसा करेंगें बादमें राजा प्रसन्न होके उठे आचार्यको नमस्कार कर के स्वस्थान गए बाद पूज्योंने ठकुर आशधरसे कहा यथा

"इदमन्तरमुपकृतये, प्रकृतिचला यावदस्ति संपदियं ।
विपदि नियतोदयायां, पुनरुपकर्तुं कुतोऽवसरः" ॥ १ ॥

यह संपदा स्वभावसे चपल है इससे उपकार होवे तवही इसका फल है इसलिए सुकृतमें इसका नियोग करना अर्थात् लगाना प्राणियोंकी आपदाका उद्धार करना जीवरक्षादि प्रकारमें इसका व्यय करना उचित है ॥ १ ॥

इस कारणसे स्तम्भनक शत्रुंजय, गिरनार इन तीर्थोंकी कल्पना करके श्रीपार्श्वनाथस्वामीश्रीऋषभदेवस्वामीश्रीनेमिनाथस्वामी इन्होंके बिंबोंकी स्थापनाका विचार करना ऊपर अंबिकादेव कुलिका नीचे गणधरादिस्थानविचारना ऐसा कहके श्रीपूज्योंने वागड़देशकीतरफ विहारकिया अच्छे शकुनभए वागडके लोगोंको श्रीजिनवल्लभसूरिजीने पहलेही बोध दियाथा उन्होंका समाधान कियाथा श्रद्धालुः कियेथे जिनवल्लभसूरिजीके नाम ग्रहणमें भी नमनशील थे अर्थात् नमस्कारकरतेथे और जिनवल्लभसूरिजीके देवलोकगमनकीवार्ता सुनके उन्होंकाचित्तखिन्न हुआथा बादमें जिनवल्लभसूरिजीके पदपर स्थापित भए श्रीजिनदत्तसूरिनामकेगुरु ज्ञानध्यानगुणसहित श्रीमहावीरस्वामीनदनाविंदसे निकलाहुआ जो अर्थ श्रीसुधर्मास्वामी गणधर ने रचाहुआ सिद्धान्तके जाननेवाले युगप्रधान तीर्थकरकल्प इस वागडदेशमें विहारकरके पधारते हैं ऐसासुनके बहुत हर्षित भए दर्शनकीउत्कंठा भई आचार्यकेचरणकमलमें वदनाकरनेके लिए आए बाद श्रीपूज्योंका दर्शनकरके वंदना कर और देशना सुनके अत्यन्तआनन्द प्राप्तभए जो जो वह श्रावक प्रश्न करे उसका उत्तर केवलीके जैसा देताहुआ उन्होंके मनमें समाधान उत्पन्न करें कइयोंने सम्यक्त्वअगीकारकिया केई देशविरति भए केइक नें सर्वविरतिपना अगीकारकिया बहुतसंतोषपाए पूज्योंने वहां बहुत साधु बनाए, (५२) बावन साध्वी हुई ऐसा सुना जावे है उसीप्रस्तावमें जिनशेखरको उपाध्यायपददिया कितनेक साधुसाथमें देके रुद्रपल्लीभेजा, वह जिनशेखरउपाध्यायतप करतेहैं, स्वजनवहारहतेहैं,

उन्होंके समाधानके लिए जिनशेखर उपाध्यायगए तथा यह स्वरूप अपने स्थान रहे हुए जयदेव आचार्यने सुना कि श्रीजिनवल्लभसूरिके पदपर श्रीजिनदत्तसूरिजी सर्वगुणयुक्त प्रतिष्ठित भएहैं, और विहारकर्ते हुए इस देशमें आए हैं बाद विचार किया यह अच्छाभया है श्रीजिनवल्लभ गणीने चैत्यवासका परिहारकरके श्रीजिनअभयदेवसूरिजीके पासमें वस्तीवास अंगीकार किया सुनके पहलेही हमारा वस्तिवास प्रतिपत्तिका अभिप्राय उत्पन्न भयाथा इस वक्तमें जाके गुरुका दर्शनकरें ऐसा विचारके परिवारसहित जयदेवआचार्य श्रीजिनदत्तसूरिजीकोवन्दनाकरनेकेलिए आए विनयसहित श्रीजिनदत्त सूरिजीको वन्दना करी आचार्यनेभी सिद्धान्तोक्त मधुर वचनोंसे जयदेवआचार्यकेसाथऐसावचनव्यवहारकिया कि जिससे सपरिवार जयदेवआचार्यका ऐसा परिणामभया कि इस भवमें हमारे यही गुरुहोवो उसके अन्तर शुभमुहूर्तमें जयदेवआचार्यने चारित्रका उपसंपद ग्रहण किया ॥

सनत्कुमारचक्रीके जैसा पीछा देखानहीं उस देशमे श्रीजिनप्रभाचार्य केवलिकपरिज्ञान नाम शकुनादिअवधारण परिज्ञानसे सब लोगोंमे प्रसिद्धथे वहजिनप्रभाचार्य तुरककेराज्यमेंगए किसी तुरक नायकने ज्ञानीजानके पूछा मेरे हाथमें क्या है आचार्यने विचारके कहा खडीमट्टीका टुकडा वालसहित है वह तुरकनायक खडीखंडजानता है वाल नहीजानता है आश्चर्यपाया हुआ हाथदिखाया तब वालखडीपरलगाहुआदेखा ,तब तुरकनायक खुशीभया चंगा २ ऐसा बोला हाथपकडकर चुंबनकिया बाद आचार्यने-

जाना यह मेरे को साथमें ले जायगा यह सिंधितुरक दुष्ट विचारवाला हैं कोई वक्त मेरेपर अनर्थभी करदेवेगा म्लेच्छोंका क्या विश्वासकिया जावे ऐसा विचारके रात्रिमे चलके अपने देशमें चले आए जयदेवआचार्यको वस्तीवासमार्गअगीकार किया श्रीजिनदत्तसूरिजीके पासमे सुनके जिनप्रभाचार्यका अभिप्राय भया मैंभी चैत्यवासकात्याग करूं परन्तु इनका अत्यन्तकठिनमार्ग सुनते है जोकोई सुकरतरधर्ममार्ग होवे तो ठीकहोवे बादमे उसने केवलिक परिज्ञानसे विचारा पहले वक्तमे जिनदत्तसूरि ऐसा नाम आया बाद विचारा अंकव्यत्यय न होगयाहोवे दूसरी वक्त और गिनतीकरी तथापि उसीतरहजिनदत्तसूरि ऐसानाम आया और निश्चयकरनेके लिएतीसरीवक्तगिननाप्रारभ किया तब आकाशसे अग्निपुंजगिरा आकाशमें वाणी भई जो तेरे शुद्ध मार्गसेप्रयोजन है तो बहुतवार क्यागिनता है तो यही जिनदत्तसूरि आचार्य संसारनिस्तारक और शुद्ध मार्गके प्ररूपक सद्गुरु है बाद यहजिनप्रभाचार्यनिःसन्देह भए श्रीजिनदत्तसूरिके पासमें आए तब ज्ञानभानु श्रीजिनदत्ताचार्यने कहा तुह्मारा चूडामणि परिज्ञान हमारे समीपमे नही फुरेगा जिनप्रभाचार्य बोले मत फुरो, मेरे विधिमार्गसे प्रयोजन है, ऐसा कहनेसे पूज्योंने जिनप्रभाचार्यको चारित्रउपसम्पति दिया बाद जिनप्रभाचार्यने आचार्यकी आज्ञासे विहार किया तथा वहा रहे हुए जिनदत्तसूरि अतिशय ज्ञानियोके पासमे जयदेवआचार्य जिनप्रभाचार्यने वस्तीवास अगीकार किया सुनके विमलचन्द्रगणी नामका चैत्यवासीने

वस्तीवासअंगीकारकिया उसीप्रस्तावमें जिनरक्षित शालिभद्र सेठके पुत्रने मातासहित दीक्षालिया तथाथिरचन्द्र वरदत्त नामके दो भाइयोंने प्रव्रज्या लिया तथा जयदत्त नामका मुनि मंत्रवादी भया जयदत्तके पूर्वज मंत्रशक्तियुक्त थे उन सबोंको दुःसाधित रोषातुर भइ दुष्ट देवताने मारा जयदत्त भागा श्रीजिनदत्तसूरिजीके शरणे आया तब करुणानिधान शक्तिमान् श्रीपूज्योंने दुष्ट देवतासे बचाया तथा गुणचन्द्र यतिने जिनदत्तसूरिके पासमे दीक्षा लिया वह पहले श्रावक था तुर्कोंने हाथ देखके यह अच्छा भंडारी होगा यह जानके भागनेके भयसे बेड़ी डालदिया उसने शुद्ध भावसे लाख-नौकार गुणा उन्होके प्रभावसे सांकल वेड़ी टूटगइ पहरेवालेने जाना नही ऐसा रात्रिके पश्चिमार्धमे निकलके कोई वृद्धाके घरमे प्रवेश किया उसने कृपासे कोठीमे रखदिया तुर्कोंने देखा तोभी नहीं मिला बाद रात्रिमे निकलकर अपने देश गया और वैराग्य होगया श्रीपूज्योंके पासमें दीक्षा ग्रहण किया और रामचन्द्रगणी जीवानन्द पुत्रसहित अन्यगच्छसे भव्यधर्म जानके श्रीजिनदत्तसूरिजीकी आज्ञा अंगीकार करी और ब्रह्मचन्द्र गणीने सुविहित पक्षमे दीक्षा लिया इन्होंमें जिनरक्षित, शीलभद्र थिरचन्द्र वरदत्त प्रमुख साधु-ओंने और श्रीमती, जिनमती, पूर्णश्री वगेरेहः साध्विओंने वृत्ति पंजिकाटीकादिलक्षणशास्त्रपढ़नेकेवास्ते धारानगरीभेजे इन्होंने वहां जाके भक्तिवान् महर्द्धिक श्रावकके सहायसे वह व्या-करणादिसबपढ़े आप श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराजने रुद्रपल्लीके तरफ विहारकिया मार्गमें चलते हुए एकग्राममे ठहरे वहां एक

श्रावकको एक व्यन्तर निरंतर वहुत तकलीफ देताथा उसके पुण्य-
सेही आचार्य वहांआए उस श्रावकने अपने शरीरका स्वरूप कहा
श्रीपूज्योंने विचार किया कि यह मंत्रतंत्रोंसे साध्य नहीं है वाद्-
गणधर शप्ततिका वनाके टिप्पनकमे लिखाके व्यन्तर ग्रहीत श्राव-
कके हाथमे वह टिप्पन दिया और कहा इस टिप्पनमे दृष्टि रखना
उसने वैसाही किया जितने वह व्यन्तर जादापीडा देनेके
वास्ते आया परन्तु खट्वाके पासतकरहा शरीरमेंनहींप्रवेश करसका
गणधरशप्ततिकाका हृदयमेंनिवेशदर्शनप्रभावसे दूसरे दिन दरव-
जेकीसीमातकआया तीसरेदिन आयाहीनही श्रावक स्वस्थ हुआ
अर्थात् समाधि हुई वादमें विहार करके रुद्रपल्ली पहुंचे परि-
वारसहितजिनशेखरउपाध्याय और श्रावकलोगसामने आए विस्तार-
विधिसे प्रवेशउत्सव किया वादमे आचार्यने धर्मोपदेशदिया वहां
श्रीजिनवल्लभसूरिजीके उपदेशसे उपदेशपाएहुए एकसोवीस (१२०)
कुडुम्बके लोग रहतेथे उन्होंने श्रीऋषभदेवस्वामी और पार्श्वनाथ-
स्वामीका २ मंदिर वनवाए थे उन्होंकी प्रतिष्ठा करी वहां कितनेक
सम्यक्त्वधारी हुए और कइयोंने श्रावकव्रतग्रहण किया
और कितनेक देवपालगणी वगेरेहःने सर्वविरति पना स्वीकार
किया इस प्रकारसे उन्होंके समाधान उत्पन्न करके जयदेव आचा-
र्योंको यहां भेजेंगे ऐसा कहके और पश्चिमदेशतरफ विहार किया
वहांसे पश्चिम वागड़देशमें आए व्याघ्रपुर नगरमे आके रहे और
श्रीजयदेव आचार्यको रुद्रपल्ली भेजे सव व्यवस्था समझाके, वहां
रहे हुवे श्रीजिनवल्लभसूरिप्ररूपित श्रीजिनचैत्यविधिस्वरूप चर्चरीग्रन्थ

बनाया पुस्तकमें लिखवाके विक्रमपुर नगरमें मेहर वासल वगेरेहः श्रावकोंको बोध होनेके वास्ते भेजा देवधर सम्बन्धी संण्हियापुत्र जनकधरके पासमें पौषधशाला है उसमें बैठके जिनदत्तसूरिके भक्त श्रावकोंने चर्चरी ग्रन्थकापुस्तक खोला उसअवसरमें मदोन्मत्त देवधर आके चर्चरी टिप्पन यह है ऐसा कहके अपने हाथमें जबरदस्तीसे लेकर फाडडाला उसका यह कुछ नहींकरसकते हैं उन्मत्त होनेसे श्रावकोने उसके पिताके आगे वह स्वरूप कहा तब देवधरकापितावोला यह अत्यन्तदुरदान्त है तोभी मै मना करुंगा बाद श्रावकोंने श्रीपूज्योंकोविनतीलिखी उसमें चर्चरीका स्वरूप लिखा तब पूज्योंने और चर्चरीग्रन्थ लिखवाके भेजा और पत्रभेजा उसमे यह लिखा देवधरके ऊपर विरूप किसीको मानना नहीं अर्थात् विरुद्ध नहीं करना श्रीदेवगुरुके प्रसादसे यह भव्य होगा वह दूसरा टिप्पन पहुंचनेसे नमस्कार करके श्रावकोंने खोला समाधान हुआ देवधरने विचार किया यद्यपि मैने टिप्पनक फाड़दिया तथापि आचार्योंने दूसराभेजा है इहां कुछकारण होना चाहिये इस लिए मै एकान्तमे प्रछन्नपने वांचू और विचार करुं उसमें क्या लिखा है बादमें जब श्रावक टिप्पनक स्थापनाचार्यके आलयमे रखके दरवाजाबन्धकरके गए तब अपनेघरसे ऊपर वाडेसे प्रवेश करके बाहरका दरवज्जा बन्धरहते भी चर्चरी पुस्तक लिया और वांचना शुरू किया जैसे २ उसको वाचे वैसा २ भाव उल्लास होवे सो लिखते हैं

जहिं उस्सुत्तजणक्कमु कुवि किरलोयणेहिं ।
कीरंतउ नवि दीसइ सुविहियलोयणिहिं ॥
निसि न ह्लाण न पठन साहुसाहुणिहिं ।
निसि जुवइहिं न पवेसु न नट्ट विलासिणिहिं ॥ १
वलि अत्थिमियइ दिणयर जहिं नवि जिणपुरओ ।
दीसइ धरिउ न जुत्तइ जहिं जणि तूरउ ॥
जहिं रयणिहिं रहभमणु कयाइ न कारियइ ।
लवु डार सुह जहिं पुरि सुविहित पमुहाइ ॥ २
जहिं सावय तंबोल न भक्खइ हिंलिंति न य ।
जहिं पाणहिय धरति न सावय सुद्धन य ॥
जहिं भोयणु नवि भक्खइ न अणुचिय भणओ ।
सहु पहरणि न पवेसु न पुट्ठउं चुल्लणओ ॥ ३
जहिं न हासु नवि हुड्ड न खिड्डु नरूसणओ ।
कित्ति निमित्त न दिज्जइ जहिं धणु अप्पणओ ॥
कि २ जहि बहु आसायण जहिंति नाम लिहिं ।
मिलिय केलि कारितिसमणु महि लियेहिं ॥ ४

अर्थ—जहां उत्सव करनेवालेलोगोंका क्रम कुत्सित नेत्रों करके करतेहुए सुविहित विधि मार्गको नहीं देखते हैं सु-विहितविधिमार्गमे रात्रिमे स्नान नहीं करना और साधु साध्वियोंका परस्पर रात्रिमे पठन नहीं और रात्रिमे स्त्रियोंका जिनमंदिरमे प्रवेश नहीं और वेश्यायोका मंदिरमे नाटक नहीं ॥ १ और सूर्य अस्त होनेके बाद तीर्थंकरके आगे वलियाने

नैवेद्य वगैरहः चढ़ाना युक्त नहीं वादित्र वजाना रथ घुमाना कभीभी नहीं किया जावे और लवण उतारना वगैरह रात्रिमें नहीं करना ॥ २ जिनमंदिरमें तंबोल खाना नहीं और परस्पर पंचायतकरना नहीं जिनमंदिरमें श्रावक पानी पीवे नही भोजन न करे अनुचितव्यापार न करे पहरावनीवगैरहः न करे परमेश्वरकोपीठदेके बैठे नहीं रसोई करे नही ॥ ३ जिनमंदिरमें हास्य, कुचेष्टा, परस्पर लड़ाई करना इत्यादि नहीं करे और केवलकीर्तिके निमित्त जिनमंदिरमें दानादिकार्यनही करे जिनभक्तिसे दानादिक करे और नाम वगैरेहः नहींलिखे जिनमंदिरकोमलीननहीं करे यह करनेसे आशातनाहोवे है और स्त्रियोंकेसाथक्रीडा न करे ४ इत्यादि अर्थ धारण करे वैसा २ देवधरके मनमें प्रमोद उत्पन्न होवे अहो अत्यन्तशोभनजिनभवनका विधि कहा है इसके अनुसारसे स्थालिपुलाक न्याय करके औरभीसर्वविषय इसशास्त्रमें श्रेष्ठ संभव है इस लिए मैंभी यह मार्ग अंगीकार करूं परन्तु विघ्र अनायतन १ और स्त्री पूजा न करे यह संदेह दो पूछना है ऐसा विचारके देवधर टिप्पन वैसाही रखके सन्मार्गमें भया है चित्त जिसका ऐसा अपने घर आया ॥

इधरसे वागड़देशमे रहे हुए श्रीपूज्योंनेभी धारानगरीमें जो साधुओंको भेजेथे उन सबोंको पीछे बुलाए सिद्धान्त पढाया बादमें जिनदेवको जो आपने दीक्षा दियाथा उन्होंको आचार्यपद दिया दस १० वाचनाचार्य किए वाचनाचार्य पंडित जिनरक्षित गणि १ वा. शीलभद्रगणि २ वा. थिरचन्द्रगणि ३ ब्रह्मचन्द्रगणि ४ वा. विमलचन्द्रगणि ५ वा. वरदत्तगणि ६ वा. भुवनचन्द्रगणि ७ वा.

चरणागगणि ८ वा. रामचन्द्रगणि ९ वा. भाणचन्द्रगणि १० तथा ५ महत्तरा करीं श्रीमती महत्तरा १ जिनमती महत्तरा २ पूर्णश्रीमहत्तरा ३ जिनश्रीमहत्तरा ४ ज्ञानश्रीमहत्तरा ५ तथा हरिसिंहाचार्योंका *शिष्य मुनिचन्द्रनामका उपाध्याय था उसने श्रीजिनदत्तसूरिजीसे* प्रार्थना करीथी जो कोई मेरा शिष्य योग्य आपके पासमे आवे उसको आचार्यपद देना श्रीपूज्योंने यह वचन अंगीकार कियाथा बाद मुनिचन्द्रउपाध्यायका शिष्य जैसिंहनामका आचार्यपदमे स्थापा उसकाभी शिष्य जैचन्द्रनामका था उसको पत्तनमें समव सरणमें आचार्यपदमे स्थापा दोनोंके आगे पूज्योने कहा हमारी कहीहुई रीतिमें अवतुह्मारेप्रवर्तना आत्मकल्याणकरना इस प्रकारसे पद स्थापना करके उन्होको सिखावन देके सबोंको विहारादिस्थान कहके स्वयं आप अजमेरआए, वहां श्रावकोंने तीन जिनमंदिर और अंबिकाका स्थान पर्वतपर तय्यारकराया है बाद श्रीजिनदत्तसूरिजीने शोभनलग्नमेमूलमंदिरोमे वासक्षेपकिया इधरसे श्रीविक्रमपुरमें सहियापुत्र श्रीदेवधरने श्रीजिनदत्तसूरिजीने भेजा चर्चरी नामकापुस्तकके वाचनेसेजाना है सद्दर्शनकारी विधिबोध जिसने पनरे अपना कुटुम्व श्रावक समुदाय करके अपना पिता और आसदेवादिकसे कहा भो श्रावको मेरेको यहां श्रीजिनदत्तसूरिजीको विहार कराना है अर्थात् मैं विनतीकरकेयहां लाउंगा देवधरके आगे कोई कुछभी नहीं बोलसकता है श्रावक समुदायके साथ विक्रम पुरसे देवधर रवाने होके नागौर आया है उस वक्तमे वहा श्रीदेवाचार्य विशेषकरके प्रसिद्धि पात्ररहतेथे

देवधरभी विक्रमपुरसें आया है यह वात प्रसिद्धभईथी वाद जि-नमंदिरमें व्याख्यानप्रस्तावमें देवाचार्यवैठे हैं देवधरभी स्नाना-दिकसे पवित्र होके जिनमंदिरगया देववंदनादिक करके आचा-र्यको वंदनाकरी आचार्यने कुशल वार्ता पूछी वाद देवधर पहलेही आचार्यसे प्रश्न किया हेभगवन् जिनमंदिरमें रात्रिमें स्त्रीप्रवेश और प्रतिष्ठावलिविधान नन्दीवगैरहः करनायुक्त है या नही ऐसा प्रश्न सुनके देवाचार्यने विचारा कथंचित् जिनदत्ताचार्यका मंत्र इसके कानमें प्रवेशकिया है इस कारणसे उन्होंसे वासितके जैसा मालूम होता है ऐसा विचारके कहा हे श्रावक रात्रिमे जिन-मंदिरमें स्त्रीप्रवेशादिक ठीकनही होवे है तव देवधर वोला क्यो नही मनाकरते है आचार्य वोले लाखों आदमी है किस २ कों मना करें तव देवधर वोला हे भगवन् जिस देवघरमें जिन आज्ञा नहीं प्रवर्ते वहां क्या जिनआज्ञा निरपेक्ष इच्छासे लोग प्रवर्ततेहैं उसको जिनघर कहना या जनघर कहना आप आचार्य हैं कहिये, तव आचार्य वोले जहा साक्षात् तीर्थकरविराजमान दीखते है वह कैसे जिनमदिर नहीं कहा जावे, देवधर वोला हेआचार्य हम मूर्ख हैं परंतु इतनातो हमभी जानते हैं जहां जिसकी आज्ञानही प्रवर्ते वह घर उसका नहीं कहाजावे इसकारणसे पाषाणमईजिनबिंब अंदर स्थापनेसे भगवानकी आज्ञाविना स्वेच्छा करके व्यवहार करनेमें वह जिनमंदिर कैसे कहा जावे और ऐसेजानतेभए आप प्रवाह-मार्ग नहीं मनाकरते है प्रत्युत पोषते हैं वह ये आपको मै नमस्कर करता हू आपने मार्ग प्रथम वताया है परन्तु मेरेको जिस

मार्गमें तीर्थंकरकीआज्ञाप्रवर्तेहै वहमार्गअंगीकारकरनाहै ऐसा कहके देवधरउठाअपनेसाथमे जो श्रावककुटुम्बवगैरहःके लोगआएथे उन्होंका विधिमार्गमें स्थिरपनाहुआ बाद वहासे चलके श्रावकसमुदायसहित अजमेर पहुंचा श्रेष्ठभावसे श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराजको वन्दना करी आचार्यश्रीने देवधरका अभिप्राय पहलेही जानाथा श्रीपूज्योंने देशना दिया तब देवधर परिवारसहित निसंदेहभया बाद श्रीपूज्योंकीप्रार्थनाकरी हे भगवन् कृपा करके आप विक्रमपुरके तरफ विहार करें आचार्य बोले जैसा अवसर बादमे विस्तार विधिसे जिनमंदिर बहुत जिनप्रतिमा और गणधरादि प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करके बहुत जिनशासनकी उन्नति करी अढाई दिनकी झुंपडी जो कहि जावे सो उसवक्तकावना हुवा मकान हे उसमे अभि बहुत प्रतिमावगेरे निकले हैं और अजमेरसे पूर्व दिशि तरफ एक पर्वतमे बावनवीरका निवास था वहा आचार्य गए वहां बावन वीरोंको साधे वीर प्रत्यक्ष भए और बोले हम आपकी सेवामे हाजिर हैं आप आज्ञा करे ऐसे कहके वीर अदृश्य हो गए बाद परिवारसहित देवधर है साथमे जिन्होंके ऐसे श्रीआचार्य अजमेरसे विहारकरके क्रमसे नगरग्रामादिकमे भव्योंको प्रति बोधते ऐसे विक्रमपुर पधारे प्रवेशोत्सव हुआ वहाके बहुत लोगोंको प्रतिबोधा परतु जिस वक्त विक्रमपुर पधारे वहा पहलेसेही जनमारीका उपद्रव था आचार्य आयोंके बाद श्रावकोमे शांति भई परतु और लोगोंने बहुतशांतिकाउपायकिया परतु उपद्रवशांतभया नहीं तब नगरके लोगोंने श्रीपूज्योंसे विनती करी हे भगवन् हमारे

ऊपर उपकारकरें इस उपद्रवकीशांति करें हम आपकी आज्ञा पालनकरेंगे तब आचार्य बोले जैनधर्मअंगीकार करो या अपना एक पुत्र या पुत्री हमको देदेओ तो हम अभी उपाय कर देवे तब लोगोंने श्रीपूज्योंका वचन अंगीकार किया तब वहां शांति भई तब बहुत लोग श्रावक होगए जिन्होंने जैनधर्म नहिं अंगीकार किया उन्होंने अपना एक पुत्र वा पुत्री आचार्यजीको दिया वहां ५०० पांचसै साधु भए और ७०० साध्वियां भई, वहां भी महावीर स्वामी की प्रतिमा स्थापी वहांसे विहार करके उचनगर जाते हुए बीचमें अन्तराय भूत जो विरोधीलोग थे उन्होंको प्रतिबोधे बडनगर आए वहां प्रवेशोत्सवहुआ बहुतलोगोंकोप्रतिबोधेवहां कितनेकईरषालुब्राह्मणवगैरहःलोगोंनेएकमरनेवाली गायको जिनमंदिरमें रखदी गाय मरगई बाद लोगोंनेकहा यह जैनदेव गोघातक है श्रावक लोगसुनते घभराए और श्रीपूज्योंसे कहने लगे महाराज लोग अपवाद करते हैं बाद श्रीपूज्योने मांत्रिक प्रयोगसे गायको वहांसे उठाई गाय चली और रुद्रालयमें जाके गिरी तब ईरषालु लोग लज्जित होके आचार्यके पावोंमें गिरे और कहने लगे हमारा अपराधक्षमा करें अबहमऐसाकभी नहीं करेंगे आपकी संततिके जो यहा आवेंगे उन्होका प्रवेश उत्सव वगैरहः हम लोग करगे आचार्यश्रीने वहांसे विहार किया गुर्जरदेशमें होके लाटदेशमे नर्मदाके किनारे भडोंच (भरुछ) नगर पधारे वहां मुगलका राज्य था प्रवेश उत्सवमे मुगलका पुत्र आयाथा बहुत लोंगोंकी भीडथी उसमें वह मुगलका पुत्र घबराके अकस्मात मरगया

श्रावक लोग घबराए श्रीपूज्योंसे कहा तब श्रीपूज्योंने उसी वक्त व्यन्तरके प्रयोगसे जीताकरदिया और कहा यह मदिरा मांस नहीं खायगा तबतक जीता रहेगा उसने ६ महीनोंतक मदिरा मांस नहीं खाया बाद एक दिन भूलसे मांस खालिया उसी वक्त देवशक्ति नष्ट होगई और मरगया, वहां बहुत लोगोंको प्रतिबोधके विहार किया नर्मदाकिनारे विहार करते त्रिभुवनगिरीमें कुमारपाल राजाको प्रतिबोधा वहां बहुत यतियोका विहार कराया वहांसे विचरतेभए मालवदेशमें उज्जैनीनगरीआए वहां ६४ योगिनियोंको प्रतिबोधी सो लिखते हैं श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराज व्याख्यान वांचते थे उस वक्त ६४ योगिनी श्रावकनीका रूप करके आई श्रीपूज्योने व्याख्यानके पहलेही श्रावकसे कहाथा व्याख्यानमे ६४ छोटे पाटे रखदेना श्रावकने उसीतरहकिया उतनेमें ६४ योगिनी आई पाटोंपर बैठगई श्रीपूज्योंने व्याख्यानवांचते योगिनियोंको कीलदी व्याख्यान उठेके बाद सब लोग चले गए योगिनियो बैठी रही तब दीन होकर योगिनियो बोली हे भगवन् हम तो आपको छलनेको आईथी आपने तो हमको स्वाधीन करलीं आप कृपा करके हमको छोड़ें हम आपकी आज्ञामे रहेंगी तब आचार्यने योगिनियोंको छोड़ी तब योगिनियो आचार्यके विद्यावलसे प्रसन्न होके वरदान दिए उन्होंके नाम लिखते हैं ग्राम २ मे खरतरश्रावक दीसिवानहोगा १ प्रायः खरतरश्रावक निर्धन नहीं होगा २ सघमे कुमरणनहींहोगा ३ अखंडशीलपालनेवाली साध्वी ऋतुवंती नहीं होगी ४ खरतर संघको शाकन्यादि नहीं छलेगी ५ जिनदत्त नाम

लैनेसे विद्युत पातादिउपद्रव नहीं होगा ६ खरतरश्रावक सिंधु देशमें गया हुआ धनवान होगा ७ और योगिनियां बोली यह सात वचन पालना जिससे हमारादिया हुआवरदान सफल होवे सो कहते हैं सिंधुदेशमेंगए हुए गच्छनायकोंको पंचनदीसाधना १ आचार्योंको निरंतर २००० दोहजार सूरिमंत्रकाजाप करना २ साधुओंको निरंतर २००० दोहजार नोंकार गुणना ३ खरतरश्रावकोंको घरमें या उपाश्रयमें उभय काल सप्तसरण गुणना ४ श्रावकोंको नित्य तीन खीचडीकी नौकर वाली गुणना वहां एक मनकेपर एक नवकार और १ उवसग्ग स्तोत्र गुननेसे खीचडीकी माला कही जावे है ५ तथा खरतरश्रावकोंके १ महीनेमें २ आंबिल करने ६ खरतर साधुओंको शक्तिरहतेनित्यएकाशनाकरना ७ और जोगनियोंने कहा दिल्ली १ अजमेर २ भडौच ३ उजैन ४ मुलतान ५ उच्चनगर ६ लाहौर ७ ये सात नगरोमें परिपूर्णशक्तिरहित खरतरगच्छ नायकोंको रात्रिमें नहीं रहना ऐसा कहके योगनियो स्वस्थान गई और उज्जैनमें वज्र खंभमें श्रीमहाकालके मंदिरसे सिद्धसेनदिवाकरकाविद्याम्नायकापुस्तकग्रहणकिया और मायाबीजका ३॥ साढातीन करोड़ जाप किया वहांसे विहार करके चित्रकूट चीतोड नगरआए वहां विरोधियोंने अपशकूनकरनेके लिए कालासर्पबांधके सामने लाए तबगीत वादित्रआदिक बंध हो गए विवाद सहित श्रावकोने कहा अहो सुंदरनहीं हुआ तब ज्ञानदिवाकर श्रीजिनदत्तसूरिजी महराज बोले अहो क्यों उदास होते हैं जैसे यह कालाभुजंगडोरीसे बंधाहुआ है वैसाहीऔरभीविरोधी दुष्टलोगहैं वहबधनमे पडेगा परिणामसे यह शकुन अतीव सुंदर है बाद आगे चलते दुष्टोंने एक

नकटी स्त्रीको सामने लाए वह सामने आकेखड़ी भईको पूज्योंने देखी उसको वतलाई (आई भल्ली) तव उस दुष्ट रंडाने उत्तर दिया "भल्लाइ धाणुक्कइ मुक्की" तव पूज्य थोडे हसके वोले "पक्खा हरा तेण तुह छिन्ना" तव विलखी होके चलीगई वाद आचार्य नगरमें आए श्रीचिंतामणिपार्श्वनाथस्वामीके मंदिरके स्तंभसे अपनीविद्याके प्रभावसे विद्याम्नायका पुस्तक प्रगटकिया वहांसे विहार करते हुए अजमेर आए पाक्षिक प्रतिक्रमण करते हुए श्री-गुरू महाराजने वारवार चमकती वीजलीको मन्त्र वलसे पात्रके नीचे रक्खी प्रतिक्रमणभयोंके अनन्तर पात्रके नीचेसे निकालकर जिन-दत्त नाम ग्रहण करेगा वहा मै नही पहूंगी ऐसा वर लेके छोडदी वीजली स्वस्थान गई वहांसे आचार्य विहार करते हुए गुर्जरदेशमे पाटननगरआए उससमय एक नागदेवनामकाश्रावक था उसका दूसरा नाम अवड ऐसाथा उसने एकदा गिरनार पर्वतपर ३ उपवास करके अंविका देवीका आराधन किया अवा प्रत्यक्ष भई और कहा मेरा क्यों आराधनकिया कार्य कहो तव नागदेववोला मातर इससमयमे भरतक्षेत्रमें युगप्रधानपदधारक कौन आचार्य है उन्होंको मै अपना गुरूकरूं ऐसा पूछा तव अंविकादेवी उसके हाथमे सोनेके अक्षरोंसे यह श्लोक लिखा "दासानुदासा इव सर्वदेवा यदीयपादाब्जतले लुठति। मरुस्थलीकल्पतरुः स जीयात् युगप्रधानो जिनदत्तसूरिः ॥ १

और वोली जो यह हाथके अक्षरवाचेंगे उन्होंको युगप्रधान जानना ऐसा कहके अवा अदृश्य होगई वाद वह श्रावक ठिकाने

२ बहुत आचार्योंको हाथ दिखाता फिरा परंतु कोईभी अक्षर वांचनेको समर्थ नहीं भए बाद एकदा पाटननगरमें त्रावावाडा नामकेमोहल्लेमें श्रीजिनदत्तसूरिजीके पासमें आया अपना हाथ दिखाया तब गुरूने अपनी स्तुतिलिखीभई देखके हाथपर वासक्षेप किया और शिष्यको वांचनेकी आज्ञादी शिष्यने ऊपर लिखा श्लोक वांचा तब नागदेवश्रावक परम भक्तिमान आचार्यका शिष्य भया ऊपर लिखे भए श्लोकका यह अर्थ है दासानुदासके जैसा सर्वदेव जिन्होंके चरण कमलमें लुटते हैं अर्थात् नमस्कार करते हैं मरुस्थलीमें कल्पवृक्षके जैसा युगप्रधान श्रीजिनदत्तसूरि चिरंजीव रहो, ऐसे कलिकाल सर्वज्ञकल्प युगप्रधानपदधारक श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराज एकदा व्याख्यान वांचतेथे तब गुरूने दीर्घ उपयोगसे समुद्रमें डूबता हुआ एक श्रावकका जहाज जानके अपना सरण करते हुए लोगोंके उपकारके लिए व्याख्यानका पत्रनींचे रखके योगशक्तिसे पक्षिवत् समुद्रमें जाके जहाजतिराया इस प्रकारसे श्रावकका कष्ट दूरकरके पीछे आके व्याख्यान वांचना शरू किया यह वृत्तान्त सब लोगोंने जाना तब श्रीगुरुका महिमा बहुत फैला बहुत लोग भक्त भए वहांसे विहार करते क्रमसे विचरते भए मुलताननगर गए प्रवेशोत्सव बहुत विस्तारसै होता देखके एक अन्य गणका अंवडनामकाश्रावक बोला इहां सामेला होता है जो गुर्जरदेशमे पाटणपधारे और प्रवेशोत्सव ठाठसे होवे तब आपको सचासमजें तब श्रीपूज्य उपयोग देके बोले हम फरसना साथ पाटण आवेंगें तें तेललूण वेचता सामने मिलेगा बाद श्री जिनदत्त

सूरिजी महाराज मुलतानमें बहुत लोकोंको प्रतिबोधे जैन शासनकी उन्नति करके विहार करते पंचाल (पजाब) मरुस्थल गोडादि देशोंमे विचरते प्रतिबोध करते गुर्जरदेशमें पाटण नगर पधारे बहुत विस्तारविधिसै सामेला होताथा उतने वहही अंबडश्रावक अन्य गच्छीय सांमने आया तैलादिवेचणेकुंग्रामांतरजाताथा आचार्य-श्रीने बोलाया कैसाहे भद्र तब अबड लज्जितहोके नीचा मुख करके चलागया श्रीपूज्य पाटणमे रहे तब अंबड कपटसे खरतर-गच्छकाश्रावकभया एकदा उपवासकेपारनेमे साकरके पाणिमे ज-हिर दिया आचार्यने आहारकियोंके बाद जहिरकापरिणाम जाणा तबरायभणसालीगोत्रीय श्रीआभूनामकाश्रावकने पालणपुरसै जहि-रउतारणेकिमुद्रामंगाई उस्सेजहिरउतारा बादअबडकीलोकोंमेबहुत-निंदाभइ अबड मरके व्यतरदेवहुवा तथापिद्वेषनहिंगया एकदा श्रीपूज्यसोतेथे रजोहरण पाटेसैनीचागिरगया तबछलदेखके रजो हरण व्यंतरने लेलीया ओर आचार्य महाराजमे अधिष्ठित भया तब भणशाली श्रावकने धूपादिक करके बोलाया तब अंबड व्यंतर बोला तेरा कुटुंबको मुजै देवै तब श्रीपूज्योंको छोडुं बाद उसी वक्त आभु श्रावकने अपने गोत्रवालेसबकुटुंबका उताराकरा तब आचार्य सावधानभये ओघालेके भणसालीका गोत्रबचाया और व्यंतर उसी समय आचार्यका तेज नहिसहता चलागया तब संघमे बहोत हर्षभया श्रावकोने जिनशासनकी उन्नति गुरु महाराजकी भक्तिके लियै उत्सव सांतिस्नात्र वगैरे श्रीदेवगुरुकी भक्ति विशेष करि ऐसे प्रभावक कलिकालसर्वज्ञकल्प परोपकारकरणतत्पर भूमंडलमें

विचरते श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराज शिष्यादि परिवारसे परिवृत ज्ञानदिवाकर विचरतेभये मेघवत् उपगारि उपगार करतेहैं इत्यादि अनेक आश्चर्यके निधान निरतर चार प्रकारके देवों करके सर्वदा सेवित चरणकमल जिनोका ऐसे बावन (५२) वीर चोसठ (६४) योगिनी पांचपीर खेत्रपाल मानभद्र वगैरे देवकिंकरवत् सेवाकरतेहैं जिनोकी ऐसे श्रीजिनदत्तसूरीश्वरजी करुणासमुद्र धारापुरि गणपद्रादि स्थानोंमें महावीरस्वामीजी पार्श्वनाथस्वामीजी सांतिनाथस्वामीजी अजितनाथस्वामीजी प्रमुखजिनबिंबोकी और जिनमंदिरोकी प्रतिष्ठाकरणेवाले ऐसे और स्वज्ञानके बलसे देखके निजपट्टोद्धारक रासलश्रावकके पुत्रकों प्रव्रज्या देनेवाले स्वहस्तसे आचार्यपद देके भालस्तलमें मणिधारणेवाले श्रीजिनचंद्रसूरिनाम स्थापित करनेवाले सूर्यवत् प्रतिबोधकियाहै भारतवर्षके भव्य कमलोको जिनोने ऐसे गणधरसार्धशतकादि बहोत शास्त्रोंके करणेवाले युगप्रधान भट्टारक श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराजका चरित्र लेशमात्र निरूपण कीया इतिश्रीजिनकीर्तिरत्नसूरिशाखायां तत्परपरायांच श्रीमज्जिनकृपाचंद्रसूरिशिष्य पं० आनदमुनि संगृहीत तल्लघुभ्राता उपाध्याय जयसागरगणिना लोकभाषयाऽवतारिते जंगम युगप्रधान भट्टारक श्री जिनदत्तसूरिचरिते श्रीजिनदत्तसूरीश्वराणां जन्मदीक्षायुगप्रधानपदस्थापनाद्यधिकारवर्णनोनामपंचमसर्गः समाप्तः ॥ ५ ॥

इति पूर्वार्द्धं समाप्तम् ।

॥ अशुद्धिशुद्धिपत्रम् ॥



पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
४	१२–१३ में टिपनी है		२ ओली १४से मूल है
४	१४	पृथ्वीकेऊपर१८सो योजन	समभूतलसें ९सें नीचे ९से ऊपर
५	८–९	२१ सो ४३	२६ सो ३५
५–६		टिप्पनीकी लकीर है	०
७	१९	उपत्ति	उत्पत्ति
८	१२	सुदर्शनविजय	सुदर्शन विजय
१६	९	श्रीरिषदेव	श्रीरिषभदेव
२७	५	पृथ्वीपर	रत्न पीठपर
२९	३	कितनेक	असख्यात
३२	१२	सख्याण	साख्य
५६	१३–१४	देवलोकएसें	देवलोकसें
५८	१	राजसगण	राक्षसगण
५९	२१	आर्येशिवा	आर्यासिवा
७३	६	कुथकुमर	कुथुकुमर
७४	७	प्राप्ति	प्राप्त
७६	६	प्राप्ति	प्राप्त

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
७७	५	कुंमरि	कुमारि
७७	८	कुमर	कुमारि
७७	१३	मथुरा	मिथिला
७८	९	प्राप्ति	प्राप्त
८०	७	प्राप्ति	प्राप्त
८४	११	प्राप्ति	प्राप्त
८९	१६	सुदामा	सुभद्रा
९३	३	शुद्धी	रिद्धि
९४	४	शुद्धी	रिद्धि
१०९	१७	पूछेकि	पूछ कि
११२	११	निष्टितार्थ	निष्टितार्थ
१४	२	मध्यपापा	मध्यमपापा
११५	१८	प्रत्यक्त	प्रत्यक्ष
१५३	४	वेहू	हुवे
१७२	१९	दरिद्रातका	दरिद्रताका
१८०	२०	घाये	धापे
१८५	१८	रागवुधिका	रागवृद्धिका
१८८	८	नरलु	नरलुनरलु
२२४	२५	होनेमें	होनेसें
२४९	७	छो	घो
२६०	५	वित्थर	तित्ययर

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
२६२	१	शानशाली	ज्ञानशाली
२६३	५	वनच	वचन
२८०	३	पूल्य	मूल्य
२९४	७	पदे	पट्टे
२९५	१३	प्ररूपणात्	प्रापणात्
२९६	१६	तापल	तापस यावपा
२९७	२१	विय	दीया
३०६	११	योलोकि	योलेपि
३१२	१३	रविणेन	रविणेव
३१२	१६	निरक्रियातर	निरतरक्रिया
३१५	१३	सघम्रि	सघमि
३१६	१६	सासो	सीमो
३१८	१७	पूछ	पूछा
३७३	१३	वो	०
३८४	१९	विवाद	विपाद